मेरा मुझमें कुछ नहीं

अनुक्रम

1. करो सत्संग गुरुदेव से......................................................................2
2. गुरु मृत्यु है.................................................................................19
3. पिया मिलन की आस................................................................................39
4. गुरु-शिष्य दो किनारे......................................................................60
5. आई ज्ञान की आंधी..............................................................................79
6. सुरति का दीया...................................................................................94
7. उनमनि चढ़ा गगन-रस पीवै...................................................................115
8. गंगा एक घाट अनेक............................................................................131
9. सुरति करौ मेरे सांइयां................................................................149 10...................................................................................सत्संग का संगीत ....................................................................................................... 166

मेरा मुझमें कुछ नहीं
पहला प्रवचन

करो सत्संग गुरुदेव से

गुरुदेव बिन जीव की कल्पना ना मिटै।
गुरुदेव बिन जीव की भला नाहिं।।
गुरुदेव बिन जीव का तिमिर नासै नहिं।
समझि विचार लै मन माहि।।
रहा बारीक गुरुदेव तें पाइए।
जनम अनेक की अटक खोलै।।
कहै कबीर गुरुदेव पूरन मिलै।
जीव और सीव तब एक तोलै।।
करो सतसंग गुरुदेव से चरन गहि।
जासु के दरस तें भर्म भागै।।
सील औ सांच संतोष आवै दया।
काल की चोट फिर नाहिं लागै।।
काल के जाल में सकल जीव बांधिया।
बिन ज्ञान गुरुदेव घट अंधियारा।।
कहै कबीर बिन जन जनम आवै नहीं।
पारस परस पद होय न्यारा।।

अंधेरा नया नहीं, अति प्राचीन है। और ऐसा भी नहीं है कि प्रकाश तुमने खोजा न हो। वह खोज भी उतनी ही पुरानी है, जितना अंधेरा। क्योंकि यह असंभव ही है कि कोई अंधेरे में हो और प्रकाश की आकांक्षा न जगे। जैसे कोई भूखा हो और भोजन की आकांक्षा पैदा न हो। नहीं, यह संभव नहीं है।
भूख है तो भोजन की आकांक्षा जगेगी।
प्यास है तो सरोवर की तलाश शुरू होगी।
अंधेरा है तो आलोक की यात्रा पर आदमी निकलता है।
अंधेरा भी पुराना है, आलोक की आकांक्षा भी पुरानी है; लेकिन आलोक मिला नहीं। उसकी एक किरण के भी दर्शन नहीं हुए। भटके तुम बहुत, खोजा भी तुमने बहुत, लेकिन परिणाम कुछ हाथ नहीं आया। बीज तो तुमने बोए, लेकिन फसल तुम नहीं काट पाए।
क्योंकि अंधेरे में चलने वाले आदमी को प्रकाश का कोई भी तो पता नहीं। उसने प्रकाश कभी जाना नहीं। वह उसे खोजेगा जैसे? वह किस दिशा में यात्रा करेगा?
और अगर अपने से ही पूछता रहा मार्ग, तो भटकेगा ही। उसकी भटकन वर्तुलाकार हो जाएगी। चलेगा बहुत, पहुंचेगा कहीं भी नहीं।
किसी से पूछना पड़ेगा। अपने से थोड़ा ऊपर उठना पड़ेगा। किसी से पूछना पड़ेगा, जिसने प्रकाश जाना हो, जिसने जीया हो उस अनुभव को; जिसके जीवन में वह अमृत-धार बही हो।
गुरु का इतना ही अर्थ है। जो तुम खोज रहे हो, वह उसे मिल गया। जिसे तुम चाहते हो, वह उसकी संपदा हो गई। जो तुम होओगे, वह हो चुका है।
तुममें और गुरु में इतना सा ही फासला है। बीज हो, वह वृक्ष है। तुम संभावना हो, वह समाप्ति है। तुम प्रारंभ हो, वह अंत है। जरा सा ही फासला है। शायद एक कदम का फासला है।
लेकिन अपने से बाहर उठे बिना मार्ग न मिलेगा। तुम ही खोजोगे, तुम्हारी खोज तुम्हारे अंधकार की ही खोज होगी। तुम ही सोचोगे, तुम्हारा सोचना तुम्हारे अनुभव के पार न जाएगा।
और बहुत-बहुत बार एक ही उलझन में उलझे रहने से अनेक परिणाम होते हैं।
या तो उलझन दिखाई ही पड़ना बंद हो जाती है, तुम आदी हो जाते हो। बहुत लोग आदी हो गए हैं अंधकार के। उन्होंने खोज ही बंद कर दी।
या तुम्हारे जो ढंग, अनेक बार प्रयोग तुमने किए हैं, वे इतने थिर हो जाते हैं, कि तुम उनका अंधा अनुकरण किए चले जाते हो। यांत्रिक ढंग से

दोहराए चले जाते हो। फिर तुम यह भी नहीं सोचते कि कोई निष्कर्ष हाथ आता है या नहीं आता है?
मैंने सुना है, एक सूफी फकीर के आश्रम में प्रविष्ट होने के लिए चार स्त्रियां पहुंचीं। उनकी बड़ी जिद थी, बड़ा आग्रह था। ऐसे सूफी उन्हें टालता रहा, लेकिन एक सीमा आई कि टालना भी असंभव हो गया। सूफी को दया आने लगी, क्योंकि वे द्वार पर बैठी ही रहीं--भूखी और प्यासी; और उनकी प्रार्थना जारी रही कि उन्हें प्रवेश चाहिए।
उनकी खोज प्रामाणिक मालूम हुई तो सूफी झुका। और उसने उन चारों की परीक्षा ली। उसने पहली स्त्री को बुलाया और उससे पूछा, "एक सवाल है। तुम्हारे जवाब पर निर्भर करेगा कि तुम आश्रम में प्रवेश पा सकोगी या नहीं। इसलिए बहुत सोच कर जवाब देना।"
सवाल सीधा-साफ था। उसने कहा कि एक नाव डूब गई है; उसमें तुम भी थीं और पचास थे। पचास पुरुष और तुम एक निर्जन द्वीप पर लग गए हो। तुम उन पचास पुरुषों से अपनी रक्षा कैसे करोगी? यह समस्या है।
एक स्त्री और पचास पुरुष और निर्जन एकांत! वह स्त्री कुंआरी थी। अभी उसका विवाह भी न हुआ था। अभी उसने पुरुष को जाना भी न था। वह घबड़ा गई। और उसने कहा कि अगर ऐसा होगा तो मैं किनारे लगूंगी ही नहीं; मैं तैरती रहूंगी। मैं और समुद्र्र में गहरे चली जाऊंगी। मैं मर जाऊंगी, लेकिन इस द्वीप पर कदम न रखूंगी।
फकीर हंसा, उसने उस स्त्री को विदा दे दी और कहा, कि मर जाना समस्या का समाधान नहीं है। नहीं तो आत्मघात सभी समस्याओं का समाधान हो जाता।
यह पहला वर्ग है, जो आत्मघात को समस्या को समाधान मानता है। तुम चकित होओगे, कि तुममें से अधिक लोग इसी वर्ग में हैं। हर बार जीवन में वही समस्याएं हैं, वही उलझने हैं, और हर बार तुम्हारा जो हल है, वह यह है कि किसी तरह जी लेना और मर जाना। फिर तुम पैदा हो जाते हो।
इस संसार में मरने से तो कुछ हल होता ही नहीं। फिर तुम पैदा हो जाते हो, फिर वही उलझन, फिर वही रूप, फिर वही झंझट, फिर वही संसार; यह पुनरुक्ति चलती रहती है। यह चाक घूमता रहता है। तुम्हारे मरने से कुछ हल न होगा। तुम्हारे बदलने से हल हो सकता है। मरने से हल नहीं हो सकता। मर कर भी तुम, तुम ही रहोगे। फिर तुम लौट आओगे।
और अगर एक बार आत्मघात समस्या का समाधान मालूम हो गया तो तुम हर बार यही करोगे। तुम्हारे मन में भी अनेक बार किसी समस्या को जूझते समय जब उलझन दिखाई पड़ती है और रास्ता नहीं मिलता, तो मन होता है, मर ही जाओ। आत्महत्या ही कर लो। यह तुम्हारे जन्मों-जन्मों का निचोड़ है। पर इससे कुछ हल नहीं होता। समस्या अपनी जगह खड़ी रहती है।
दूसरी स्त्री बुलाई गई। वह दूसरी स्त्री विवाहित थी, उसका पति था। यही सवाल उससे भी पूछा गया, कि पचास व्यक्ति हैं, तू है; नाव डूब गई है सागर में, पचास व्यक्ति और तू एक निर्जन द्वीप लग गए हैं। तू अपनी रक्षा कैसे करेगी?
उस स्त्री ने कहा, इसमें बड़ी कठिनाई क्या है? उन पचास में जो सबसे शक्तिशाली पुरुष होगा, मैं उससे विवाह कर लूंगी। वह एक, बाकी उनचास से मेरी रक्षा करेगा।
यह उसका बंधा हुआ अनुभव है। लेकिन उसे पता नहीं, कि परिस्थिति बिल्कुल भिन्न है। उसके देश में यह होता रहा होगा, कि उसने विवाह कर लिया और एक व्यक्ति ने बाकी से रक्षा की। लेकिन एक व्यक्ति बाकी से रक्षा नहीं कर सकता। एक व्यक्ति कितना ही शक्तिशाली हो, पचास से ज्यादा शक्तिशाली थोड़े ही होगा। रक्षा असल में एक पति थोड़े ही करता है स्त्री की! जो पचास की पत्नियां हैं, वह उन पचास को सीमा के बाहर नहीं जाने देतीं।
इसलिए वह जो उसका अनुभव है, इस नई परिस्थिति में काम न आएगा। वह एक आदमी मार डाला जाएगा, वह कितना ही शक्तिशाली हो। उसका कोई अर्थ नहीं है। पचास के सामने वह कैसे टिकेगा?

पुराना अनुभव हम नई परिस्थिति में भी खींच लेते हैं। हम पुराने अनुभव
के आधार पर ही चलते जाते हैं, बिना यह देखे कि परिस्थिति बदल गई है और यह उत्तर कारगर न होगा।
फकीर ने उस स्त्री को विदा कर दिया और उससे कहा, कि तुझे अभी बहुत सीखना पड़ेगा, इसके पहले कि तू स्वीकृत हो सके। तूने एक बात नहीं सीखी है अभी, कि परिस्थिति के बदलने पर समस्या ऊपर से चाहे पुरानी दिखाई पड़े, भीतर से नई हो जाती है। और नया समाधान चाहिए।
लेकिन अनुभव की एक खराबी है, कि जितने अनुभवी लोग होते हैं, उनके पास नया समाधान कभी नहीं होता। छोटे बच्चे से तो नया समाधान मिल भी जाए, बूढ़े से नया समाधान नहीं मिल सकता। उसका अनुभव मजबूत हो चुका होता है। वह अपने अनुभव को ही दोहराए चला जाता है। वह कहता है, मैं जानता हूं, जीया हूं, बहुत अनुभव किए हैं; यह उसका सारा निचोड़ है। उसका मस्तिष्क पुराना, जरा-जीर्ण हो जाता है, बासा हो जाता है।
यह स्त्री बासी हो चुकी थी। इसके उत्तर खंडहर हो चुके थे। इसको यह बोध
भी न रहा था, कि हर पल जीवन नई समस्या खड़ी करता है। और हर पल चेतना को नया समाधान खोजना पड़ता है। इसलिए बंधे हुए समाधान, लकीरें, और लकीरों पर चलने वाले फकीर काम के नहीं हैं। रूढ़िबद्ध उत्तर काम नहीं देंगे। यहां तो सजगता चाहिए। सजगता ही उत्तर हो सकती है। वह स्त्री भी अस्वीकार दी गई। तुममें से बहुतों के उत्तर बंधे हुए हैं। कोई हिंदू घर में पैदा हुआ है, कोई मुसलमान घर में पैदा हुआ है, कोई जैन घर में पैदा हुआ है। तुम्हारे पास बंधे हुए उत्तर हैं। जैन का एक उत्तर है, मुसलमान का एक उत्तर है, हिंदू का एक। तुम उन बंधे उत्तरों को खोजे जा रहे हो!
महावीर को विदा हुए पच्चीस सौ साल हो गए। पच्चीस सौ सालों में सारी समस्याएं बदल गई, संसार बदल गया, आदमी के होने का ढंग बदल गया, आदमी की चेतना बदल गई। तुम पुराना उत्तर पीटे चले जा रहे हो! तुम यह भूल ही गए हो, कि अब वह समस्या ही नहीं है, जिसके लिए तुम्हारे पास समाधान है। समस्या समाधान में कोई तालमेल नहीं रहा।
वेद बड़े प्राचीन हैं। हिंदू अघाते नहीं यह घोषणा करते, कि हमारी किताब सबसे ज्यादा पुरानी है। लेकिन जितनी पुरानी किताब उतनी ही व्यर्थ! पुरानी किताब का मतलब ही यह है, कि अब वह दुनिया ही नहीं रही, जब किताब लिखी गई थी। अब वे प्रश्न नहीं रहे, अब वे उलझनें नहीं रहीं। जिंदगी रोज नये ढांचे लेती है, नये रूप, नये रंग!
गंगा रोज नये किनारे को छूती है, पुराने किनारे छूट गए। और तुम पुराने नक्शे लिए घूम रहे हो। तुम्हारा गंगा से मिलन नहीं होता। क्योंकि गंगा नई होती जा रही है, तुम्हारे पास पुराने नक्शे हैं। गंगा ने जिन जमीनों पर बहना छोड़ दिया, तुम वहां के नक्शे लिए हो। और गंगा जहां बह रही है अभी, इस क्षण, वहां तुम्हारे नक्शे की वजह से तुम नहीं पहुंच पाते। कभी-कभी बिना नक्शे का आदमी भी पहुंच जाए, पर पुराने नक्शों को लेकर चलने वाला कभी नहीं पहुंच सकता। उसके लिए तो भारी अड़चन है।
वह दूसरी स्त्री विदा कर दी गई। तीसरी स्त्री बुलाई गई, वह एक वेश्या थी। और जब फकीर ने उसे समस्या बताई कि समस्या यह है, कि पचास आदमी हैं, तुम हो, नाव डूब गई, एकांत निर्जन द्वीप होगा, तुम अकेली स्त्री होओगी। समस्या कठिन है; तुम क्या करोगी?
वह वेश्या हंसने लगी। उसने कहा5 मेरी समझ में आता है कि नाव है, पचास आदमी हैं, एक स्त्री मैं हूं। फिर नाव डूब गई है, पचास आदमी और मैं किनारे लग गए, निर्जन द्वीप है, समझ में आता; लेकिन समस्या क्या है? वेश्या के लिए समस्या हो ही नहीं सकती! इसमें समस्या कहां है, यह मेरी समझ में नहीं आता। और जब समस्या ही न हो, तो समाधान का सवाल ही नहीं उठता।
बहुत से लोग हैं तीसरे वर्ग में, जो कहते हैं समस्या कहां है? परमात्मा है कहां, जिसको तुम खोज रहे हो? ध्यान होता कहां है, जिसकी तुम तलाश कर रहे हो? प्रार्थना, पूजा बकवास है। मोक्ष, निर्वाण सपने हैं। समस्या है कहां? तुम क्यों व्यर्थ पालथी मार कर बैठे हो? क्यों लगा रखा है यह सिद्धासन? किसके लिए आंख बंद किए बैठे हो? कोई आने वाला नहीं है। कहां

जा रहे हो मंदिर-मस्जिदों में? वहां कोई भी नहीं है। सब पुरोहितों का जाल है। शास्त्रों को पढ़ रहे हो? सब कुशल लोगों की उक्तियां हैं। चालाकों का खेल है। मत पड़ो उलझन में; समस्या कोई है ही नहीं। इसलिए समाधान की चिंता मत करो। किस गुरु के पास जा रहे हो, किसलिए जा रहे हो? प्रश्न ही नहीं है, पूछना क्या है?
तीसरे वर्ग के लोग भी हैं। वे इतने दिन तक समस्या में रह लिए हैं, कि समस्या दिखाई पड़नी ही बंद हो गई। जब तुम बहुत किसी चीज के आदी हो जाते हो, तो तुम्हारी आंखें धुंधली हो जाती हैं। फिर वह तुम्हें दिखाई नहीं पड़ती। अगर तुम्हारे घर के सामने ही कोई वृक्ष लगा हो, तो वह तुम्हें दिखाई पड़ना बंद हो जाता है। तुम उसे रोज देखते हो, वह दिखाई पड़ना बंद हो जाता है।
कभी तुमने सोचा एकांत में बैठ कर, कि तुम्हारी पत्नी का चेहरा कैसा है? आंख बंद करके सोचो, पत्नी का चेहरा अपनी आंख में न ला सकोगे। तुमने उसे इतना देखा है, कि तुमने देखना ही बंद कर दिया। उसका चेहरा भी उभरता नहीं, साफ नहीं होता, रूपरेखा कैसी है! तुमने कई सालों से उसे देखा ही नहीं है। वर्षों पहले तुम उसे घर ले आए थे, तब शायद एकाध बार देखा होगा शुरू में; फिर तुमने देखा ही नहीं है। तुम भूल ही गए हो। सड़क से निकलने वाली नई अपरिचित स्त्री का चेहरा शायद तुम्हें याद भी रह जाए, लेकिन पत्नी का भूल जाता है, पति का भूल जाता है, मित्र का भूल जाता है!
जिस चीज के साथ तुम धीरे-धीरे रम जाते हो, उसकी चोट पड़नी बंद हो जाती है। जीवन बहुतों के लिए समस्या ही नहीं है। वे चकित होते हैं दूसरों को जीवन का समाधान खोजते हुए देख कर। वे हैरान होते हैं। उनकी नजरों में ये खोजने वाले पागल हैं, दीवाने हैं। इनके दिमाग में कुछ खराबी हो गई हे; अन्यथा दुनिया सब ठीक है।
समस्या कहां है? वेश्या ने पूछा।
वेश्या भी विदा कर दी गई। क्योंकि जिसके लिए समस्या ही नहीं है, उसे समाधान की यात्रा पर कैसे भेजा जा सकता है?
चौथी स्त्री के सामने भी वही सवाल फकीर ने रखा। उस स्त्री ने सवाल सुना, आंखें बंद कीं, आंखें खोलीं और कहाः मुझे कुछ पता नहीं। मैं निपट अज्ञानी हूं।
वह चौथी स्त्री स्वीकार कर ली गई।
ज्ञान के मार्ग पर वही सकता है, जो अज्ञान को स्वीकार ले।
स्वाभाविक है यह बात। क्योंकि अगर तुम्हारे पास उत्तर है ही, तो फिर किसी उत्तर की कोई जरूरत न रही। उत्तर है ही, इसका अर्थ है तुम स्वयं ही अपने गुरु हो; किसी गुरु का कोई सवाल न रहा। गुरु की खोज वही कर पाता है, जिसके पास कोई उत्तर नहीं है।
समस्या है! विराट समस्या है। समाधान का कोई ओर-छोर नहीं मिलता।
जीवन एक पहेली है। सुलझाने की कोई कुंजी हाथ नहीं। जितना ही जीवन को देखते हैं, उतनी ही उलझन बढ़ती है, रहस्य बढ़ता है। कल तक जिन बातों को जानते थे कि जानते हैं, वे भी अनजानी हो जाती हैं। उनके भी धागे हाथ से छूट जाते हैं।
जैसे-जैसे समझ बढ़ती है, वैसे-वैसे अज्ञान की स्पष्ट प्रतीति होती है।
और जिसको अज्ञान का अहसास होता है, वही केवल गुरु के द्वार पर दस्तक देने में समर्थ है। और जो परम-अज्ञान को अनुभव करता है, वही केवल गुरु के चरणों में झुक पाता है।
ज्ञानी तो झुकेगा कैसे? जो जानता ही है, उसे जनाने का उपाय न रहा। जो सोचता है कि मैं जागा ही हुआ हूं, उसको जगाने की क्या संभावना है? और मजा यह है कि तुम अपनी गहरी नींद में भी सपना देख सकते हो, कि तुम जागे हुए हो। जागे हुए होने के भी सपने आते हैं। जब आदमी नींद में देखता है कि मैं जाग गया, तब ऐसे आदमी को जगाना बड़ा मुश्किल है।
अज्ञान में भी ज्ञान के सपने आते हैं। न मालूम कितने अज्ञानी हैं, जो अपने को पंडित समझते हैं! पंडित है ही उस अज्ञानी का नाम, जिसने अपने को ज्ञानी समझ लिया है। जिसने अपने अज्ञान को ढांक लिया है शास्त्रों से लिए गए उधार शब्दों में।

इसलिए ध्यान रखाना, वास्तविक अज्ञान का बोध तो व्यक्ति को गुरु के चरणों में ले जाता है और ज्ञान का अहंकार शास्त्रों में। तब आदमी शास्त्र खोजता है, गुरु नहीं। क्योंकि शास्त्रों में समर्पण करने की कोई जरूरत नहीं है। शास्त्र तो निर्जीव हैं। उन्हें तुम चाहो जैसा उनका अर्थ कर लो। गुरु को तो तुम न बदल सकोगे। शास्त्र को तुम बदल सकते हो। गुरु तुम्हें बदलेगा। और गुरु की बदलाहट का पहला सूत्र तो यही है, कि पहले वह तुम्हें जगाएगा और बताएगा, कि तुम गहरी नींद में सोए हुए हो। वह पहले तुम्हें इस होश से भरेगा कि तुम अज्ञानी हो, निपट अज्ञानी हो। वह पहले तुम्हारी आंखें अंधकार के प्रति खोलेगा। क्योंकि अंधकार के बाद ही प्रकाश की संभावना है। गिरा हुआ ही उठ सकता है। और जो सोचता है, मैं उठा ही हुआ हूं, शिखर पर विराजमान हूं, उसको उठाने के सब उपाय व्यर्थ हो जाते हैं। कोई ज्ञानी उसको उठाने की झंझट में पड़ता भी नहीं।
अब हम कबीर के इन वचनों को समझने की कोशिश करें। इस कहानी के संदर्भ में बहुत सी बातें साफ हो जाएंगी।
"गुरुदेव बिन जीव की कल्पना ना मिटै।"
सूत्र है इस सारी वचनावली का--"कल्पना।"
अज्ञानी कल्पना में जीता है। कल्पना का अर्थ है कि झूठा जगत, जो उसने अपने मन से बना लिया है; जो है नहीं, पर जो उसने आरोपित कर लिया है। एक काल्पनिक जगत में जीता है अज्ञानी। जहां मित्र नहीं हैं, वहां सोच लेता है, मित्र हैं। जहां अपना नहीं है कोई, वहां सोच लेता है अपने हैं। जहां जीवन प्रतिपल मृत्यु के कगार पर खड़ा है, वहां सोच लेता है, कि सदा जीना है! जहां धन धोखा है, वहां उसी को सब कुछ मान कर जी लेता है। जहां देह आज है और कल नहीं होगी, उस देह के साथ ऐसा रससिक्त हो जाता है, कि जैसे यही मैं हूं! जहां विचार हवा की तरंगों से ज्यादा नहीं हैं, उन्हीं विचारों में इतना लीन हो जाता है, जैसे कि शाश्वत, नित्य हैं! जहां अहंकार एक झूठी मान्यता है, उस झूठी मान्यता पर सब निछावर कर देता है; मरने-मारने को राजी, उतारू हो जाता है।
कल्पना अज्ञान का सूत्र है, सत्य ज्ञान का।
सत्य का अर्थ है, जो है, उसे वैसा ही देख लेना; और कल्पना का अर्थ है, जो
है उसे वैसा देखना, जैसा तुम चाहते हो। सत्य को देखने के लिए बड़ा साहस चाहिए क्योंकि जरूरी नहीं है कि सत्य तुम्हारी आकांक्षा से राजी हो। जरूरी नहीं है, कि सत्य तुम्हारी आकांक्षा के अनुकूल हो। जरूरी नहीं है, कि सत्य तुम्हारे सपनों की पूर्ति करे। उलटा ही ज्यादा जरूरी है, कि सत्य तुम्हारे सपनों को तोड़ दे।
कहावत है कि डूबता तिनके का सहारा ले लेता है। लेकिन उसे तिनके में नाव दिखाई पड़ती है। और अगर तुम उससे कहो, कि उससे कहो, कि यह तिनका है, इसको पकड़ कर तुम बचोगे न, तो वह तुम पर नाराज हो जाएगा। क्योंकि तुम जो कह रहे हो, उसका मतलब यह हुआ कि तुम उसकी मौत की घोषणा कर रहे हो। वह तिनके को नाव मानकर आंख बंद किए बह रहा है। सोचता है, बच जाऊंगा। बड़ी आशा जगाए हुए है। यूनान में एक बड़ी प्रसिद्ध कथा है। तुमने भी सुनी होगी। एक पुरानी कथा है, कि देवता नाराज हो गए एक व्यक्ति पर। उसका नाम था प्रोमोथियस। वे उस पर नाराज हो गए, क्योंकि उसने देवताओं के जगत से अग्नि चुरा ली और आदमियों के जगत में पहुंचा दी।
और अग्नि के साथ आदमी बड़ा शक्तिशाली हो गया। उसका भय कम हो गया, उसका भोजन पकने लगा, उसके घर में गर्मी आ गई, जंगली जानवरों से रक्षा होने लगी। और जितना आदमी मजबूत हो गया, उतनी उसने देवताओं की फिकर करना बंद कर दी। प्रार्थना, पूजा क्षीण हो गयी।
प्रोमोथियस पहला वैज्ञानिक रहा होगा, जो अग्नि को पैदा किया। देवता बहुत नाराज हो गए, क्योंकि उनकी पूजा-पत्री में बड़ा भग्न हो गया। सारी व्यवस्था टूट गयी। आदमी डरे न, कंपे न। उसके पास अपनी आग हो गई बचाने के लिए।
तुम सोच भी नहीं सकते कि आदमी आग के बिना कैसा रहा होगा। बड़ा भयभीत! रात सो नहीं सकता था क्योंकि जंगली जानवर! रात भयंकर अंधकार था। सिवाय भय

के और कुछ भी नहीं। रात में ही बच्चे जंगली जानवर ले जाते, आदमियों को ले जाते, पत्नियों को ले जाते; सुबह पता चलता। रात बड़ी भयंकर थी।
उसका भय अभी भी आदमी के मन में मौजूद रह गया है। करोड़ों साल बीत गए, लेकिन भय अभी रात में सरकने लगता है फिर से। तुम्हारे अचेतन मन में तुम अब भी वही आदमी हो, जिसके पास अग्नि न थी।
फिर अग्नि ने बड़ी सुरक्षा दी। अग्नि सबसे बड़ी खोज है। अभी तक भी अग्नि
से बड़ी खोज नहीं हो पाई। एटम बम भी उतनी बड़ी खोज नहीं है।
प्रोमोथियस पर देवता नाराज हुए। उन्होंने उसे स्वर्ग से निष्कासित
कर दिया, जमीन पर भेज दिया। फिर उसे कष्ट देने के लिए, उसे पीड़ा में डालने के लिए उन्होंने एक स्त्री रची। पिंडोरा उस स्त्री का नाम है। उसको उन्होंने बड़ा सुंदर रचा। सौंदर्य के देवता ने उसको सौंदर्य दिया, बुद्धि के देवता ने उसे प्रतिभा दी, नृत्य के देवता ने उसको पदों में नृत्य भरा, संगीत के देवता ने उसके कंठ को संगीत से सजाया; ऐसे सारे देवताओं ने मिलकर पिंडोरा बनाई। पिंडोरा जैसी कोई सुंदर स्त्री नहीं हो सकती; क्योंकि सारे देवताओं की सारी सृजनशक्ति उस पर लग गई।
वह प्रोमोथियस को भ्रष्ट करने के लिए उन्होंने पृथ्वी पर भेजी। और उसके साथ चलते वक्त उन्होंने एक पेटी दे दी--एक संदूकची, जो बड़ी प्रसिद्ध हैः "पिंडोरा की मंजूषा" और कहा, कि इसे खोलना मत। कभी भूलकर मत खोलना। देवता चाहते थे, कि वह खोले। इसलिए उन्होंने कहा कि इसको खोलना मत, भूल कर मत खोलना। इसको खोलना ही नहीं है, चाहे कुछ भी हो जाए! स्वभावतः देवता कुशल हैं, चालाक हैं, जिस चीज को खुलवाना हो, उसके लिए यह जिज्ञासा भर देनी, कि खोलना मत, उचित है। अगर वे कुछ न कहते तो शायद पिंडोरा भूल भी जाती उस संदूकची को। लेकिन उस दिन से उसको दिन रात एक ही लगा रहता मन में, कि उस संदूक में क्या है?
बड़ी सुंदर संदूक थी, हीरे-जवाहरातों से जड़ी थी। आखिर एक दिन उससे न रहा गया। आधी रात में उठकर उसने संदूक खोल कर देख ली।
संदूक खोलते ही वह घबड़ा गई। उसमें से भयंकर मनुष्य-जाति के दुश्मन निकले--क्रोध, लोभ, मोह, काम, भय, ईर्ष्या, जलन! एकदम पिंडोरा की संदूकची खुल गई और उसमें से निकले ये सारे भूत-प्रेत और सारी पृथ्वी पर फैल गए। घबड़ाहट में उसने संदूकची बंद कर दी, लेकिन तब तक देर हो चूकी थी। सब निकल चुके थे, संदूकची में जो-जो थे, सिर्फ एक तत्व रह गया; उस तत्व का नाम हैः आशा। बाकी सब निकल गए, संदूक बंद हो गई। सिर्फ आशा, होप भीतर रह गई।
कहानी का अर्थ है, कि लोभ, काम, क्रोध सब तुम्हें बाहर से सताते हैं। आशा तुम्हें भीतर से सताती है।
आशा यानी कल्पना! सपना! इंद्रधनुष! जैसा है नहीं, उसकी कामना। उसका भरोसा, जैसा कभी नहीं होगा। तुम भी अपने यथार्थ क्षणों में जानते हो, ऐसा कभी नहीं होगा, लेकिन सपना तुम्हें पकड़ता है तो तुम भी मानने लगते हो, कि ऐसा ही होगा। वह पिंडोरा की संदूकची में आशा भीतर बंद है--कल्पना, आशा का जाल।
कबीर कहते हैं,
गुरुदेव बिना जीव की कल्पना ना मिटै।
बिना उस आदमी से मिले, जिसकी कल्पना मिट गई हो, और जिसने सत्य को जाना हो, जिसने सत्य को रंगने-पोतने की व्यवस्था छोड़ दी हो, जिसने सत्य को वैसा ही जाना हो जैसा है, जिसने यथार्थ में अपनी आंखों से कुछ भी उड़ेलना बंद कर दिया हो, जिसने अपने मन के जाल को बाहर फैलाने से रोक लिया हो, जिसने मन ही तोड़ दिया हो, जो अ-मन हो चुका हो। जब तक वह तुम्हें न मिले जाए, कौन तुम्हें तुम्हारी कल्पना से जगाए?
कल्पनाः माया। कल्पना--नींद में आंख बंद आदमी का सपना। कितना ही सुंदर हो, लेकिन झूठा।
और हमारी तकलीफ यह है, कि हम झूठ को भी मान लेते हैं, सुंदर होना चाहिए। और सत्य कठोर है। ऐसा नहीं, कि वह सुंदर नहीं है, लेकिन उसके सौंदर्य में एक कठोरता है--होगी ही। वह तुम्हें मालूम पड़ती है कठोरता, क्योंकि तुम सपनों के सौंदर्य में धीरे-धीरे इतने आदी हो गए हो, कि यथार्थ

की सख्ती और यथार्थ का यथार्थ तुम्हारे सपनों को तोड़ता मालूम पड़ता है।
तुम सपनों के साथ-साथ धीरे-धीरे बहुत कमजोर हो गए हो। इसलिए सत्य को झेल नहीं पाते।
तुम सत्य को भी झेलना चाहो, तो उसके ऊपर झूठ की थोड़ी सी पर्त चाहिए।
तुम सत्य को सीधा-सीधा साक्षात नहीं कर पाते। तुम घबड़ाते हो, कि कहीं तुम मिट न जाओ, कहीं तुम टूट न जाओ। तुम कमजोर हो गए हो कल्पना के साथ। कल्पना ने तुम्हें शक्ति तो नहीं दी, तुम्हारी सारी शक्ति छीन ली है।
गुरु का अर्थ है, जो तुम्हें धीरे-धीरे, कदम-कदम, हाथ पकड़ कर ले चले सत्य की तरफ। जो धीरे-धीरे तुम्हारी कल्पना से तुम्हें छुड़ाए।
एक बहुत बड़ा झेन साधक हुआ, लिंची। वह अपने गुरु के पास था। और जब आया
था तो गुरु ने उससे निर्वाण की और मोक्ष की और बुद्धत्व की बड़ी मीठी बातें की थीं। और एक सपना पैदा कर दिया था। और लिंची कठोर साधना में लग गया-- बुद्धत्व पाना है।
कुछ वर्षों की निरंतर साधना, गुरु के सहवास, सत्संग का परिणाम यह हुआ ध्यान लगने लगा। बुद्धत्व करीब मालूम होने लगा। एक दिन ऐसी घड़ी आ गई, कि लिंची को लगा, कि बस अब एक छलांग और-और मैं बुद्धत्व को उपलब्ध हो जाऊंगा। वह गया अपने गुरु के पास, चरण छूकर उसने गुरु से कहाः बस एक छलांग और! जरा सा धक्का चाहिए, मैं बुद्धत्व को उपलब्ध हो जाऊंगा।
गुरु ने कहाः कैसा बुद्धत्व! कैसा मोक्ष! कैसा निर्वाण! सब बकवास है। लिंची तो घबड़ा गया। उसने कहाः क्या आप कहते हैं? मैं तो इसी आशा में सारी साधना में लगा हूं।
उसके गुरु ने कहांः बच्चों को हम मिठाई देते हैं, ताकि वे स्कूल चले जाएं। कोई मिठाई देने के लिए मिठाई नहीं देते, स्कूल भेजने के लिए मिठाई देते हैं। फिर जैसे-जैसे बच्चे को स्कूल में रस आने लगेगा, मिठाई कम होने लगती है। फिर एक दिन मिठाई बंद कर देनी होती है। बुद्धत्व? जब तक पाने की कोई भी आकांक्षा है, तब तक कल्पना काम कर रही है। आज उसे भी छोड़। अब कुछ पाना नहीं है। अब जो है, उसे जानना है।
लिंची ने लिखा है, मेरा रोआं-रोआं कंप गया। संसार छोड़ना था, बुद्धत्व
को छोड़ना! और उसके गुरु ने जो वचन कहा, वह चीन और जापान में बड़ी महत्वपूर्ण उक्ति हो गया है। और झेन साधक उस पर ध्यान करते हैं।
लिंची के गुरु ने कहाः इफ यू मीट दि बुद्धा ऑन दि वे, इमिजिएटली किल हिम। अगर बुद्ध तुम्हें कहीं मार्ग पर मिल जाएं, तो तत्क्षण उनको कत्ल कर देना। एक क्षण रुकना मत।
क्योंकि कहीं ऐसा न हो कि बुद्धत्व का मोह तुम्हें पकड़ ले। फिर संसार खड़ा हो जाता है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, कि तुम सपना धन के संबंध में देखते हो या धर्म के संबंध में। इससे भी कोई फर्क नहीं पड़ता कि तुम सपना इस जगत में एक सुंदर मकान बनाने का देखते हो, या उस जगत में, स्वर्ग में एक सुंदर मकान पाने का; कोई फर्क नहीं पड़ता। सपना, सपना है।
और सब सपने छूट जाने चाहिए। जब सब सपने गिर जाते हैं, जैसे सांप सरक जाता है अपनी पुरानी केंचुली के बाहर और पीछे लौटकर भी नहीं देखता, ऐसे जिस दिन तुम अपने कल्पना के बाहर निकल आते हो उसी दिन सत्य का साक्षात है। उसी दिन मुक्ति है।
वह मुक्ति तुम्हारी आकांक्षाओं की मुक्ति नहीं है। वह मुक्ति तुम्हारे सपनों में सोची गई मुक्ति भी नहीं है। वह निर्माण तुमने जैसा सोचा था, वैसा बिल्कुल नहीं है; वह बिल्कुल अन्यथा है। लेकिन उसके संबंध में आज तुम कुछ सोच भी नहीं सकते। उसे तो तुम जानोगे, तभी जानोगे। उसका तो तुम अनुभव करोगे, तभी करोगे। वह रस ही ऐसा है। उसका तुम स्वाद लोगे, तभी लोगे।
कबीर कहते हैं,
"गुरुदेव बिन जीव की कल्पना ना मिटै।"
अगर तुम अकेले अपने ही सहारे चलोगे तो ज्यादा से ज्यादा यह कर सकते हो
कि संसार की कल्पनाएं छोड़ कर तुम मोक्ष की कल्पनाएं करने लगोगे। ज्यादा

से ज्यादा इतना हो सकता है; और यह कुछ भी नहीं है। इसका कोई भी मूल्य नहीं है।
तुम यहां पत्नी को छोड़ोगे तो तुम स्वर्ग में किसी अप्सरा को पाने की कल्पना करने लगोगे। तुम यहां शराब छोड़ोगे तो तुम्हारे स्वर्ग में शराब के चश्मे बहने लगेंगे। तुम यहां तप करोगे, घर की छाया छोड़ोगे, तो तुम्हारा स्वर्ग वातानुकूलित, एअर-कण्डीशण्ड होगा।
होना ही चाहिए। सभी तपस्वी उसी स्वर्ग की कामना कर रहे हैं, जो बिल्कुल वातानुकूलित है, शीतल है। शास्त्रों को एअर-कंडीशनिंग शब्द का पता नहीं था, इसलिए वे कहते हैं, शीतल है, मंद-मंद बयार बहती है, सुबह जैसी शीतलता दिन भर बनी रहती है। उस वक्त तक वातानुकूलित शब्द उन्हें अंदाज में नहीं था, अब है। अब उसे सुधार कर देना चाहिए।
लेकिन तुम ध्यान रखना, ये सारी कल्पनाएं अलग-अलग जातियों की स्वभावतः अलग-अलग होंगी, क्योंकि अलग-अलग जातियों का अनुभव अलग-अलग है।
तिब्बत के शास्त्रों में नहीं लिखा है कि स्वर्ग ठंडा और शीतल है। तिब्बती ठंड और शीत से इस बुरी तरह परेशान हैं। उनका नर्क ठंडा है। वहां बर्फ जमी रहती है, वह कभी नहीं पिघलती। उनके स्वर्ग में तो सूरज सदा निकला रहता है--ऊष्ण, तप्त! कभी बादल नहीं घिरते और कभी बर्फ नहीं जमती।
हिंदू और तिब्बती बहुत दूर नहीं हैं। लेकिन हिंदुओं के स्वर्ग में शीतल मंद बयार बहती है! तिब्बतियों के स्वर्ग में सूरज सदा निकलता रहता है और उत्तप्त बना रहता है! हिंदुओं के नर्क में लपटें जलती हैं और लोग कड़ाहों में डाले जाते हैं--उबलते हुए तेल में। तिब्बतियों के नर्क में लोग ठंडे बर्फ में फेंक दिए जाते हैं, जो वहीं सड़ते हैं।
अब यह जरा सोचने जैसा है, कि क्या सब जातियों के लिए अलग-अलग स्वर्ग और नर्क हैं? क्या तिब्बतियों के लिए कोई विशेष इंतजाम है, हिंदुओं के लिए कोई विशेष?
नहीं! लेकिन हर जाति की कल्पना अपने अनुभव से निकलती है। जैसी जाति होगी, उसकी कल्पना उसके अनुभव से निकलेगी। मुसलमानों का स्वर्ग और ढंग का होगा, हिंदुओं का स्वर्ग और ढंग का, ईसाइयों का स्वर्ग और ढंग का। नरक भी भिन्न-भिन्न होंगे।
क्योंकि हमारी कल्पनाएं हमारे जीवन के अनुभव के विपरीत होती हैं। जो-
जो जीवन में हम चूक गए हैं, वह हम स्वर्ग में रख लेते हैं। जो-जो मिल गया है, उसकी हम फिकर छोड़ देते हैं।
ध्यान रखना, बिना गुरु के तुम्हारी कल्पना न मिटेगी। कल्पना का रूप
भर बदल सकता है, ढंग भर बदल सकता है, कल्पना जीवित रहेगी।
कल्पना तो उसी के सहवास में मिट सकती है, जिसके भीतर सत्य का अयुदय हुआ हो।
"गुरुदेव बिन जीव का भला नाहिं।।
गुरुदेव बिना जीव का तिमिर नासै नाहिं।"
वह अंधकार नहीं मिटता।
"समझि विचार लै मन माहि।।"
कबीर कहते हैं, ठीक से इस बात को विचार कर ले। इसके पहले, कि तू उस अनंत
की यात्रा पर निकले, इसका ठीक से विचार कर ले; कि अनंत की यात्रा पर अगर तू अकेला ही गया तो वह यात्रा तेरे मन से बाहर की न होगी। कोई चाहिए, जो मन के बाहर गया हो, जो तेरा हाथ पकड़ ले और यात्रा पर ले जाए।
जैसे छोटे बच्चे को कोई प्रौढ़ चाहिए, जो हाथ का सहारा दे दे, भरोसा दे दे, श्रद्धा को जन्मा दे और बच्चा उठे और चलने लगे। कोई हाथ चाहिए, कोई सहारा चाहिए।
"समझि विचार लै मन माहि।।
राह बारीक गुरुदेव तें पाइए।"
बहुत बारीक है राह। बड़ी सूक्ष्म और नाजुक। जीसस का वचन हैः स्ट्रेट इ.ज दि वे, बट नैरो। सीधा है मार्ग, पर बड़ा संकीर्ण।
राह बारीक! राह इतनी बारीक है, कि तुम अपने विचार से उसे देख ही न पाओगे, क्योंकि तुम्हारा विचार इतना बारीक नहीं है।

इसे थोड़ा समझ लो।
तुम्हारा विचार बहुत स्थूल है। विचार मात्र स्थूल होते हैं। सिर्फ ध्यान बारीक होता है। तुम कभी सोचो, तुम कितने ही सूक्ष्म विचार करो, विचार में सूक्ष्मता होती ही नहीं। विचार तो मोटी चीज है, स्थल चीज है।
कितना ही बारीक विचार तुम करो, विचार का स्वभाव ही बारीक होना नहीं है। जब सब विचार खो जाते हैं, सिर्फ निर्विचार दशा रह जाती है, तभी तुम्हारे जीवन में पहली दफा बारीक का बोध होता है।
इसे तुम ऐसा समझो कि बाजार में तुम बैठे हो, बड़ा शोरगुल है बाजार का, कहीं कोई एक पक्षी गीत गा रहा है, क्या तुम्हें सुनाई पड़ेगा? असंभव! बाजार में तो बाजार का शोरगुल, उपद्रव इतना है कि किसी कोयल की धीमी सी आवाज कहां सुनाई पड़ेगी? उसका कुहू-कुहू खो जाएगा उपद्रव में।
फिर तुम एकांत में बैठे हो एक पहाड़ के, बाजार का शोरगुल नहीं है, कुहू- कुहू सुनाई पड़ती है। लेकिन वहां भी तुम एक बात ध्यान करना, अगर तुम्हारे भीतर बहुत विचार चल रहे हों, तो उतनी देर को सुनाई पड़ना बंद हो जाएगा। कभी- कभी विचार का क्षण न होगा, तो आवाज सुनाई पड़ेगी। कभी-कभी विचार भीतर शुरू हो जाएंगे, आवाज सुनाई पड़नी बंद हो जाएगी। क्योंकि फिर भीतर बाजार खड़ा हो गया। विचार यानी भीतर का बाजार।
फिर तुम हिमालय पर बैठे रहो, तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता। अगर भीतर विचार का कोलाहल है, तो वह जीवन का सूक्ष्म संगीत बज रहा है, वह तुम्हें सुनाई न पड़ेगा। वह बहुत बारीक है। वह कोयल की आवाज से भी बारीक है। उससे बारीक कुछ भी नहीं, क्योंकि वह अनाहत नाद है। उसी को हम ओंकार कहते हैं। "ओम तत्सत्" उसी का नाम है।
लेकिन वह इतना बारीक है, इतना बारीक है, कि तुम्हारे विचार जब तक बिल्कुल ही न खो जाएं, जब तक शून्य न हो जाएं भीतर, तब तक तुम्हें उसकी प्रतीति और अनुभूति न होगी।
कबीर कहते हैं,
"राह बारीक गुरुदेव तें पाइए।"
और वह बारीक इतनी है, कि तुम्हें उसका कोई अनुभव नहीं। तुम उस राह पर जाओगे कैसे?
बहुत लोग परमात्मा के संबंध में भी सोचते रहते हैं। अब परमात्मा का सोचने से कुछ लेना-देना नहीं। जब तक सोच है, तब तक परमात्मा नहीं। वे बैठकर सोचते रहते हैं!
मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, वर्षों से हम ध्यान कर रहे हैं। मैं पूछता हूं, ध्यान में तुम करते क्या हो? वे कहते हैं, बैठकर परमात्मा का चिंतन-मनन करते हैं। अब परमात्मा का चिंतन-मनन क्या होगा?
यह तो ऐसे ही हुआ कि कोयल तो गीत गा रही है आम के वृक्ष में छिपी, और तुम उसी के नीचे बैठकर कोयल के गीत के संबंध में सोच रहे हो। और तुमने कभी कोयल का गीत सुना नहीं, तुम सोचोगे कैसे? जो जाना ही नहीं है, उसका विचार कैसे करोगे? और जिसने जान लिया है, वह कहीं विचार करता है? जब कोयल ही गा रही हो, तो तुम्हारे विचार करने की, उधार होने की क्या जरूरत है? सीधा कोयल का गीत बरस रहा है, तुम खुले हो जाओ, बरसने दो इस गीत को। परमात्मा तो सब तरफ मौजूद है, तुम सोच क्या रहे हो? किसके संबंध में सोच रहे हो? तुम सोच रहे हो, वह परमात्मा नहीं हो सकता। वह तुमने जो, परमात्मा के संबंध में जो तुमने शास्त्रों में पढ़ा है, तुम वही सोच रहे हो। परमात्मा शब्द परमात्मा नहीं है।
परमात्मा शब्द ही नहीं है, वह एक अनुभव है। तुम जब असोच में होते हो,
सब सोच बंद हो गया होता, तब तत्क्षण उसके द्वार खुल जाते हैं।
"राह बारीक गुरुदेव तें पाइए।"
और क्या मिल सकता है गुरु के पास? विचार नहीं, सिर्फ ध्यान। और ध्यान
का अर्थ है, एक ऐसी चित्त की दशा, जब तुम जागे हुए पूरे हो और विचार के बादल तुम्हारे भीतर के आकाश में बिल्कुल नहीं। सूरज पूरी तरह निकला है होश का, और बदलियां बिल्कुल छट गई हैं--नीला आकाश! तुम्हारे होश को छोड़ने के लिए,

रोकने के लिए कोई भी अवरोध नहीं है। अबाध बहती है होश की धारा। आकाश पूरा खाली है।
इस सोच-शून्य अवस्था का नाम ही वह बारीक दशा है, जिसे ध्यान कहो। प्रारंभ जब होता है तो ध्यान, जब यह अवस्था पूर्ण हो जाती है तो समाधि। "राह बारीक गुरुदेव तें पाइए।"
कौन तुम्हारे विचार को धीरे-धीरे तुमसे छीनेगा?
गुरु का अर्थ समझ लेना। हमारे पास दो शब्द हैं, दुनिया के किसी भाषा में वैसा नहीं है। क्योंकि दुनिया की किसी जाति का वैसा गहन अनुभव नहीं है। हमारे पास एक शब्द तो है, शिक्षक; और एक शब्द है, गुरु।
शिक्षक का अर्थ हैः जो तुम्हें सिखाए, शिक्षा दे। गुरु का अर्थ है? जो तुमसे छीन ले, तुमने जो सीखा है। जो तुम्हें मिटाए, जो तुम्हें खाली करे। तो गुरु सिखाता नहीं, अनसिखाता है। गुरु तुम्हें कुछ देता नहीं, लेता है। गुरु तुम्हें खाली करता है, शिक्षक तुम्हें भरता है।
धर्म के जगत में भी तुम शिक्षकों से बचना, क्योंकि वे तुम्हें भरेंगे। वे गुरु नहीं हैं। और बड़ी कठिनाई हो जाती है, क्योंकि तुम ही अपने को भरने को आतुर होते हो, इसलिए तुम अक्सर उनके चरणों में चले जाते हो जो तुम्हें भरें। वे अपना ज्ञान तुममें उंडेल देंगे। तुम जान कर हो जाओगे। शायद धीरे-धीरे तुम भी पंडित हो जाओगे। शायद धीरे-धीरे ऐसा मौका आ जाएगा कि तुम भी शिक्षक हो जाओगे और दूसरों को सिखाने लगोगे।
लेकिन गुरु बड़ी अनूठी घटना है। गुरु का मतलब है, जो तुम्हें खाली करे,
जो तुम्हें मिटाए, जो तुम्हारी स्लेट पर लिखे हुए को पोंछ दे, जो तुम्हें फिर से कोरा कागज करे।
ऐसी महाराष्ट्र में कथा है। निवृत्तिनाथ एक बड़े अदभुत फकीर हुए। उन्होंने एक पत्र लिखा एक दूसरे संत को। खाली कागज भेज दिया। गुरु लिखे भी तो क्या लिखे? खालीपन ही लिख सकता है। संत को खाली कागज मिला। कहते हैं, संत ने खाली कागज पढ़ा; गौर से पढ़ा। लिखा हुआ हो तो गौर की बहुत जरूरत भी नहीं, लिखोगे क्या? लिखे हुए में पढ़ने-योग्य भी क्या होता है? लेकिन अनलिखा था। बड़ी बारीक बात लिखी थी। शब्द में नहीं आती, वह लिखा था। "अक्षर" ही लिखा था--जो कभी क्षय नहीं होता। अक्षर है। हाथ से बनाए हुए अक्षर बनते हैं, मिटते हैं, इनको क्या लिखाना! असली अक्षर लिखा था, शाश्वत लिखा; इसीलिए तो दिखाई नहीं पड़ता था। जैसे परमात्मा छिपा है, ऐसा पत्र भी छिपा था--कोरा कागज था।
गौर से पढ़ा, बार-बार पढ़ा, क्योंकि कुछ चूक न जाए, कुछ छूट न जाए। पास बैठे लोग जरा चिंतित हुए। कि वह एक आदमी तो पागल मालूम होता ही है, जिसने लिखा है, कोरा कागज भेजा है; और यह आदमी उससे भी ज्यादा पागल मालूम पड़ता है, जो पढ़ रहा है। और एक बार नहीं पढ़ रहा है, बार-बार पढ़ रहा है। और सब तरफ से पढ़ रहा है। क्योंकि लिखे कागज को तुम एक ही तरफ से पढ़ सकते हो, कोरे कागज को तुम सब तरफ से पढ़ सकते हो।
कई तरह से पढ़ा, आगे से पढ़ा, पीछे से पढ़ा, सीधा करके पढ़ा, उलटा करके पढ़ा। मग्न हो गया पढ़कर। फिर उसकी बहन बैठी थी, वह भी एक संतत्व को उपलब्ध महिमा थी। फिर उसने अपनी बहन को कहा, कि तुम पढ़ो। उसकी बहन ने भी पढ़ा। और बहन ने कहा, कि निवृत्तिनाथ पा लिया। मिल गया उसे। क्योंकि कोरापन तो वही दे सकता है, जिसको मिल गया हो।
गुरु तुम्हें कोरापन देगा। इसलिए बहुत बार तुम गुरु के पास जाने से डरोगे, क्योंकि तुम्हारे भीतर जो भरा है, उसे तुम संपत्ति समझ रहे हो। वह कूड़ा करकट है। वह कचराघर में डाल देने जैसा है--तुम्हारे सब विचार। लेकिन उनको तुमने बड़ी संपत्ति की तरह संजोया है! तुम कहते हो, मैं हिंदू, मैं मुसलमान, मैं जैन! मैं शास्त्र का ज्ञाता! गीता मुझे कंठस्थ! कि मैं चतुर्वेदी--चारों वेद का जानने वाला; कि त्रिवेदी--तीन वेद का जानने वाला! जानकारी तुम्हारी संपत्ति मालूम होती है।
गुरु के पास जाते तुम डरोगे। पंडित कंपता है गुरु के पास जाते। इसलिए मैं निरंतर कहता हूं, कभी-कभी पापी भी पहुंच जाते हैं गुरु के पास, पंडित नहीं पहुंच पाता है। पापी को बहुत डर भी नहीं है। गुरु छीन ही लेगा, पाप ही

तो पास में है, कुछ और है भी नहीं! पंडित बहुत डरता है, उसके पास संपत्ति है। कहीं छीन न ली जाए!
और ध्यान रखना, जब तक तुम्हारा भरा हुआ मन खाली न किया जाए, जब तक तुम्हारा पात्र खाली करके मांजा न जाए, तब तक उसमें परमात्मा के अमृत को तुम न ले पाओगे, न झेल पाओगे। तुम्हारा पात्र खाली किया जाना जरूरी है, आग से निकाला जाना जरूरी है, ताकि शुद्ध हो जाए।
"राह बारीक गुरुदेव तें पाइए"--
शिक्षक नहीं दे सकेंगे वह बारीक राह। वे तुम्हें ज्ञान दे सकेंगे, ध्यान न दे सकेंगे।
गुरु वही है, जो ध्यान दे।
ज्ञान तो विश्वविद्यालयों में मिल जाता है। उसके लिए आश्रमों की जरूरत नहीं। उनके लिए गुरुकुलों की जरूरत नहीं है। ज्ञान तो सस्ता है; मिल जाता है कहीं भी। बाजार-बाजार में उपलब्ध है।
ध्यान कठिन है। और कठिनाई यह है, कि ज्ञान तो तुम जैसे हो, वैसे को ही मिल जाता है। ध्यान तो तभी मिलता है, जब तुम मिटने को परिपूर्ण रूप से तैयार होते हो। ध्यान पहले तुम्हें मिटाता है, मरता है। इसलिए पुराने शास्त्रों में एक अदभुत वचन है। वह वचन हैः "आचार्यो मृत्युः", आचार्य मृत्यु है। गुरु मृत्यु है। उसके पास जाकर तुम मरोगे। मरना ही पड़ेगा। उसके पास जाकर मिटोगे, मिटाना ही पड़ेगा। क्योंकि मिट कर ही तुम हो सकोगे। तुम्हारा असली स्वरूप तभी प्रकट होगा, जब तुम्हारा कल्पना का स्वरूप गिर जाए और मिट जाए।
"जनम अनेक की अटक खोलै।"
"राह बारीक गुरुदेव तें पाइए।
जनम अनेक की अटक खोलै... "
कितने जन्मों से तुम अटके हो!
तुम्हारी "अटक"--यह शब्द बड़ा प्यारा है। यह अटक ऐसी है, जैसे कभी-कभी ग्रामोफोन में सुई अटक जाती है। फिर वह वही का वही दुहराती रहती है, जैसे जप कर रही हो! जहां अटक गई, उसी का जप जारी रहता है। अटक शब्द बड़ा प्यारा है।
तुम एक ही जगह अटके हो। बार-बार वहीं अटक जाते हो, वहीं आ जाते हो। फिर
मर जाते हो, फिर पैदा हो जाते हो, फिर वहीं आ जाते हो। सुई अटकी है ग्रामोफोन की। और इतनी बार अटक चुकी है, कि अब वहां गट्ठा हो गया है। अब वहां से आगे सुई जा नहीं सकती, अब तक कि कोई उठा कर ही सुई को आगे न रख दे। "जनम अनेक की अटक खोलै।"
कोई चाहिए जो तुम्हें उठा कर तुम्हारी अटक के बाहर ले जाए। तुम अपने
से न जा सकोगे। थोड़ा सोचो, कि ग्रामोफोन की सुई अपने से कैसे अटक के बाहर जा सकेगी? हां, कोई भूकंप हो जाए, और उपद्रव हो जाए और सब हिल-डुल जाए और शायद सुई झटक जाए। तो कभी-कभी ऐसा भी हुआ है, करोड़ में एकाध आदमी संयोगवशात अटक के बाहर हो गया है। लेकिन संयोग को नियम नहीं बनाया जा सकता। और संयोग अपवाद है। उसके आधार पर चल कर कोई जीवन में क्रांति नहीं ला सकता। जीवन में क्रांति तो नियम से होगी।
"कहै कबीर गुरुदेव पूरन मिलै।
जीव और सीव तब एक तोलै।।"
जब पूर्ण गुरु मिलता है तो जीव में और शिव में, आत्मा में और परमात्मा में कोई भेद नहीं रह जाता। अब यह बड़ा महत्वपूर्ण सूत्र है।
"कहै कबीर गुरुदेव पूरन मिलै।
जीव और सीव तब एक तोलै।।"
यह गुरु की लक्षणा है, कि गुरु पूर्ण है या नहीं। पूर्ण गुरु की यह लक्षणा है, यह क्राइटेरियन है, यह निकष, कसौटी है कि वह तुममें और परमात्मा में जरा फर्क न पाएगा। वह तुम्हें और परमात्मा को एक सा ही तौलेगा। शिक्षक तुम्हारी निंदा करेगा और परमात्मा की प्रशंसा। वह तुम्हारे
और परमात्मा के बीच फासला बताएगा, कि कितनी दूरी है। तुम पापी, तुम नारकीय! वह तुम्हारी निंदा करेगा और परमात्मा की स्तुति करेगा। वह शिक्षक है।

पूर्ण गुरु वही है, जो तुम्हारी सारी निंदा के जाल को तोड़ दे, जो तुम्हारी सारी आत्मग्लानि को तोड़ दे, जो तुम्हारे भीतर गहरे अपराध के भाव को तोड़ दे, जो तुम्हें तुम्हारे पाप की कल्पना के ऊपर उठाए और तुमसे कहे-- तत्वमसि श्वेतकेतु। तुम वही हो। वही परमात्मा तुम हो। रत्ती भर भी फर्क नहीं है। जो तुम्हें तुम्हारे परमात्मा होने की तरफ जगाए।
इसलिए गुरु के पास तुम निंदा न पाओगे, स्वीकार पाओगे। इसलिए गुरु की आंख में तुम जरा भी तुम्हें अपराधी सिद्ध करता हुआ कोई भाव न पाओगे। गुरु की आंख में तुम तुम्हारे भीतर छिपे परमात्मा की स्तुति ही पाओगे।
पर तुम भी अपनी निंदा पसंद करते हो! यह बड़े मजे की बात है। साधारणतः हम सोचते हैं कि लोग निंदा क्यों पसंद करेंगे? कोई निंदा पसंद नहीं करता। लेकिन तुम निंदा पसंद करते हो। कारण हैं उसके; क्योंकि तुम खुद ही मानते हो, कि तुम परमात्मा हो नहीं सकते। तुम्हें खुद भी भरोसा नहीं है। तुम सोचते हो चोर हो तुम, बेईमान हो तुम, धोखेबाज हो तुम, कैसे तुम परमात्मा हो सकते हो? इसलिए जब कोई तुम्हारी निंदा करता है, तब तुम सिर हिलाते हो। तुम भी हां भरते हो। तुम भी कहते हो, बात ठीक है।
तुम्हारे इस अनुभव के कारण तुम्हारी निंदा करने वालों का एक जाल पलता है। वे जितनी तुम्हारी निंदा करते हैं, उतने ही वे तुम्हें प्यारे मालूम पड़ते हैं। लगता है, कि यह आदमी बिल्कुल ठीक कह रहा है, क्योंकि यही तुम्हारा अनुभव भी है।
इसलिए तुम देखोगे, संन्यासी समझाते रहते हैं लोगों को। गालियां देते रहते हैं चोरी को, झूठ को, क्रोध को, लोभ को। और सब चोर, लोभी, क्रोधी बैठे हुए बड़े प्रसंन होते रहते हैं। ताली भी बजाते हैं, सिर भी हिलाते हैं। क्या कारण होगा? तुम्हारे अनुभव से मेल खाता है। गुरु की बात तुम्हारे अनुभव से मेल न खाएगी। वह उसके अनुभव से मेल खाती है, तुम्हारे अनुभव से नहीं। गुरु कहता हैः तुम परमात्मा हो। तुम सुन लेते हो, सोचते हो, शायद! पता नहीं। मगर भरोसा नहीं आता। क्योंकि तुम अपने को भलीभांति जानते हो। और तुमने जैसा अपने को जाना है अपनी नींद में, वह तुम्हारा सच्चा स्वरूप नहीं है।
तुम्हारी हालत ऐसी है, जैसे किसी ने सपने में जाना हो कि वह हत्यारा है; और हम उसे जगा कर कहें कि तू हत्यारा नहीं है; और वह कहे कि मैं कैसे मानूं? अभी-अभी तो हत्या की, हाथ अभी-अभी तो सुर्ख खून से भरे थे। अभी तो किसी का गला दबाया, मैं कैसे मानूं?
लेकिन मैं तुमसे कहता हूं कि सभी गुरु यही कहते रहे हैं कि तुमने जो
भी किया है बुरा और भला; सब सपना है। तुम उसके बाहर हो। जागते ही तुम उससे मुक्त हो जाओगे।
"कहे कबीर गुरुदेव पूरन मिलै।
जीव और सीव तब एक तोलै।।
करो सत्संग गुरुदेव से चरण गहि।
जासु के दरस तें भर्म भागै।।
"करो सत्संग गुरुदेव से चरण गहि"--
सत्संग शब्द समझने जैसा है। यह भी भारत का अपना शब्द है। सत्संग का अर्थ होता है, गुरु के साथ होना--सिर्फ साथ होना, गुरु के पास होना। एक समीपता, आत्मीयता! बस, इतना काफी है।
जैसे वैज्ञानिक कहते हैं, कैटलिटिक एजेंट होता है, जिसकी मौजूदगी में घटनाएं घट जाती हैं बिना उसके सहयोग के। गुरु कुछ करता नहीं। अगर तुम उसकी मौजूदगी में मौजूद हो जाओ, अगर तुम उसके आभा-मंडल में स्नान कर जाओ, अगर तुम उसके पास आ जाओ, और उसकी तरंगों में लीन हो जाओ, वह जिस जगत में बह रहा है, अगर क्षण भर को तुम अपनी नौका उसके जगत में छोड़ दो और उसके साथ बह जाओ; अगर तुम थोड़ी देर उसके तीर्थ में स्नान कर लो, तो सब हो जाता है।
लेकिन गुरु के पास होना बड़ी कला है। बड़ा धैर्य चाहिए, बड़ा संतोष चाहिए। जल्दबाजी काम न आएगी। मांग से तुम गुरु से दूर हो जाओगे। बिना मांगे उसके पास रहो। तुम यह भी मत कहो, कि कब घटेगी घटना? तुम सिर्फ प्रतीक्षा करो और प्रेम करो और प्रार्थना करो।

सत्संग का अर्थ हैः मांगो मत, सिर्फ मौजूद रहो।
जब भी तुम पूरे होओगे, जब भी घड़ी पकेगी, जब भी मौसम आएगा--और हर चीज का मौसम है; और हर बात की घड़ी है; और हर चीज के पकने का समय है--जब भी पकोगे, गुरु की नजर तुम पर पड़ेगी।
वह सदा मौजूद है, तुम भर मौजूद हो जाओ। जब तुम्हारी दोनों की मौजूदगियां मिल जाएंगी; जैसे एक बुझा हुआ दीया जले हुए दीये के करीब--और करीब, और करीब आता जाए और एक क्षण में लपट छलांग ले ले; जलता हुआ दीया झपटे और बुझे हुए दीये में ज्योति पकड़ जाए।
मजा यह है कि जलते हुए दीये का कुछ खोता नहीं, उसकी ज्योति में कोई कमी नहीं आती। हजार दीये जल जाएं उससे, तो भी उसकी ज्योति "उसकी ज्योति" बनी रहती है। कोई फर्क नहीं पड़ता। बुझे हुए दीयों को बहुत मिल जाता है और जले हुए दीये का कुछ भी नहीं खोता।
सत्संग की कला जले हुए दीये के करीब सरकने की कला है।
मांगो मत। क्योंकि मांगने का कोई सवाल नहीं है। करीब होने का एक क्षण है, एक खास दूरी है, एक खास समीपता है, तब छलांग अपने से लग जाती है।
क्या करते हो, जब तुम बुझे दीये को जलाते हो जले के पास लाकर? दोनों को पास लाते हो। फीट भर दूर रखोगे, कितना ही शोरगुल मचाओ, लपट नहीं उठेगी। पास लाओ, पास लाओ--एक खास क्षण है, जब तुम्हारे बिना कहे छलांग लग जाती है। "करो सत्संग गुरुदेव से चरण गहि।"
और सत्संग का एक ही उपाय है, कि तुम समर्पित हो जाओ। तुम छोड़े दो। तुम उसी पर छोड़ दो अपना भविष्य भी, अपने होने की संभावना भी। तुम अपने को पकड़े मत रहो, क्योंकि तुम्हारी पकड़ गुरु को मौका न देगी कि तुम्हारे भीतर जा सके। तुम बंद रहोगे।
"करो सत्संग गुरुदेव से चरण गहि।
जासु के दरस तें भर्म भागै।।
उसके दर्शन से ही भ्रम भाग जाता है, बस तुम पास आओ। तुम गुरु को ठीक से देख लो।
क्या होता है दर्शन से?
गुरु को ठीक से देखने में ही पता चलता है, कि तुमने अपने को भी देख लिया। गुरु तो एक दर्पण बन जाता है। उसमें तुम अपनी ही छाया देख लेते हो। गुरु तो स्वयं मिट चुका है, इसलिए गुरु है। अगर "है" तो उसके तुम कितने
ही पास आओ, तुम अपने को न देख पाओगे। तुम गुरु को ही देख पाओगे। गुरु तो वही है, जो मिट चुका है, शून्य हो गया। वह तो एक ऐसी झील है, जिसकी सब तरंग खो गई। अब वह दर्पण है। तुम जैसे-जैसे करीब आओगे, तुम्हें गुरु नहीं मिलेगा, तुम ही मिलोगे। तुम्हें अपनी ही झलक दिखाई पड़ेगी। तुम एक दिन पाओगे, कि गुरु दर्पण हो गया। उसने तुम्हें तुम्हीं को बता दिया।
"जासु के दरस तें भर्म भागै।
सील और सांच संतोष आवै दया।
काल की चोट फिर नाहिं लागै।"
जिसको अपना आत्म-बोध हो जाता है गुरु के पास, फिर शील, आचरण, सत्य, संतोष, दया सब अपने से चले आते हैं।
जब तक आत्म-ज्ञान नहीं हुआ, तब तक तुम्हें शील लाना पड़ता है, चेष्टा करनी पड़ती है। सम्हालो आचरण को, साधो अहिंसा को; करुणा, दया, दान--प्रयत्न होते हैं। प्रयत्न के कारण ही बहुत गहरे नहीं होते, ऊपर-ऊपर होते हैं। अपनी छवि जिस दिन तुमने देख ली गुरु के दर्पण में, उस दिन...
"सील और सांच संतोष आवै दया।
"काल की चोट फिर नाहिं लागै।।"
और मृत्यु उसी दिन मिट जाती है, जिस दिन तुमने गुरु के दर्पण में अपने
को देख लिया। उसी दिन गुरु की जरूरत भी मिट जाती है। वह तो बहाना था अपने को देख लेने का। अब अपने को देख चुके, अब दर्पण की कोई जरूरत न रही।
जिसने अपने को देख लिया, उसका आचरण रूपांतरित हो जाता है। उससे असत्य ऐसे ही गिर जाता है, जैसे सुबह सूरज के उगने पर ओस कण विलीन हो जाते है।
उससे हिंसा ऐसे ही खो जाती है, जैसे दीये के जलने पर अंधेरा खो जाता है।

दो मार्ग हैं। एक है आचरण का मार्ग; उसको मैं नीति कहता हूं। साधो सत्य को, अहिंसा को, दया को, करुणा को। और एक है धर्म का मार्ग। साधो केवल समाधि को और शेष सब अपने से चला आता है।
जीसस का बड़ा प्रसिद्ध वचन है, कि पहले तुम परमात्मा को खोज लो, शेष सब अपने से चला आता है।
नीति और धर्म में बड़ा भेद है। नीति तो ऐसे है, जैसे अंधा आदमी लकड़ी टटोल-टटोल कर रास्ता खोजता है। धर्म ऐसे है, जैसे आंख वाला आदमी लकड़ी को फेंक कर मस्ती से चलता है। चाहे तुम नाच कर भी निकले दरवाजे से, तो कोई हर्ज नहीं।
"काल की चोट फिर नाहिं लागै।
और जिसने अपने को देखा, उसने यह भी देख लिया कि मृत्यु नहीं है। जिसने अपने को नहीं देखा, उसी को लगता है, मृत्यु है। तुम्हारा जो भीतर स्वरूप है, है वह अमृत है।
"काल की चोट फिर नाहिं लागै।
काल के जाल में सकल जीव बांधिया।।
बिन ज्ञान गुरुदेव घट अंधियारा।
कहै कबीर बिन जन जनम आवै नहीं।।
पारस परस पद होय न्यारा।।"
जैसे ही दिखाई पड़ती है, कि मैं कौन हूं; तब परमात्मा में, आत्मा में कोई फर्क नहीं रहा। मृत्यु खो गई। अमृत उपलब्ध हुआ। तब गाने लगता है तुम्हारा प्राण--"पायो री, राम रतन धन पायो।"
कबीर कहते हैंः "चहुं दिशि दमके दामिनी।" अब चारों तरफ प्रकाश चमकता है।
दयाबाई, सहजोबाई या दादू, सभी के पदों में एक पद तुम्हें बार-बार मिलेगा; वह है, "सब तरफ रोशनी चमकती है, आकाश में बादल घिरे हैं, अमृत बरसता है--अमीरस बरसे। सहजोबाई ने कहा है, "बिन घन परत फुहार।" कहीं मेघ भी नहीं दिखाई पड़ते और अमृत की फुहार पड़ रही है।
तुम हो जब तक अहंकार, तब तक मृत्यु है। तुम जिस दिन हो जाओगे स्वरूप, उसी दिन मृत्यु खो जाती है। मृत्यु तुम्हारी नहीं है, तुम्हारे भ्रांतियों की है, तुम्हारे भ्रमों की है।
"कहै कबीर बिन जन जनम आवै नहीं।"
और फिर लौटता नहीं कोई। फिर वापस इस संसार में नहीं आता कोई। फिर अमृत
के लोक का वासी हो जाता है।
"पारस परस पद होय न्यारा।"
जिसने छू लिया उस अमृत-ज्ञान के पारस को, उसका पद ही न्यारा हो जाता है। फिर वह संसार की भीड़ में नहीं उतरता। फिर इस संसार में उसे सीखने को कुछ भी न बचा। सीख लिया! जो जानने योग्य था, जान लिया। जो पाने योग्य था, पा लिया।
इस संसार में तो उन्हीं को वापस आना पड़ता है, जिनका अनुभव आधा रह गया, कच्चा रह गया। यह संसार तो विद्यापीठ है। यहां विद्यार्थी जो अनुत्तीर्ण हो जाते हैं, वे ही वापस लौट आते हैं। जो उत्तीर्ण हो जाते हैं, वे मुक्त हो जाते हैं। उन उत्तीर्ण पुरुषों को ही हमने बुद्ध, सिद्ध, जिन कहा है। लेकिन तुम अपने ही सहारे अपने अंधेरे के बाहर न आ सकोगे। खोजो कोई हाथ, जो तुम्हें खींच ले अंधकार से बाहर। खोजो कोई व्यक्ति, जो तुम्हारी निंदा न करे। खोजो कोई, जो तुम्हें अपराध से न भरे। खोजो कोई, जो तुम्हारे परमात्मा का बोध तुम्हें दे। जो तुम्हारे भीतर की परम सत्ता--जो सदा अकलुषित है, सदा कुंआरी है, जो सदा ताजी और पवित्र है, जिसके अपवित्र होने को कोई उपाय नहीं, उसकी तुम्हें स्मृति जगाए। जो तुम्हें तुम्हारे ही स्मरण से भर दे।
खोजो गुरु। और गुरु के पास कुछ बहुत करने को नहीं है। गुरु के पास सिर्फ तुम मौजूद हो जाओ--खुले, उन्मुक्त! द्वार-दरवाजे बंद मत रखो। उसकी रोशनी तुम्हारे भीतर के बुझे दीये को जला सकती है।
"गुरुदेव बिन जीव कल्पना ना मिटै।

गुरुदेव बिन जीव का भला नाहिं।।
गुरुदेव बिन जीव का तिमिर नासै नहिं।
समझि विचार लै मन माहि।।
राह बारीक गुरुदेव तें पाइए।
जनम अनेक की अटक खोलै।।
कहै कबीर गुरुदेव पूरन मिलै।
जीव और सीव तब एक तोलै।।
करो सत्संग गुरुदेव से चरन गहि।
जासु के दरस तें भर्म भागै।।
सील औ सांच संतोष आवै दया।
काल की चोट फिर नाहिं लागै।।
काल के जाल में सकल जीव बांधिया।
बिन ज्ञान गुरुदेव घट अंधियारा।।
कहै कबीर बिन जन जनम आवै नहीं।
पारस परस पद होय न्यारा।।"

आज इतना ही।

दूसरा प्रवचन

# गुरु मृत्यु है

पहला प्रश्नः आप जब किन्हीं सूत्रों पर बोलते हैं, तो उससे भी ज्यादा अच्छा लगता है, जब आप हमारे प्रश्नों के उत्तर देते हैं। ऐसा क्यों?

स्वाभाविक है। अर्जुन का प्रश्न हो, कृष्ण का उत्तर हो, तुम्हारा उससे क्या लेना-देना? बड़ा फासला है। जिज्ञासा हो सकती है, आत्मीयता नहीं हो सकती। वह प्रश्नोत्तर शास्त्रीय हो गया, जीवंत न रहा। जब तुम पूछते हो, तो तुम्हारे प्रश्न में तुम्हारा हृदय धड़कता है। तुम उसमें मौजूद होते हो। वह तुम्हारी जरूरत है। तुम्हारी भूख, तुम्हारी प्यास उसमें छिपी है।

स्वभावतः तुम्हारे प्रश्न का उत्तर तुम्हें एक तृप्ति देता है। वैसी ही तृप्ति अर्जुन को भी हुई होगी कृष्ण के उत्तर से। तुम्हारा प्रश्न होता और कृष्ण उत्तर देते तो अर्जुन की भी तृप्ति न होती।

अपना प्रश्न खोज लेना बहुत जरूरी है।

मुझे कोई भेद नहीं पड़ता। क्योंकि मैं देखता हूं कि अर्जुन का जो प्रश्न है, वह कभी न कभी तुम्हारा भी बन जाएगा। इसीलिए सूत्रों पर भी बोलता हूं, अन्यथा बोलूं ही नहीं। आज तुम्हें भी पता न हो, कि कल तुम्हारा प्रश्न क्या बन जाने वाला है। लेकिन शास्त्रों का निर्माण ही इसलिए किया गया है। वे बड़ी गहन खोज-बीन से निर्मित हुए हैं। वह खोज-बीन यह है, कि जो व्यक्ति भी मार्ग पर चला है सत्य को खोजने, आज नहीं कल अर्जुन के प्रश्न उसके मन में उठेंगे ही।

उन्हीं सारभूत प्रश्नों के उत्तर गीता में दिए हैं। या उन्हीं सारभूत प्रश्नों के उत्तर बाइबिल में हैं, कुरान में हैं, जो हर खोजी को उठेंगे ही।

लेकिन फिर भी जब तुम्हारा प्रश्न तुम्हारे वास्त्रों में और तुम्हारे शब्दों में आता है, तो संवाद की संभावना बढ़ती है। अन्यथा सब उधार मालूम पड़ता है, वह तुम्हारे सिर पर से निकल जाता लगता है, जैसे तुमसे कुछ लेना-देना न था।

मैंने सुना है, एक आदमी बहुत परेशान था। उसका बेटा विवाह करने को राजी नहीं होता था। बहुत समझाया-बुझाया, उम्र भी बीतने के करीब होने लगी। बहुत आग्रह किया तो बामुश्किल वह राजी हुआ। लेकिन उसने एक ऐसी लड़की चुन ली पड़ोस में, कि बाप राजी न था उस लड़की से। और बेटा जिद पकड़ गया कि अब शादी करूंगा तो इसी से; नहीं तो नहीं करूंगा। आप ही पीछे पड़े थे, शादी करो, शादी करो; अब लड़की मैंने चुन ली, तो आपको एतराज है! एतराज क्या है? कारण बताओ।

लड़की सुंदर थी, शिक्षित थी, सुसंस्कृत थी। और लड़के ने कहाः अगर कारण नहीं बता सकते तो यह शादी की बात सदा के लिए भूल ही जाओ; या कारण बता दो।

मजबूरी में बाप को कारण बताना पड़ा। बाप ने कहा तू मानता नहीं तो तुझसे कहता हूं कि वह लड़की तेरी बहन है। वह मुझसे ही पैदा हुई है, इसलिए उससे विवाह ठीक न होगा।

बहुत धक्का लगा बेटे को। बाप पर सारी श्रद्धा भी खो गई। बड़ा आघात था, एक घाव बन गया हृदय में। किसी और से तो न कह सका, लेकिन अपनी मां से तो कहा। और मां बहुत प्रसन्न थी, कि उसने लड़की चुन ली है और जल्दी ही विवाह होगा। मां से उसने कहा, कि ऐसी-ऐसी बात है। अब असंभव है। मां ने कहा, तू बिल्कुल घबड़ा ही मत। तू जा और शादी कर। चिंता की कोई जरूरत नहीं, क्योंकि तू तेरे बाप से पैदा ही नहीं हुआ है।

न लड़की अपने बाप से पैदा हुई है, न लड़का अपने बाप से पैदा हुआ है।

न प्रश्न तुम्हारा है, न उत्तर तुम्हारे हृदय के पास पहुंच पाएगा। सब उधार रह जाएगा। इस प्रश्न और उत्तर का विवाह न हो सकेगा, संवाद न हो सकेगा। मेल न हो सकेगा।

इसलिए सवाल यह नहीं है कि प्रश्न मूल्यवान है या नहीं, गहरे में सवाल यही है कि वह तुम्हारा है या नहीं। किसी और ने गहरे से गहरा सवाल पूछा हो,

वह तुम्हारे लिए छिछला है। क्योंकि गहराई तो तुम्हारे प्राणों से आती है, किसी के पूछने से नहीं आती। और तुमने छोटा सा सवाल पूछा हो, दुनिया नासमझी का कहे; लेकिन तुम्हारे प्राणों से आया है, तुमने न मालूम कितने दिनों तक उसको अपने हृदय में सम्हाला है, सोचा है, गुना है, सपनों में वह प्रश्न तुम्हारे गूंजा है, तो तुमने उसे पाला-पोसा है। वह तुम्हारे गर्भ में निर्मित हुआ है। वह तुम्हारी संतान है। उससे तुम्हारा एक संबंध है, गहरा संबंध है। उस प्रश्न के द्वारा तुम ही प्रकट हुए हो।
इसलिए जब मैं उसे उत्तर देता हूं, तब तुम्हारे कंठ में एक संतोष मालूम पड़ता है और प्राणों में एक तृप्ति। कुछ हल होता है, कोई गांठ खुलती है; इसलिए।

दूसरा प्रश्नः जब गुरु शिष्य की मौत ही है, तो झटके से क्यों नहीं मार डालते? हलाल क्यों करते हैं?

कारण है। एक छोटी कहानी से कहूं। एक आदमी दांत के डाक्टर के पास गया। उसका दांत निकाला गया। लेकिन उसने इतना शोरगुल मचाया और इतनी हुल्लड़ की कि बाकी मरीज जो आए थे, वे सब भाग गए। जब डाक्टर ने उसको अपना बिल दिया, तो वह बिल साधारण से आठ गुना ज्यादा था। उस आदमी ने कहा, क्या मजाक कर रहे हो? कभी सुना है, एक दांत निकालने का इतना पैसा? यह तो आठ-दस गुना ज्यादा मालूम पड़ता है।
उस डाक्टर ने कहा कि नहीं, वे जो आठ मरीज भाग गए, उनका पैसा कौन देगा? तुम्हें एक झटके से तो मार डालूं, मगर और मरीज भाग जाएंगे। ऐसे धीरे- धीरे हलाल करना पड़ता है। और जैसे-जैसे तुम तैयार होते हो, वैसे-वैसे ही मारे जा सकते हो। क्योंकि मृत्यु कोई साधारण घटना नहीं है।
गुरु के पास जो मृत्यु घटित होती है, वह तो परम घटना है। वह तो परम जीवन का द्वार है। उसकी तुम्हारी तैयारी भी तो होनी चाहिए। वह कोई आत्महत्या थोड़े ही है, कि जिसने चाहा, उसने कर ली। आत्महत्या के लिए कोई गुणधर्म तो नहीं चाहिए। कोई भी कूद पड़े पहाड़ से मर जाएगा। पानी में गिर पड़े, डूब जाएगा। कुएं में गिर जाए, मर जाएगा। जहर खा ले।
आत्महत्या तो नहीं है, गुरु के पास जो घटना घटती है, वह तो परम-मृत्यु है। उसको ही तो हमने समाधि कहा है।
यह हमारा शब्द "समाधि" बड़ा बहुमूल्य है। जब संन्यासी मरता है तो उसकी कब्र को भी हम समाधि कहते हैं। और जब कोई व्यक्ति ध्यान को उपलब्ध होता है तब भी उसको हम समाधि कहते हैं। वह भी एक कब्र बन गई।
पुराना तो गया, नहीं बचा; नये का जन्म हुआ। रात टूट गई, सुबह हुई। अब सुबह का रात से क्या लेना-देना? सुबह का सूरज और सुबह पक्षियों के गीत और आकाश में फैला किरणों का जाल, इससे क्या संबंध है उस अंधेरी रात का, जो अभी- अभी थी? रात तो मर गई। रात में और दिन में कोई सिलसिला थोड़े ही है! राम और दिन किसी एक ही चीज का फैलाव थोड़े ही मालुम होते हैं। दोनों के बीच एक अंतराल है। रात रात है, दिन दिन है।
जब ध्यान गहरा होगा तो तुम अचानक पाओगे कि तुम्हारा जो कल तक था, तुम्हारा अतीत, वह ऐसे ही चला गया, जैसे सुबह रात खो जाती है। और एक नये व्यक्तित्व का जन्म हुआ, एक नई आत्मा बिल्कुल कुंआरी और ताजी पैदा हुई; जिससे तुम अपरिचित थे, जिसे तुमने कभी जाना ही न था। यह द्वार भी है तुम्हारे भीतर। यह तुमने कभी खोला ही न था।
और इस द्वार के भीतर परमात्मा विराजमान है सिंहासन पर। इसकी तुम्हें कभी भनक भी न पड़ी थी। तुम तो अपने घर के बाहर-बाहर जी लिए थे। तुम तो भीतर कभी आए ही न थे। यह जो भीतर आया है, वह बिल्कुल नया है। मृत्यु का यही अर्थ है।
गुरु मृत्यु है; इसका अर्थ है, कि गुरु के पास तुम्हारा अतीत, तुम्हारा जराजीर्ण, तुम्हारा पुराना मरेगा; अभिनव का, अलौकिक का, अज्ञात का जन्म होगा।

यह आत्महत्या होती तो एक क्षण में भी हो जाती। तैयार होना पड़ेगा। यह मृत्यु तुम्हारी तैयारी से आएगी। यह तो तुम्हें अहंकार को छोड़ने की क्षमता आएगी, तभी हो सकती है। यह गुरु के हाथ में नहीं है, कि वह तुम्हें हलाल कर दे या झटके से मार डाले। धीरे-धीरे मारे, या जल्दी मार डाले; यह तुम्हारे हाथ में है। अगर तुम राजी हो, तो एक क्षण में भी गुरु मार डाल सकता है। गुरु को क्या अड़चन है? तुम्हारी देर से ही देर होती है। लेकिन तुम राजी नहीं हो, इसलिए गुरु तुम्हें लुभाता है, समझाता है, बुझाता है, राजी करता है। हजार बातें समझाता है, जिनके बिना समझाए चल जाता। लेकिन तब तुम भाग खड़े होते। तब तुम डर जाते। तब तुम भयभीत हो जाते।
क्योंकि तुम तो मृत्यु का अर्थ एक ही जानते हो--मर जाना, मिट जाना। वह दूसरा अर्थ, कि मृत्यु के बाद एक पुनरुज्जीवन है, वह तो तुम्हें पता नहीं है। वह गुरु को पता होगा, लेकिन उसका पता होना तुम्हारे काम नहीं आ सकता। तुम तो उसके हाथ में छुरी देखकर घबड़ा जाओगे।
तो वह छुरी छिपा कर रखता है। फूलों में ढांकता है। शब्दों और सिद्धांतों में रखता है। शास्त्रों में दबा देता है। वह तुम्हें देखने नहीं देता। वह तुम्हें उसी दिन देखने देगा, जिस दिन तुम्हें इस बोध की थोड़ी सी भनक पड़नी शुरू हो जाएगी, कि मरे बिना महाजीवन नहीं मिलता। मिटे बिना परमात्मा होने का कोई उपाय नहीं। खोना ही पाना है।
जिस दिन तुम राजी हो जाओगे, जैसे सागर में नदी खोने को राजी हो जाती है, गिर जाती है, तो खोती थोड़े ही है! पूरा सागर उसका अपना हो जाता है। लेकिन उसके लिए तो नदी को भी बड़ी लंबी यात्रा करनी पड़ती है। गंगोत्री
से लेकर समुद्र तक आते-आते गंगा को कितनी यात्रा करनी पड़ती है! अगर गंगोत्री पर ही सागर कहता, कि सुन, गिर जा मुझ में; तो गंगा राजी नहीं हो सकती।
गंगा भी कहती, अभी तो हुई भी नहीं। यह तो गर्भपात हो जाएगा। इस सागर से
तो गंगा घबड़ाती। लेकिन सागर बड़ा दूर है, उसका पता ही नहीं। गंगा उसी को खोजती हुई अनंत यात्रा करती है। उसी गंगा के किनारे तीर्थ बनते चले जाते हैं।
हमने क्यों नदियों के किनारे तीर्थ बनाए हैं? कारण है। क्योंकि नदियां सागर की तरफ जा रही हैं, खोने की तरफ जा रही हैं, मिटने की तरफ जा रही हैं। तीर्थ तो वही है, जहां तुम्हें खोने का बोध मिले, जहां शून्य होने की सामर्थ्य मिले। इसलिए गंगा पर हमने तीर्थ बनाए हैं।
वह गंगा जा रही है सागर की तरफ। शायद उसे भी पक्का पता न हो। तुम मेरे पास आ गए हो, शायद तुम्हें भी ठीक-ठीक पता न हो, तुम क्यों आ गए हो। अनंत-अनंत कारण ले आते हैं, संयोग ले आते हैं, जन्मों-जन्मों की यात्रा ले आती है। तुम्हें पता भी नहीं हो सकता।
कल रात एक युवक ने संन्यास लिया। वह मुझे जानता भी नहीं था। एक सप्ताह पहले वह अफ्रीका से भारत आया। भारत घूमने आया था। मेरा तो उसे सपने में भी कोई ख्याल न था। लेकिन भारत आकर उसको पता चला कि उसकी कोई पुरानी मित्र, एक युवती यहां मेरी संन्यासिनी है, तो सोचा एक दिन के लिए उससे मिल जाए। उससे आठ वर्ष से मिला भी नहीं। तो उसे मिलने आ गया। उस युवती में अंतर देखे, जैसा वह जानता था, वैसी वह नहीं रही है। और जैसा उसने सोचा भी नहीं था, कभी उसके जीवन में घटेगा, उसकी उसे झलक मिली। वह रुका रहा तीन दिन के लिए। ध्यान करने लगा। फिर सात दिन के लिए रुक गया। फिर कल संन्यस्त हो गया; अब तो जैसे रुक ही गया।
वह कल मुझे कहने लगा कि आया था मैं भारत की यात्रा पर और क्या हो गया?
यह तो मैंने सोचा ही न था। मैंने उससे कहा कि यही है भारत की यात्रा। तुझे भारत मिल गया।
उसे अपने जन्मों का पिछले जन्मों का कोई हिसाब भी तो पता नहीं है। कौन
सी आकांक्षा उसे भारत ले आई है। कौन से अनजाने सूत्र उसे भारत ले आए। क्यों आ गया है? कैसे संयोग बनते चले गए हैं। और अब तो जीवन वही न होगा। अब वह कल कहने लगा, मेरी पत्नी का क्या होगा? मेरे बच्चों का क्या होगा? यह तो उसने कभी सोचा ही न होगा, कि मैं संन्यस्त हो जाऊंगा। इसका

मुझे भी कभी सपना न था। और मैं कभी ध्यान करूंगा इसका भी मुझे ख्याल न था।
और अब जो हो गया है, इससे पीछे लौटने का उपाय नहीं है।
जीवन, तुम जैसा सोचते हो, कि तुम्हारे जाने-जाने चल रहा है, ऐसा नहीं है। तुम्हारे जाने-जाने तो बहुत थोड़ा सा हिस्सा चल रहा है, जहां टिमटिमाती रोशनी है। अधिक हिस्सा तो अचेतन के अंधकार में दबा है।
तुम आ गए हो। अब तुम्हें ख्याल भी नहीं है कि तुम मरने को आ गए हो, मिटने को आ गए हो। तुम शायद कुछ लेने को आए हो। शिष्य और गुरु का गणित अलग-अलग है। शिष्य कुछ लेने आता है। और गुरु उसे समझाता है देंगे, बैठो; और फिर छीन लेता है।
शिष्य आता है सुखी होने, और गुरु जानता है, जो भी सुखी होने आया है, वह दुख से न बच सकेगा। इसलिए गुरु कहता है, देंगे सुख। समझाता सुख है, देता शांति है। शांति सुख से बड़ी अलग बात है। शांति का अर्थ है, जहां न दुख रह जाता है, न सुख। लेकिन वही महासुख है।
निश्चित ही, तुम्हें मैं चाहूं तो अभी मार डालूं; लेकिन उससे तुम्हारा पुनर्जन्म न होगा। सिर्फ मैं अदालत के चक्कर में फंस जाऊंगा।
तुम नाहक मुझे उलझा दोगे, तुम तो सुलझ न पाओगे।
नहीं, धीरे-धीरे, क्रमशः आहिस्ता-आहिस्ता तुम्हें राजी करना पड़ेगा।
जिस दिन तुम राजी हो जाओगे, उसी दिन घटना घट जाएगी। क्योंकि यह मृत्यु कोई शरीर की मृत्यु थोड़े ही है, यह मृत्यु तो तुम्हारे अहंकार की मृत्यु है।
और इस जगत में सबसे बड़ी कुशलता चाहिए अहंकार को मार डालने के लिए, क्योंकि अहंकार बहुत कुशल है। वह सब तरह से बच जाता है। तुम उसे एक जगह से मारोगे, वह दूसरी जगह खड़ा हो जाएगा। तुम उसका एक सिर काटोगे, नया सिर पैदा हो जाएगा।
रावण की हमने कथा लिखी है, कि उसके दस सिर हैं। एक काटो, प्रतिक्षण दूसरा पैदा होता चला जाता है। उसे मारना मुश्किल है। रावण की कथा अहंकार की कथा है। अहंकार को मारना बहुत मुश्किल है। तुम इधर काटते हो, वह उधर से खड़ा हो जाता है। इधर मारते हो, वहां बन जाता है। लेकिन वह अपने को बचाए जाता है। बड़ी सूक्ष्म उसकी गतिविधि है। उसे मारने के लिए बड़ा होश चाहिए। इतना होश, कि तुम्हारे भीतर के घर में कहीं भी कोई अंधेरा कोना न रह जाए, जहां वह खड़ा हो जाए और बच जाए।
जिस दिन तुम्हारे भीतर का दीया पूरा जलता है, रोशन होते हो तुम, कहीं कोई अंधेरा नहीं होता, उसी दिन अहंकार मर पाता है। जिस दिन गुरु देखता है कि अब घटना घट गई, उस दिन वह कह देता है, छोड़ दो, अब इस कचरे को मत ढोओ। और तब एक बूंद भी खून नहीं गिरता और तुम मर जाते हो। अगर एक बूंद खून भी गिर जाए तो गुरु, गुरु न था; सिक्खड़ ही रहा होगा। गुरु की गुरुता यही है कि एक बूंद खून न गिरे और तुम मर जाओ। जरा सी चोट न लगे और सब विसर्जित हो जाए। गंगा सागर में गिर जाए, कहीं शोरगुल न हो।
तुमने कभी पक्षियों को पर तौल कर आकाश में उड़ते देखा? कहीं कुछ पता भी नहीं चलता। जरा सा पंख खुल जाते हैं और पक्षी आकाश में उड़ जाता है।
तुमने कभी चीलों को तिरते देखा आकाश में--कि पंख भी नहीं हिलते?
ठीक ऐसी ही जीवन-दशा है, जहां जरा सा भी शोरगुल नहीं होता, एक बूंद खून नहीं गिरता, जरा सी चोट नहीं लगती और सब सुलझ जाता है--सब! सारी गांठें खुल जाती हैं। तुम निर्ग्रंथ हो जाते हो।
गुरु के पास जो मृत्यु घटित होती है, वह महाजीवन है। उसके लिए तैयार होना जरूरी है। तुम्हारा इतने कहने से कि तुम मरने को तैयार हो, काफी नहीं है। तुम्हें जीने के लिए तैयार होना जरूरी है।
और मैं तुमसे जो आखिरी बात इस संबंध में कहना चाहूंगा, वह यह है कि दुनिया में बहुत लोग हैं, जो मरने को तैयार हैं। दुनिया में बहुत कम लोग हैं, जो जीने को तैयार हैं। अगर तुम्हें चाहिए हों मरने के लिए लोग, तो बहुत मिल जाते हैं। शहीद होने के लिए बहुत पागल तैयार हैं।
हिंदू धर्म खतरे में है, बहुत से नासमझ मरने को तैयार हो जाएंगे। इस्लाम खतरे में है, बहुत से नासमझ कूद कर मर जाएंगे। भारत पर हमला हो जाए, पाकिस्तान से झगड़ा हो जाए, चीन से हो जाए, मरने को लोग तैयार हैं।

मरना तो बिल्कुल आसान मालूम पड़ता है। क्यों?
क्योंकि तुम्हारा जीवन इतने दुख से भरा है। इस दुख में तुम जी ही नहीं
पा रहे हो। इसलिए तुम कोई भी बहाना खोज कर मरने के लिए तैयार हो जाते हो। जरा सी बात हो जाती है--दिवाला निकल गया; क्या हुआ है दिवाला निकल जाने में? जो रकम के आंकड़े तुम्हारे नाम लिखे थे बैंक में, अब नहीं लिखे। जो कागज के टुकड़े तुम्हारी तिजोड़ी में थे, अब नहीं हैं। दिवाला निकल गया, जान खोने को तैयार हो! कूद पड़े बड़े मकान से! आग लगा ली!
पत्नी मर गई, मरने को तैयार हो। जिसके जीने से कभी कोई रस न पाया था, उसके लिए मरने को तैयार हो! बच्चा मर गया! जिस बच्चे के चेहरे को देखने की तुम्हें कभी फुरसत न मिली थी, उसके लिए मरने को तैयार हो!
ऐसा लगता है, तुम बहाना ही खोज रहे हो, कि कोई बहाना मिल जाए कि हम मर जाएं। जीना तो बोझ है।
नहीं, असली शहीद मैं उन्हें कहता हूं, जो जीने की हिम्मत रखते हैं। मरते तो कायर हैं। चाहे वे शहीदगी का बाना ओढ़ लें, शहीदों के कपड़े ओढ़ लें; इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। राष्ट्र, धर्म--हजार तरह के पागलपन हैं, जिनके लिए आदमी मर सकता है।
जीना असली सवाल है। जीना कठिन है। और जो आदमी जी सकता है, वही परमात्मा तक पहुंचता है।
इसलिए गुरु को जो हम मृत्यु कहते हैं, वह सिर्फ इस अर्थ में कहते हैं
कि तुम जैसे हो, वैसे मरोगे। तुम मरोगे नहीं, वस्तुतः तो तुम और भी पुनरुज्जीवित हो जाओगे। तुम क्षुद्र की तरह मरोगे और विराट की तरह हो जाओगे।
तो गुरु मृत्यु भी है और जन्म भी। अंधकार की मृत्यु और प्रकाश का जन्म। लेकिन अंधकार तभी मिट सकता है, जब प्रकाश के जलने की घड़ी करीब आ जाए। और तो अंधकार मिटाने का कोई उपाय नहीं है।
तो तुम जल्दी मत करो। तुम्हारा मन बड़ा बेचैन है और जल्दी चाहता है; सब चीजें जल्दी हो जाएं। लेकिन कुछ चीजें हैं, जो समय मांगती हैं। और जितनी बड़ी चीजें हैं, उतना ही ज्यादा समय मांगती हैं।
अगर तुम्हें मौसमी फूल लगाने हैं, तो आज बो दो; तीन-चार सप्ताह में फूल आने शुरू हो जाएंगे। लेकिन अगर तुम्हें ऐसे वृक्ष लगाने हैं, जो हजारों साल तक रहें, और जिनके नीचे लाखों लोगों को विश्राम और छाया मिले, तो तीन सप्ताह में आने वाले नहीं हैं; तो वक्त लगेगा। तो हो सकता है, तुम्हें पूरा जीवन लगा देना पड़े, तब ऐसे वृक्ष तुम पैदा कर पाओ।
अमरीका के जंगलों में ऐसे वृक्ष हैं, जिनकी उम्र पांच हजार साल है। पांच हजार साल जो वृक्ष जीता है, उसको एक आदमी अपने जीवन में, एक जीवन में नहीं लगा पाता। उसको लगाने के लिए अनेक लोगों के अनेक जीवन लग जाते हैं। तुम जिस वृक्ष की खोज में हो--आत्मा का, परमात्मा का, मोक्ष का, वह कोई तुम जल्दी में न लगा पाओगे। इधर तुमने चाहा, उधर लग गया, ऐसा न होगा। वह कोई कल्पना का वृक्ष नहीं है। वह कोई कल्पवृक्ष नहीं है, कि तुमने चाहा और हो गया।
तुम्हें बड़ी साधना से गुजरना पड़ेगा, निखरना पड़ेगा, शुद्ध होना पड़ेगा। जिस दिन तुम परम रूप में आ जाओगे, उसी क्षण वह घड़ी घटेगी। उसी क्षण मिलन होगा। उसी क्षण परमात्मा का बीज तुम्हारे भीतर पड़ता है। तुम मर जाते हो और परमात्मा हो जाता है।

तीसरा प्रश्नः आपने कहा कि शिक्षक देता है ज्ञान और गुरु देता है ध्यान। ध्यान देने का क्या अर्थ है?

ज्ञान और ध्यान बड़े संयुक्त हैं। ज्ञान का अर्थ हैः जानकारी और जानकारी से भरा हुआ चित्त। और ध्यान का अर्थ हैः जानकारी से शून्य चित्त। जैसे एक कमरे में फर्नीचर भरा है--यह ज्ञान की अवस्था। फिर फर्नीचर कमरे के बाहर निकाल दिया, कमरा बिल्कुल खाली--यह ध्यान की अवस्था। ध्यान

उसी का अभाव है, ज्ञान जिसका भाव है। ज्ञान में जो कूड़ा-करकट तुम इकट्ठा कर लेते हो--शब्द, सिद्धांत, शास्त्र; ध्यान में वे सब छोड़ देने होते हैं। शिक्षक देता है ज्ञान और गुरु देता है ध्यान; इसका अर्थ हुआ कि शिक्षक
जो देता है, गुरु वह छीन लेता है। तो तुमने जो भी सीखा है जीवन के विद्यालय में, जो भी अनुभव, जो भी ज्ञान तुमने अर्जित किया है विश्वविद्यालयों में, अध्यापकों और शिक्षकों से, शास्त्रों-सिद्धांतों से, तुमने जो-जो संगृहीत किया है, गुरु सब छीन लेगा। वह सब में माचिस लगा देगा। वह सबको जला देगा। वह तुम्हारे मन के पूरे फर्नीचर से तुम्हें खाली कर देना चाहता है।
उस खालीपन में ही तुम्हें पहली बार अपने विस्तार का पता चलता है। उस खालीपन में ही तुम्हें पहली दफा शांति की किरण उतरती मालूम होती है। उस खालीपन में ही तुम्हें पता चलता है, कि अहंकार नहीं है, परमात्मा है। तुम नहीं हो, वह है। "ओम तत्सत्" का बोध उसी क्षण में होता है।
तो ध्यान और ज्ञान की प्रक्रियाएं बिल्कुल अलग हैं। ध्यान भूलने का नाम है, खाली होने का नाम है।
जैसे स्लेट पर बच्चे ने कुछ लिखा है और फिर पोंछ डाला है, ऐसे संसार ने जो-जो तुम्हारे मन पर लिख दिया है, उसे पोंछ डालने का नाम ध्यान है।
ध्यान को केवल वे ही लोग उपलब्ध हो सकते हैं, जो ज्ञान से बहुत परेशान
हो गए हों। अगर तुम अभी ज्ञान से परेशान नहीं हुए, तो तुम ध्यान को उपलब्ध न हो सकोगे। और जहां ध्यान की वर्षा हो रही होगी, वहां से भी तुम कुछ सीख कर लौट आओगे।
ऐसा हुआ, कि उन्नीस सौ पचास में एक किताब मेरे हाथ आई। एक जैन साध्वी
ने योगशास्त्र पर एक किताब लिखी थी। जैनों में एक अदभुत योगी हुआ, हेमचंद्राचार्य। तो हेमचंद्र के सूत्र पर उसने वह किताब आधारित की थी। हेमचंद्र के सूत्र बड़े अनूठे हैं। जैसे पतंजलि के सूत्र अनूठे हैं, ऐसे हेमचंद्र के हैं। पतंजलि की कोटि का आदमी है हेमचंद्र।
तो हेमचंद्र के सूत्रों से संबंध जोड़ कर उस महिला ने किताब लिखी। किताब उसने बड़ी बढ़िया लिखी थी। लेकिन मैं बड़ी उलझन में पड़ा, क्योंकि सब ठीक था, लेकिन कुछ-कुछ गलत था; जो कि नहीं हो सकता। अगर उसने अनुभव से लिखा हो, ध्यान का उसे अनुभव हो, तो जो भूलें उसने की थीं, वे नहीं हो सकतीं। परेशानी मेरी यह थी कि जो भी उसने लिखा था, वह बहुत साफ-सुथरा, और ऐसा लगता था जैसे किसी ने अनुभव से लिखा हो। लेकिन कुछ भूलें भी थीं, जो बताती थीं कि अनुभव वाला आदमी वे भूलें नहीं कर सकता।
खैर! बात आई-गई हो गई। मैं उस किताब को भूल गया। कोई पंद्रह साल बाद, उन्नीस सौ पैंसठ में मैं राजस्थान के दौरे पर था, एक गांव में वह साध्वी मुझसे मिलने आई। नाम मुझे कुछ पहचाना हुआ मालूम पड़ा, तो मैंने उससे पूछा कि क्या हेमचंद्र के ऊपर योगशास्त्र तुम्हीं ने लिखा?
उसने कहाः मैंने ही लिखा।
तो मैंने उससे पूछाः तुम मेरे पास किसलिए आई हो?
उसने कहाः ध्यान सीखने आई हूं।
तुमने तो ध्यान और योग पर इतनी अच्छी किताब लिखी।
उसने कहाः वह बस, शास्त्र को पढ़ कर लिखी है। जानकारी मुझे कुछ भी नहीं है। अपनी जानकारी नहीं है। खुद नहीं जाना है। और अब मैं उस किताब को लिखकर बड़ी मुश्किल में पड़ गई हूं। लोग मेरे पास पूछने आते हैं। और मैं उनको बताती हूं, कि कैसे ध्यान करो। अब यह तो आपसे मैं निजी, एकांत में कह रही हूं मुझे ध्यान का अ ब स भी नहीं आता। आप मुझे सिखाएं।
यह चल रहा है। बहुत जोर से चल रहा है। सदा से चलता रहा है एक अर्थों में।
अगर ज्ञान की जानकारी से अभी तृप्ति न हो गई हो, तो जहां ध्यान की वर्षा हो रही है, वहां भी तुम ध्यान के संबंध में कुछ सीख कर लौट जाओगे, ध्यान न सीख पाओगे। क्योंकि ध्यान के संबंध में जानना, ध्यान जानना नहीं है। ध्यान जानना तो एक बड़ी क्रांति है। ध्यान जानने का तो अर्थ है, तुम्हारा आमूल रूपांतरण। वह तो एक अनुभव है। महा अनुभव है। उस अनुभव में

तो जानकारी बिल्कुल मिल जाती है। तुम ही बचते हो खालिस। सोना ही बचता है, कूड़ा-करकट जल जाता है।
गुरु देता है ध्यान, इसका अर्थ है कि गुरु छीन लेता है ज्ञान। और जहां तुम्हें ऐसा गुरु मिले, जो तुमसे ज्ञान छीनता हो, वहां हिम्मत करके रुक जाना। क्योंकि वहां से भागने का मन होगा। क्योंकि यहां हम तो कुछ लेने आए थे, उलटा और गंवाने लगे।
आदमी लेने के लिए घूम रहा है। कहीं से भी कुछ मिल जाए तो थोड़ा और अपनी संपत्ति बढ़ा ले। अपनी तिजोड़ी में थोड़ी जानकारी और रख ले, थोड़ा और पंडित हो जाए।
एक जर्मन खोजी रमण के पास आया और उसने कहा, कि मैं आपके चरणों में आया हूं कुछ सीखने। आप मुझे सिखाएं। रमण ने कहा, तुम गलत जगह आ गए। अगर सीखना है, तो कहीं और जाओ। अगर भूलना है, तो हम राजी हैं।
रमन के वचन हैं, इफ यू हैव कम टु लर्न देन यू हैव कम टु दि रांग परसन।
इफ यू आर रेडी टु अनलर्न देन आई एम रेडी टु हेल्प यू।
अनलर्न! अगर अन-सीखने को राजी हो अगर सीखने को आए हो--कहीं और। खोजो कोई शिक्षक। अगर अन-सीखना करने आए हो, सीख चुके बहुत, थक गए, अब इस कचरे से छुटकारा पाना है--तो गुरु राजी है।
ध्यान, जो तुमने जाना है अब तक, उसके भूल जाने का नाम है। अब यह बड़े मजे
की बात है। जिस दिन तुमने जो-जो जाना है, उसे तुम बिल्कुल विस्मरण कर दोगे, उस दिन तुम्हें आत्म-स्मरण आएगा। क्योंकि वह जो तुमने जाना है, उसी के कारण तुम्हें अपना पता नहीं चल पा रहा है। तुम्हारे और तुम्हारे जानने के बीच में तुम्हारी जानकारी की दीवाल खड़ी हो गई है।
अगर तुम्हें स्वयं को जानना है, तो और सब जानने के वस्त्र उतार कर रख दो। स्वयं का जानना तभी घटता है, जब और कोई जानने का भीतर उपद्रव नहीं रह जाता। सब जानना शून्य हो जाता है, तब आती है आत्म-स्मृति; कबीर उसको "सुरति" कहते हैं। तब होता है आत्म-स्मरण। तब आदमी स्व-विवेक से भर जाता है, आत्म-ज्ञान से।
आत्म-ज्ञान कोई जानकारी नहीं है। क्योंकि वह तो तुम हो ही। तुम्हारी जानकारियों के पर्दे जरा हट जाएं, थोड़ा तुम घूंघट के पट खोलो, तो दुलहन तो भीतर छिपी है--वह तुम्हीं हो। लेकिन घूंघट के पट बहुत ज्यादा घने हो गए हैं। तुम घूंघट का पट डाले हुए दर्पण के सामने खड़े हो, कुछ दिखाई नहीं पड़ता। जरा घूंघट का पट खोलो, तुम्हें अपनी छवि दिखाई पड़नी शुरू हो जाएगी। यह सारा अस्तित्व दर्पण है। जिस दिन तुम्हारी आंख पर घूंघट नहीं होता, उस दिन तुम्हें अपनी छवि सब जगह दिखाई पड़ने लगती है। चांद-तारे तुम्हीं को गुंजाते हैं। पक्षी तुम्हारा ही गीत गाते हैं। झरने तुम्हारा ही कल-कल नाद करते हैं। फूल तुम्हीं को खिलाते हैं। तुम ही इस अस्तित्व में फूले-फूले समाए हुए होते हो।
लेकिन एक शर्त अनिवार्य है; कि सब जानकारी हटा कर रख दी जाए। सत्य तक जाना हो, तो निर्वस्त्र जाना होगा। सत्य तक जाना हो, तो जानने के सारे वस्त्र छोड़ देने होंगे। सत्य तक कोई नग्न होकर, शून्य होकर ही पहुंचता है। शून्यता यानी ध्यान।

चौथा प्रश्नः आपने कहा कि गुरु सिखाता नहीं, मिटाता है। लेकिन आप तो प्रति दिन बोल-बोल कर हमें सिखाते ही चले जाते हैं। आपके सतत बोलने में मिटाने की कौन सी प्रक्रिया छिपी है?

मेरे बोलने से दोनों बातें हो सकती हैं। अगर तुम कुछ सीखने आए हो, तुम सीख कर लौट जाओगे। अगर तुम कुछ भूलने आए हो, तुम भूल कर रुक जाओगे। मेरे बोलने से, तुम्हारे ऊपर निर्भर है, कि क्या तुम करोगे।
जो पंडित ढंग के लोग हैं, वे भी यहां मौजूद हैं। वे मेरी बातों को कंठस्थ कर लेंगे। वे तोते हो जाएंगे। वे तोते होकर लौट जाएंगे। वे जाकर जो उन्होंने सीख लिया है, वह दूसरों को सिखाने लगेंगे। वे चूक गए। वे मेरे पास आए ही नहीं। जो वे लेकर गए, वह तो कहीं और भी ले सकते थे। वह पानी इस

कुएं का पानी ही न था। वे प्यासे ही लौट गए। या कुएं की तस्वीर लेकर लौट गए। या कुएं पर जो पीने वालों की भीड़ थी, उनकी बातचीत सुन कर ही लौट गए। या कुएं से जो तृप्त हो गए थे, उनकी तृप्ति की बात सुन कर, इकट्ठा करके लौट गए। लेकिन उन्होंने खुद कुएं का पानी नहीं पीया। पानी के संबंध में जान कर लौट गए--पंडित हो जाएंगे।
लेकिन जो भूलने आए हैं, मेरा रोज का सुनना उनके ज्ञान को काटता चला जाएगा। मैं बोलता हूं तुम्हें सिखाने को नहीं, तुम्हें भुलाने को ही। और अगर तुम मुझे गौर से सुनोगे, तो जल्दी ही तुम पाओगे, सब मैंने काट डाला। इसलिए तो तुम्हें इतने विरोधाभास मुझमें दिखाई पड़ते हैं। क्योंकि आज मैं कुछ कहूंगा, कल मैंने कुछ कहा था, परसों कुछ और कहूंगा। अगर तुम मुझे सुनते ही रहे तो मैं इतना विरोधाभासी हूं, इतना कंट्राडिक्ट्री हूं कि तुम मुझे कुछ भी न पकड़ पाओगे। तुम्हारे हाथ से सब छूट जाएगा। अगर तुम्हें मुझे पकड़ना है, तो तुम्हारे हाथ से सब छूट जाएगा।
अगर मुझे तुम्हें कुछ सिखाना होता तो मैं विरोधाभासी नहीं हो सकता था। फिर तो मुझे संगत होना चाहिए, ताकि रोज-रोज मैं तुम्हें सिखाता जाऊं और रोज-रोज मकान बनता जाए ज्ञान का तुम्हारे भीतर। मेरा काम ऐसा है, कि आज मैं एक ईंट रखता हूं, कल खींच लेता हूं। मकान मैं कभी बनने न दूंगा।
तुम अगर मुझे सुनते ही रहोगे तो, और तुमसे कोई किसी दिन पूछेगा कि मैंने क्या सिखाया, तो तुम मौन खड़े रह जाओगे। तुम कहोगे, कहना मुश्किल है। क्योंकि मैंने जो भी सिखाया, जल्दी ही उसे मिटा भी दिया। मैंने लकीर खींची और मिटाई। इसके पहले कि तुम पकड़ लेते, मैं मिटा देता हूं।
अंततः तो तुम खाली मेरे पास खाली रह जाओगे। तुम पर निर्भर है। और ऐसा कुछ मेरे पास हो रहा है ऐसा नहीं; ऐसा सदा होता रहा है। महावीर, बुद्ध जो बोले उसमें से कुछ तो ध्यान को उपलब्ध हो गए सुनने वाले, कुछ पांडित्य को उपलब्ध हो गए। जो पांडित्य को उपलब्ध हो गए, उन्होंने ही जैन धर्म बनाया। क्योंकि जो ध्यान को उपलब्ध हो गए, वे कहां फिकर करते हैं! जिसने रस पी लिया, मगन हो गया, वह कहां फिकर करता है संप्रदाय खड़े करने की, धर्म खड़े करने की? बात खत्म हो गई। कबीर ने कहा है, मन जब मगन भया तब क्यों बोले? फिकर ही छोड़ दी उन्होंने।
लेकिन जो पंडित थे, उन्होंने शब्द-शब्द संगृहीत कर लिया। अब यह बड़े मजे की बात है, कि महावीर के जो ग्यारह गणधर हैं, वे ग्यारह ही ब्राह्मण पंडित हैं। खुद महावीर क्षत्रिय हैं। खुद महावीर की सारी चिंतना और देशना वेदों के विपरीत है। लेकिन महावीर के जो ग्यारह, जिन्होंने महावीर के धर्म को स्थापित किया है, जैन धर्म का निर्माण किया है वे ग्यारह ही ब्राह्मण पंडित हैं। यह बड़े आश्चर्य की बात है।
बुद्ध क्षत्रिय हैं, लेकिन जिन्होंने बुद्धधर्म बनाया, वे सब ब्राह्मण पंडित हैं। तुम जरा गौर करो, कृष्ण क्षत्रिय हैं, राम क्षत्रिय हैं लेकिन राम और कृष्ण का धर्म जिन्होंने खड़ा किया, वे सब ब्राह्मण पंडित हैं!
पंडित शब्दों को संगृहीत करता है। उन पर भवन निर्मित करता है। ज्ञानी
से तो धर्म का जन्म होता है, पंडित संप्रदाय बनाता है।
तुममें से भी कुछ मेरी बातों को सुन कर संग्रह इकट्ठा करेंगे। हालांकि मैं सब तरह की अड़चन पैदा कर रहा हूं। वह तुम कर न पाओगे। और तुम करोगे, तो लोग तुम्हें मुश्किल में डालेंगे। क्योंकि मैं इतनी विरोधी बातें कह रहा हूं कि कोई पंडित समर्थ नहीं हो सकता समझाने में, कि इन विरोधी बातों में क्या संबंध है?
महावीर की बातों में विरोध नहीं है। महावीर की वाणी एक संगति से भरी है। पंडित उसे समझा सकता है। बुद्ध की वाणी में विरोध नहीं है; उसमें एक संगति है। जान कर मेरी वाणी में मैंने संगति नहीं रखी है, क्योंकि उसी से संप्रदाय पैदा होता है।
तो मेरे पास से, जो पंडित है, भला पंडित होकर लौट जाए, खुद को ही नुकसान पहुंचा सकता है; किसी और को नहीं।

तुम पर निर्भर है। मैं रोज इसलिए बोल रहा हूं, कि मैं तुम्हारे मन को खाली कर दूं। मेरा बोलना तुम्हें कुछ देने को नहीं है, मेरा बोलना ऐसे ही है, जैसे रोज सुबह हम घर में बुहारी लगाते हैं सफाई के लिए। तुम चौबीस घंटे में इकट्ठा कर लेते हो, रोज सुबह मैं फिर बुहारी लगाता हूं, कि थोड़ी सफाई हो जाए।

पांचवां प्रश्नः आपने कहा कि सदगुरु जानते हैं कि कब शिष्य को क्या कहा जाए। और शिष्य की जरूरत और स्थिति के अनुसार उसे मार्ग-निर्देशन दिया करते हैं। शिष्य को बताने और मांगने और पूछने की जरूरत नहीं है।
मुझे अनेक बार आपके मार्ग-निर्देशन का अभाव प्रतीत होता है और आपके पास दर्शन में आने का मन भी होता है, लेकिन उपरोक्त कथन में भी आस्था होने के कारण मैं धैर्य और प्रतीक्षा का सूत्र अपना लिया करता हूं।

यह आस्था पक्की न होगी। नहीं तो यह प्रश्न कैसे उठता?
अगर यह आस्था पक्की है, कि गुरु जब जरूरत होगी, बुला लेगा, जब जरूरत होगी कहेगा, जो जरूरत होगी वह निर्देश दे देगा, तो फिर अभाव कैसे पता चलता है? और फिर साथ में आस्था का क्या अर्थ रह जाता है?
यह आस्था बड़ी नपुंसक है। यह झूठी है। कुछ कारण और होगा न आने का। अहंकार कारण होगा--कि कैसे जाएं पूछने? मैं और जाऊं पूछने, कि मार्ग-निर्देशन चाहिए?
कठिनाई होती है। पूछने में पता चलता है कि तुम्हें पता नहीं है; तो आदमी पूछने से बचना चाहता है। उस कारण रुक रहे होओगे।
लेकिन अगर आस्था पक्की है--और आस्था कच्ची होती ही नहीं। आस्था का मतलब ही पक्का होना होता है। कच्ची आस्था का मतलब? कोई मतलब ही नहीं होता कच्ची आस्था का। आस्था यानी आस्था। फिर यह सवाल कैसे उठेगा? फिर प्रतीक्षा करने में और धैर्य रखने में कठिनाई क्या आएगी? फिर एक जन्म भी गुरु न बुलाए तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता। कभी न बुलाए तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता। हो सकता है, न बुलाना ही उसका निर्देश हो। हो सकता है धैर्य रखो, अनंत धैर्य रखो, यही उस की व्यवस्था हो तुम्हारे लिए।
लेकिन हमारा मन बड़ा दुविधा में रहता है सदा। न तो आस्था पूरी रहती है,
न संदेह पूरा रहता है। न घर के, न घाट के। मन की अवस्था बिल्कुल धोबी के गधे की है--न घर का न, घाट का।
संदेह भी होता है...
वह भी पूरा नहीं है, नहीं तो पूछने आ जाओ। फिर रुको मत।
आस्था है...
वह भी अधूरी, लंगड़ी है।
रुकते हो, तो पूरे ही रुक जाओ। पूछते हो, तो पूरा ही पूछ लो। या तो धैर्य रख लो--पूरा धैर्य। या फिर अधैर्य कर लो--पूरा अधैर्य।
ध्यान रखना, पूरे से मुक्ति होती है। पूरा संदेह भी बेहतर है, अधूरी श्रद्धा से। पूरी नास्तिकता बेहतर है आधी आस्तिकता से। पूरा तनाव, पूरी अशांति बेहतर है आधी शांति और विश्राम से। क्योंकि पूरे से क्रांति घटित होती है। जहां पूरा हो जाता है, वहां से पार जाना ही पड़ेगा। वहां से पार जाना ही पड़ेगा। वहां से ऊपर उठना ही पड़ेगा। पूरे का अर्थ ही यह होता है, कि अब इसमें और कोई गति के लिए सुविधा न रही। अब कुछ करना ही पड़ेगा। आखिरी पड़ाव आ गया है।
आधे-आधे लोग मरते हैं। व्यर्थ ही मरते हैं और व्यर्थ ही जीते हैं। एक में से कुछ तय कर लो। अपने मन की ठीक जांच करो।
अगर ऐसा लगता हो, कि धैर्य करना मुश्किल है तो पूछने चले जाओ। अगर ऐसा लगता हो, कि धैर्य संभव है, आस्था पूर्ण है, तो फिर यह प्रश्न भी मत पूछो। इसलिए मैंने सूचना दी है, कि हर व्यक्ति अपने प्रश्न में अपना नाम भी लिखे। कुछ लोग प्रश्न में नाम नहीं लिखते। उसमें भी अहंकार को बचाने की कोशिश करते हैं, कि मुझे यह पता न चल जाए कि प्रश्न किसका है। ऐसे तुम अपने अहंकार को बचा-बचा कर कहां पहुंच पाओगे?

प्रश्न है, तो है। उसे पूछना है, और हल करना है और उसके पार जाना है। यह
तो ऐसे ही होगा कि जैसे कोई चिकित्सक से अपनी बीमारी छिपाए। चिकित्सक को तो बीमारी बता ही देनी पड़ेगी। नहीं तो निदान ही न हो पाएगा। और तब बिना निदान के दी गई औषधि और नुकसान करेगी। इससे बिना औषधि के रह जाते वह अच्छा था। गलत औषधि मिल जाएगी तो भयंकर हानि होगी क्योंकि सभी औषधियां जहर हैं। वह ठीक बीमारी हो तो जहर काम का हो जाता है। ठीक बीमारी पर न लगे तो जहर नुकसान का हो जाता है।
तो गुरु के पास होने का अर्थ, अग्नि के पास है। वहां थोड़ा सोच समझ कर, साफ-सुथरा होकर रहना। रहना हो तो ही रहना, नहीं तो भाग जाना।
प्रश्न पूछना हो तो ईमानदारी से प्रश्न कर लेना। श्रद्धा करनी हो, तो ईमानदारी से श्रद्धा कर लेना--और साफ होना एकदम जरूरी है। बंटा-बंटा होना तुम्हें कहीं न ले जाएगा। तुम ऐसे ही त्रिशंकु के भांति लटके रह जाओगे।

छठवां प्रश्नः आशा से आकाश टंगा है। क्या आशा छोड़ देने से आकाश गिर न जाएगा?

आकाश न गिरेगा, आशा ही गिरेगी। कोई आकाश आशा से टंगा भी नहीं है। लेकिन आदमी इसी तरह सोचता है, जैसे तुमने उस छिपकली के संबंध में सुना हो; कि छिपकलियों में कहीं कोई विवाह था। और एक महल की छिपकली को भी निमंत्रण मिला। निश्चित ही सबसे पहले मिला, क्योंकि वह महल में रहती थी। उसने कहा, मैं आ न सकूंगी। क्योंकि अगर मैं आ गई तो छप्पर गिर जाएगा महल का। मैं ही तो सम्हाले रहती हूं।
छिपकली सोचती है, कि महल के छप्पर को सम्हाले हुए है। अगर चली गई, महल गिर जाएगा!
तुमने उस बूढ़ी की कहानी सुनी है, जो सोचती थी कि उसका मुर्गा बांग देता है, इसलिए सुबह सूरज उगता है। लेकिन गांव के लोग हंसते थे। उसका तर्क भी ठीक था क्योंकि ऐसा कभी न हुआ था। जब भी मुर्गा बांग देता तभी सूरज उगता था। गांव के लोग हंसते थे, कि बूढ़ी तू पागल हो गई है।
एक दिन वह नाराज होकर अपने मुर्गे को लेकर दूसरे गांव चली गई। और उसने कहा कि अब रोओगे, अब भटकोगे। अब खोजोगे मुझे और तड़पोगे, पछताओगे कि क्या गंवा दिया! अब कभी सूरज न उगेगा। मुर्गा मैं लिए जा रही हूं। और दूसरे गांव में जब मुर्गे ने बांग दी, तब वहां सूरज निकला। उसने कहाः अब रो रहे होंगे नासमझ! सूरज यहां निकला है। जहां मुर्गा है, वहां सूरज है।
आशा से कुछ भी नहीं टंगा है। आशा ही तुम्हें भटका रही है। फांसी लगी
है आशा से ही। इसे थोड़ा समझो।
आशा के कारण ही तुम जीवन में कुछ भी नहीं सीख पाते। एक आदमी दस हजार रुपये कमा लेता है। सोचता था पहले, कि दस हजार हो जाएंगे, सब ठीक हो जाएगा। दस हजार हो गए, कुछ ठीक नहीं हुआ। आशा कहती है कि दस लाख हो जाएं तो सब ठीक हो जाएगा। वह बिल्कुल भूल ही जाता है कि यही आशा पहले कहती थी कि दस हजार हो जाएं तो सब ठीक हो जाएगा।
इसकी पहले मान कर चले, कुछ ठीक न हुआ। अब भी यह आशा कहती है, दस लाख हो जाएं तो सब ठीक हो जाएगा। फिर दस लाख भी हो जाते हैं, फिर भी कुछ ठीक नहीं होता। बल्कि जो ठीक था, वह भी गड़बड़ हो जाता है। आशा अब भी कहती है, कि दस लाख में क्या होगा? यह भी कोई संपत्ति है? दस करोड़! ऐसे आशा से आकाश टंगा है।
आकाश क्या है ये।
भ्रांति, भ्रम, मृग-मरीचिका--सपने टंगे हैं।
आदमी दौड़ता चला जाता है। आशा अनुभव को पराजित कर देती है और तुम्हें कुछ सीखने नहीं देती।
एक स्त्री से तुम्हारा प्रेम होता है या एक पुरुष से प्रेम होता है-- बड़ी आशा से, उमंग से भरे बैंड-बाजे बजा कर शुरुआत करते हो। बड़े फूल बिछा कर, बड़े सुगंध छिड़क कर यात्रा शुरू होती है। जल्दी ही सब दुर्गंध हो जाता है।
जल्दी ही सब कलह हो जाती है, विषाद हो जाता है, दुख हो जाता है।

आशा फिर भी छोड़ती नहीं पीछा। वह कहती है, यह स्त्री गलत है, यह पुरुष गलत है। दूसरी स्त्री--अगर पड़ोस की स्त्री मिल जाती तो सब ठीक हो जाता। मैंने चुनाव में भूल की।
तो पश्चिम में उन्होंने चुनाव की सुविधा बना ली है। ऐसे लोग हैं, जिन्होंने दस-दस बार जीवन में तलाक दिए। और अभी भी आशा कर रहे हैं, कि ग्यारहवीं पत्नी से सब ठीक हो जाएगा, या ग्यारहवें पति से सब ठीक हो जाएगा! अनुभव पर जीत हो जाती है आशा की। आशा के कारण ही अनुभव से तुम कुछ निचोड़ नहीं पाते सार। तुम्हारा जीवन नहीं बदल पाता। फिर तुम वही भूल करते हो, फिर वही भूल करते हो! और आशा कहे चली जाती है, कि इस बार हो गई, कोई बात नहीं! अगली बार सब ठीक हो जाने वाला है। आशा भटकाती है, सम्हालती नहीं है। अगर तुम्हारे जीवन में से आशा हट जाए, मैं यह नहीं कह रहा हूं, कि तुम निराश हो जाओ--इसे थोड़ा समझ लेना। क्योंकि निराशा भी आशा का ही निषेधात्मक रूप है। वह भी आशा ही है हारी हुई। वह भी आशा का ही पराजित रूप है, लेकिन है आशा ही।
जब तुम एक आदमी को देखते हो, बिल्कुल निराश होकर बैठा है--तो क्या हुआ है? यह कोई ज्ञान को उपलब्ध नहीं हो गया। आशा अभी भी है, लेकिन परास्त हो गया, अब दौड़ने की हिम्मत छूट गई। आशा तो अभी भी है, कि ताकत होती शरीर में, अगर धन पास होता, अगर सुविधा होती, अगर मौका मिल जाता, अवसर बन जाता; भाग्य, भगवान अगर साथ दे देता तो करके कुछ दिखा देते। अभी भी आशा तो जगी ही है भीतर।
लेकिन बाहर थक गया और हार गया, टूट गया; इसलिए निराश है। निराश के भीतर आशा का दीया तो जलता ही रहता है। सिर्फ चारों तरफ से अंधेरा घिर जाता है। आशा से मुक्त का अर्थ होता है, आशा-निराशा दोनों से मुक्त। ऐसा व्यक्ति, जो भविष्य में जीता ही नहीं। ऐसा व्यक्ति, जो अनुभव को खुली आंख से देखता है, आशा के माध्यम से नहीं। और जो जीवन की सचाई को उसके रूखे- सूखेपन में पहचानता है, आशा की आर्द्रता के माध्यम से नहीं। जो वासना, तृष्णा, कामना के सपने लगा कर जीवन के सत्यों को नहीं देखता, उघाड़ कर नग्न सत्यों को देखता है। न तो वह आशावान है, न निराशावान है। आशा-निराशा दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। उसने वह सिक्का ही फेंक दिया। अब वह यथार्थ में जीता है। और जो यथार्थ में जीता है, वही रोज-रोज यथार्थ होता चला जाता है। जीवन रोज-रोज सत्य के करीब आने लगता है।
सत्य में जीने की क्षमता बड़ा साहस है। आशा तो कोई भी कर लेता है। कमजोर से कमजोर आदमी भी पहलवान होने की आशा करता है। गरीब से गरीब सम्राट होने की आशा करता है। भोगी से भोगी त्यागी होने की आशा करता है। आशा में तो कोई अड़चन ही नहीं है। आशा तो कोई भी कर सकता है। आशा तो मुफ्त मिलती है। इसलिए मैं कहता हूं, आशा के अतिरिक्त इस संसार में मुफ्त कुछ भी नहीं मिलता। सत्य तो मिलता ही नहीं; बस आशा मिलती है--कोरी आशा!
मैंने सुनी है, एक बहुत पुरानी कहानी है। एक आदमी ने परमात्मा की बड़ी प्रार्थना पूजा की। परमात्मा प्रसन्न हुआ। और जिस शंख को बजा कर वह आदमी पूजा करता था, परमात्मा ने कहा, अब यह शंख तेरे लिए वरदान है। तू इसे सम्हाल कर रख। और तुझे जो भी इससे मांगना हो, मांग लेना, वह तुझे मिल जाएगा।
वह आदमी घर आ गया। पहले तो बड़ा उत्तेजित रहा। घर आते ही द्वार-दरवाजे बंद करके उसने शंख से कहा कि एक महल मिल जाए; महल मिल गया। हीरे बरस जाएं घर में, हीरे बरस गए। एक सुंदर स्त्री आ जाए, सुंदर स्त्री आ गई। फिर धीरे- धीरे, जब सभी होने लगा, तो बड़ा निराश हो गया। कुछ बचा ही नहीं करने को। आशा करने को नहीं बचा। वह जो आशा से आकाश टंगा था, बिल्कुल गिर गया, ऐसा लगा। अब जो कहे, वह हो जाता है। बड़ी मुश्किल में पड़ गया। आदमी आशा में जीने वाला था। सत्य में तो जी नहीं सकता था।
अब यह जो शंख था, यह हर चीज को सत्य बना देता था। सपने को भी सत्य बना देता था। वह बड़ी मुश्किल में पड़ गया। बड़ी ऊब आने लगी। सबसे सुंदर स्त्री भी ऊब देने लगी। हीरे-जवाहरात पड़े रहते। कौन सम्हाल कर रखें? क्या करे? महल बड़ा था, सब कुछ था। जो चाहता, सब उसी वक्त हो जाता।

एक दिन एक संन्यासी घर में मेहमान हुआ। रात उस संन्यासी ने कहा कि मेरे पास एक शंख है। यह शंख बड़ा अदभुत है। इससे तुम मांगो दस हजार, यह फौरन कहता है, दस हजार क्या करोगे? बीस हजार ले लो। यह बड़ा अदभुत शंख है।
वह आदमी बड़ा उत्सुक हुआ इस शंख में। क्योंकि उसकी तो आशा मर गई थी। वह
जो शंख उसके फास था, यथार्थ का, वह हर चीज को सत्य बना देता था। उसकी आशा मर गई थी। उसने कहाः शंख एक मेरे पास भी है, जिससे मैं बड़ा ऊब गया हूं। ऐसा करो, हम बदल लें।
शंख बदल लिए गए। वह संन्यासी आया ही शंख बदलने था। संन्यासी आते ही इसलिए हैं गृहस्थ के घर, शंख बदलने। नहीं तो किसलिए आएगा? संन्यासी को हिमालय पर रहना है। उसको घर आने की गृहस्थ के क्या जरूरत? शंख बदलने आता है। कुछ है गृहस्थ के पास, जो उसके पास नहीं है।
संन्यासी तो लेकर शंख चलता बना। इसने अपना नया शंख रखा, फिर से बड़े उत्साह से कहाः दस करोड़ रुपये दे दे। उसने कहाः दस करोड़ में क्या होगा? बीस करोड़ ले ले। वह बड़ा प्रसन्न हुआ, कि यह शंख तो! उसने कहाः अच्छा बीस करोड़ दे दे। उसने कहाः बीस करोड़ में क्या होगा? चालीस करोड़ ले ले।
वह महाशंख था। वह सिर्फ बोलता ही था। तुम जितना कहो, वह उसका दोगुना करके बोलता था। थोड़ी देर में तो उसने छाती पीट ली, कि यह तो मारे गए। यह शंख देता तो कुछ भी नहीं है।
वह कहता कि पचास मंजिल का मकान; वह कहता, क्या करोगे? सौ मंजिल का मकान
ले लो। तुम कहो सौ, वह कहता है दो सौ!
वह शंख आशा का शंख था, कामना का, तृष्णा का। तृष्णा दुष्पूर है। वह कभी भरती नहीं। तुम जो मांगो, उससे दोगुना सपना दिखाती है। वह कहता, एक स्वर्ग? दो स्वर्ग ले लो। एक परमात्मा चाहिए? हम दो दिए देते हैं। मगर देना-लेना कुछ भी नहीं, सिर्फ कोरी बातचीत थी। छाती पीटता, लेकिन अब देर हो चुकी थी।
तुमने भी--सभी ने, केयथार्थ को छोड़ कर आशा कांशंख पकड़ लिया है। जीवन
का यथार्थ तो देने को तैयार है वह सब, जिससे तुम्हारी तृप्ति हो सकती है, लेकिन तुम्हारी आशा मानने को राजी नहीं हैः और ज्यादा--और ज्यादा। आशा का अर्थ हैः और-और-और। जितना हो, उससे ज्यादा। जो हो, उससे ज्यादा। कुछ भी मिल जाए, आशा तृप्त नहीं होती। आशा अतृप्ति का सूत्र है। इसलिए जब मैं कहता हूं, आशा छोड़ दोगे, तभी तुम जीवन के सत्य के साथ एक हो पाओगे; तो मैं बहुत सी बातें कह रहा हूं। मैं कह रहा हूं, भविष्य की चिंता छोड़ो; वर्तमान पर्याप्त है। जो तुम्हारे पास नहीं है, उसकी फिकर मत करो। जो तुम्हारे पास है, वह जरूरत से ज्यादा है, जरा उसे भोगो। सपने मत फैलाओ। सत्य काफी है; काफी से ज्यादा है।
सपने फैला-फैला कर ही तुम सत्य से वंचित हुए हो। तुम मांगो मत, जो मिला है, तुम उसके लिए अनुगृहीत हो जाओ।
और तुम्हारी आशा मिटते ही निराशा भी मिट जाएगी। क्योंकि वह उसी की संगी-साथिन है, वह जोड़ा है। आशा पति हो, तो निराशा पत्नी है। वे साथ-साथ हैं। उनको अलग कभी किया नहीं जा सकता। उनमें कभी तलाक हुआ ही नहीं है।
तो जब तुम किसी आदमी को निराश देखो, तो यह मत समझ लेना कि यह कोई त्याग
को उपलब्ध हो गया है। इसने अति आशा की और वह पूरी नहीं हुई, इसलिए वह परेशान बैठा है, दुखी बैठा है। यह फिर आशा से भर जाएगा। जल्दी ही यह फिर भूल जाएगा अपनी निराशा को। फिर नई आशा की उमंग ले लेगा।
जो व्यक्ति वैराग्य को उपलब्ध होता है, उसकी आशा-निराशा दोनों जा चुकीं। उसने एक निर्णय उपलब्ध किया है। एक सार जीवन का निचोड़ लिया है, कि आज और अभी है सब; कल, कल व्यर्थ है। कल कभी आता नहीं।
इस क्षण तुम पूरे जी लो, इस क्षण से बाहर जाने की कोई भी जरूरत नहीं है। इस क्षण में सभी कुछ मौजूद है। पूरा अस्तित्व इस क्षण में ही मौजूद है। इस क्षण में ही सारा विराट मौजूद है, सारा ब्रह्म मौजूद है। इस क्षण में ही सारे अस्तित्व की सरिताएं गिर रही हैं। यह क्षण ही सागर है। तुम इसको पूरा जी लो। इस जीने से ही तुम्हारा दूसरा क्षण भी निकलेगा। इस जीने के ऊपर ही उभरेगा। इस जीने से विराट होगा, बड़ा होगा, गहरा होगा।

लेकिन आशा के कारण नहीं; जीकर उसे निकलने दो।
दुनिया के दो ढंग हैं: या तो तुम जीओ, और या तुम केवल सपने देखो। अधिक लोग सपने देखते हैं। और उनसे अगर कहो कि सपने छोड़ दो, तो वे कहते हैं, आशा से आकाश टंगा है। निश्चित, उनका आकाश सपनों से ही टंगा है। अगर वह गिर गया तो वे कहीं के न रह जाएंगे। वे सोच-सोच कर ही जीते हैं।
उनकी हालत ऐसी है, जैसे किसी आदमी को भूख लगी हो, और वह भोजन तो न करता हो; राजमहल में भोज चल रहा है, उसके सपने देखता हो। यह मरेगा। क्योंकि चाहे राजमहल का सपना देखो, चाहे कितने ही सुस्वादु भोजन का सपना देखो, उससे खून नहीं बनेगा, उससे हड्डी नहीं बनेगी। उससे ज्यादा से ज्यादा इतना हो सकता है कि मुंह की लार गतिमान हो जाए; और कुछ भी न होगा। लार के गतिमान होने से कोई पेट नहीं भरता, और भूख बढ़ती है।
सूखी रोटी भी पास हो, तो सपनों के महोत्सव से और सपनों के भोज से बेहतर है। सूखी रोटी को भी ठीक से पचा लेना। उससे खून बनेगा, हड्डी बनेगी। अस्तित्व को वासना के माध्यम से मत जीओ--इसे ही मैं संन्यास कहता हूं।
मैं यह नहीं कहता कि भाग जाओ संसार छोड़ कर। संसार को पूरी तरह जीओ।
ध्यान के माध्यम से जीओ, वासना के माध्यम से मत जीओ। वासना का माध्यम आशा के द्वारा चलता है। और ध्यान का माध्यम, "जो है", बस उसको ही पर्याप्त मानता है।
ध्यान संतोष है, संतुष्टि है।
आशा असंतोष है, अधैर्य है।

सातवां प्रश्नः आप कहते हैं कि कबीर परमज्ञानी थे; लेकिन उनका प्रभाव केवल तथाकथित निम्न वर्ण के लोगों में दिखाई पड़ता है। क्या ब्राह्मणों ने जातिगत पूर्वाग्रह के कारण उन्हें अस्वीकार कर दिया?

बहुत कारण थे।
एक तो, कबीर की जाति-पांति का कुछ पता नहीं। शायद मुसलमान घर में पैदा हुए थे और हिंदू घर में पले। तो न तो मुसलमान पूरी तरह से आश्वस्त थे, न हिंदू। दोनों संदिग्ध थे। और ऐसे यह बड़ा प्रतीकात्मक है। कोई भी संत न तो हिंदू होता, न मुसलमान। हो नहीं सकता। संत और हिंदू और मुसलमान? बात ही बचकानी लगती है। पर कबीर के जीवन का तो वह बिल्कुल यथार्थ था।
अनचाही संतान थे। शायद अविवाहित व्यक्तियों की संतान थे, नाजायज थे। मां-बाप तालाब के किनारे छोड़ कर चले गए थे सुबह के अंधेरे में। एक हिंदू संन्यासी रामानंद सुबह स्नान करने सरोवर पर गए थे, उनके पैर की चोट बच्चे को लग गई, वह बच्चा रोने लगा। उन्होंने उसे उठा लिया। वे उसे घर ले आए।
रामानंद ने ही बड़ा किया। तो पले तो हिंदू घर में, शायद जन्मे थे मुसलमान घर में, ऐसी लोकोक्ति है।
तो हिंदू, मुसलमान समझते थे, मुसलमान हिंदू समझते थे। स्वभावतः स्वीकार करने के लिए कोई भी समाज राजी न था।
दूसरी बातः अत्यंत दीन दरिद्र थे। अगर बुद्ध भी भिखारी के घर पैदा हुए होते तो यही गति हुई होती। अगर महावीर भी भिखारी के घर पैदा हुए होते तो यही गति हुई होती।
जैनों के चौबीस ही तीर्थंकर राजपुत्र हैं। हिंदुओं के सब अवतार राजा हैं। बुद्ध राजपुत्र हैं। भारत ने जितने धर्म पैदा किए, उनके सब अवतारी पुरुष राजवंशों से आए हैं। इसके पीछे कुछ कारण होना चाहिए।
तुम्हारी धन के प्रति पूजा इतनी गहरी है कि तुम त्यागी को भी तभी पूजते हो, जब तुम्हें पक्का पता चल जाए, त्याग कितने का किया? त्याग के नापने का भी एक ही ढंग है तुम्हारे पास, कि छोड़ा कितना? तुम भोगी को भी नापते हो कि इसके पास दस करोड़ रुपये हैं; तुम त्यागी को भी नापते हो, इसने दस करोड़ छोड़े। तुम्हारा तराजू एक है।
अगर त्यागी ने कुछ भी नहीं छोड़ा तो तुम कहोगे छोड़ा क्या? कबीर तो गरीब हैं। छोड़ने को कुछ भी नहीं। इसलिए जो लोग धन को छोड़ने को त्याग समझते हैं, उनको कबीर में कोई त्याग न दिखाई पड़ा होगा। त्याग करने को कुछ है ही नहीं।

तो यह परम संन्यासी हमारी आंखों से ओझल हो गया।
मैं तुमसे कहता हूं कि बहुत और भी लोग बुद्ध की हैसियत के हुए हैं, बहुत और भी लोग महावीर की हैसियत के हुए हैं। लेकिन उनको कोई स्वीकार न कर पाया क्योंकि लोगों ने कहा, था ही क्या? नंगा नहाएगा, निचोड़ेगा क्या? तुम पर कुछ था ही नहीं और त्याग कर दिया! त्याग में मतलब ही क्या है? त्याग है महावीर का--देखो, कितने घोड़े, कितने हाथी, कितने रत्न!
जैनियों की किताबें पढ़ो; तो वे इतना विस्तार करते हैं, हाथी, घोड़े, रथों का कि जो संदिग्ध मालूम पड़ता है। क्योंकि महावीर कोई बहुत बड़े सम्राट के लड़के नहीं थे। छोटी सी जमींदारी थी। ज्यादा से ज्यादा जिसको आज हम एक जिला कहते हैं, बस उतनी हैसियत रही होगी। डिप्टी कलेक्टर की हैसियत थी बाप की, इससे ज्यादा नहीं। बहुत छोटी सी जायदाद थी। लेकिन जैनियों के शास्त्र में इतने हाथी घोड़े हैं, कि अगर इतने थे तो पूरी जमीन पर वे ही खड़े रहे होंगे; और कोई जगह ही न बची होगी।
फिर भक्त बढ़ाते चले जाते हैं। क्योंकि भक्तों को ऐसा लगता है, कि थोड़ा
और अगर दान किया होता तो महावीर और बड़े हो जाते। और थोड़ा दान बढ़ा दो। अब तो कोई अड़चन नहीं है। किताब में लिखना है। संख्याएं बढ़ाते चले जाओ, शून्य पर शून्य रखते चले जाओ।
अब कोई दावा भी नहीं कर सकता, कोई झंझट भी नहीं कर सकता; और अगर कोई झंझट भी करे, कोई लिखे भी कि यह बात ठीक नहीं है तो फौरन तुम अदालत में ले जा सकते हो कि हमारे धर्म की हानि हो गई; कि हमारे धर्म पर शक पैदा कर दिया। तो कोई किसी के धर्म के संबंध में कुछ कह ही नहीं सकता। सच झूठ जो भी चलता है, चलता है।
बहुत महावीर के हैसियत के लोग हुए, लेकिन वे तीर्थंकर की तरह स्वीकार
न हो सके। तुम तीर्थंकर तो उसी को मानोगे, जिसके पास धन रहा हो--चाहे छोड़ दिया हो अब!
बड़ी मीठी कहानी है--मीठी भी, कड़वी भी। मीठी इसलिए कि आदमी के बुद्धि के संबंध में खबर देती है। कड़वी इसलिए कि यह बुद्धि आदमी की रुग्ण मालूम होती है।
कहानी है कि महावीर वस्तुतः तो एक ब्राह्मणी के गर्भ में पैदा होने वाले थे। गर्भ भी ले लिया था एक ब्राह्मणी के पेट में। लेकिन कहीं कोई तीर्थंकर गरीब ब्राह्मणों के घर में पैदा हुआ है? यह बात कभी हुई नहीं। जैन शास्त्र कहते हैं कि तीर्थंकर तो सदा राज-घर, क्षत्रिय के घर में पैदा होता है।
तो क्या करना? देवता बड़े चिंतित और परेशान हो गए कि यह तो अनघट घटा जा रहा है। महावीर ने जन्म ले लिया, वे जाकर गर्भ में प्रविष्ट हो गए हैं। तो छह महीने का जब गर्भ था, तब देवताओं ने साजिश की। करनी जरूरी थी, क्योंकि शास्त्र सही होना ही चाहिए। शास्त्र को सही सिद्ध करने में देवता तक बेईमानी कर रहे हैं!
उन्होंने ब्राह्मणी के पेट से महावीर को निकाल लिया--यह पहली सर्जरी है। और त्रिशला, जिनके कि महावीर बाद में बेटे हुए--महारानी त्रिशला--उसके पेट से भी गर्भ निकाल लिया। उसके गर्भ को ब्राह्मणी के गर्भ में रख दिया और ब्राह्मणी के गर्भ को त्रिशला के गर्भ में रख दिया; तब देवताओं को शांति मिली, कि अब शास्त्र के अनुसार सब हो रहा है!
इतनी भी स्वतंत्रता नहीं है आदमी को, कि कहां पैदा होना है! वह भी शास्त्र के अनुसार! जिंदा रहना शास्त्र के अनुसार, मरना शास्त्र के अनुसार! शास्त्र तो फांसी मालूम होती है।
तो महावीर पैदा हुए क्षत्रिय घर में। ऐसे बेटे वे ब्राह्मण ही थे, लेकिन गरीब ब्राह्मण! और ब्राह्मण तो गरीब होगा ही। ब्राह्मण धनी नहीं हो सकता, क्योंकि धन के लिए जितनी हिंसा चाहिए, जितना व्यवसाय, चालबाजी, बेईमानी चाहिए, वह ब्राह्मण के पास नहीं है। वे क्षत्रिय घर में पैदा हुए। कबीर की तकलीफ यह है कि देवताओं ने कुछ इंतजाम न किया! एक तो घर का ठिकाना नहीं--लावारिस। बिल्कुल शास्त्र से असम्मत। या तो देवता सो गए

कबीर के पैदा होते वक्त, या तब तक देवता बचे नहीं, या कलियुग में सोचा होगा कि अब चलने दो, जो चल रहा है; होने दो, जो हो रहा है।
न केवल गरीब के घर में पैदा हुए हैं, नाजायज भी हैं। नहीं तो क्यों मां-बाप छोड़ जाते सरोवर के तट पर? किसी कुंआरी लड़की के बेटे होंगे।
तो कुछ पता-ठिकाना नहीं। बिल्कुल लावारिस हैं। फिर दीन-हीन रहे। कौन स्वीकार करे? कौन उन्हें पूजे भगवान की तरह? कौन घोषणा करे कि वे बुद्ध हैं?
और बुद्ध से रत्ती भर कबीर कम नहीं हैं। किसी महावीर से उनकी महिमा में जरा भी कमी नहीं है। लेकिन संयोग कबीर के विपरीत है। इसलिए मैं तो तुमसे कहता हूं कि यह भी आश्चर्य है कि कबीर का नाम बच गया। हमारे जैसे अंधे लोगों के समाज में, जहां धन की ही पूजा होती हो, पद की ही पूजा होती हो, जहां सिंहासन ही दिखाई पड़ता हो, और कुछ दिखाई ही न पड़ता हो, जहां कुल और गोत्र की पूजा होती हो, वहां एक नाजायज बेटा, जिसके मां-बाप का कोई ठिकाना नहीं--अनाथ, उसका नाम भी बच गया और थोड़े से लोग उसे प्रेम करने वाले भी बच गए, यह भी चमत्कार है।
बुद्ध के पीछे अगर राज्य की शक्ति न होती--और ध्यान रखना, उनके पीछे राज्य की शक्ति है। बुद्ध संन्यास तो ले लिए, लेकिन राज्य की शक्ति का तो पूरा उपयोग साथ चलता रहा जीवन भर। महावीर के पीछे राज्य की शक्ति है। महावीर संन्यास तो ले लिए लेकिन जिस राज्य में प्रवेश करेंगे, उसी राज्य का राजा सम्मान करेगा। क्योंकि वे सब संबंधित हैं। कोई भाई है, कोई भतीजा है, कोई ममेरा है, कोई चचेरा है। सब राजाओं के संबंध। क्योंकि राजा गैर राज-परिवारों में तो विवाह करते नहीं। तो सब संबंधी हैं। तो जहां भी महावीर जाएंगे, वहां राजा सम्मान करेगा। जब राजा सम्मान करेगा तो वजीर सम्मान करेंगे, जब वजीर सम्मान करेंगे तो और नासमझ, भीड़, कतार चली आएगी। तुम सोच लो कि अगर तुम्हारे गुरु को मिलने राष्ट्रपति आ जाए तो सब नालायक पीछे चले आएंगे। जब राष्ट्रपति जा रहा है, तो ठीक ही है।
कबीर को तो मिलने कोई राजा कभी आया नहीं। कोई वजीर कभी द्वार पर दस्तक
न दिए। तो भीड़ तो कभी आएगी नहीं। भीड़ तो राजा से चलती है।
तो बुद्ध और महावीर को जो प्रतिष्ठा मिली, उसमें बुद्ध और महावीर की गुण-गरिमा नहीं, क्योंकि वैसी गुण-गरिमा तो कबीर में भी है, दादू में भी है, फरीद में भी है।
गुण-गरिमा की तो कोई महिमा ही नहीं है। महिमा तो किसी और बात की है। नाते-रिश्तेदारी की है, सम्राटों की है। जहां बुद्ध जाते हैं, वहीं सम्राट आकर चरणों में झुकता है। और सम्राट समझाता है कि लौट जाएं घर। आपके पिता दुखी हैं। अनेक सम्राटों ने कहाः आपको अपने घर न जाना हो, हमारे घर आ जाएं; यह भी राज्य आपका है। मैं अपनी पुत्री को ब्याह देता हूं। यह सारी संपत्ति तुम सम्हालो।
तो इस सुविधा में बड़े फर्क हैं। फिर बुद्ध का जो इतना प्रचार हुआ सारे संसार में, उसका मूल आधार अशोक है। बुद्ध की गरिमा से वह नहीं पहुंच सकता था। यह जो प्रभाव है, उसके पीछे अशोक है, उसकी राज्यसत्ता है। अशोक ने भेजे संन्यासी, भिक्षु--चीन, जापान, लंका, बर्मा, स्याम, अनाम। सारे एशिया को भर दिया। और जब अशोक जैसा सम्राट भेजा, तो दूसरे सम्राटों ने भी अहोभाग्य से स्वीकार किया। यह धन्यभाग्य थे कि अशोक जैसा सम्राट छोटे-छोटे राज्यों को भिक्षु भेज रहा है। और अपने बेटे, बेटी तक को भेजा भिक्षु बना कर।
अशोक ने फैलाया बुद्धधर्म।
कबीर को कोई सम्राट नहीं मिला। काशी में नरेश थे, लेकिन वे कभी आए नहीं। क्योंकि कौन जाए इस लावारिस के पास?
फिर कबीर के जीवन-ढंग की व्यवस्था बड़ी भिन्न है। उन्होंने सब तरह से शास्त्र तोड़ा है। वे परम संत हैं। बुद्ध ने भी शास्त्र तोड़ा है, लेकिन पूरी तरह नहीं। महावीर ने भी शास्त्र तोड़ा है लेकिन पूरी तरह नहीं। महावीर ने शास्त्र का उतना ही हिस्सा तोड़ा है, जो तोड़ा जा सकता है। लेकिन जो अपरिहार्य है, वह तो बचा लिया है।

जैसे, शास्त्र कहते हैं, गृहस्थ अलग, संन्यासी अलग--इसको तो बचा लिया है। तो महावीर संन्यासी हैं, उनके गृहस्थ हैं। तो उन्होंने चार तीर्थ बनाए: साधु, साध्वी; श्रावक, श्राविका। वह भेद तो बहुत पुराना है, वह उन्होंने कायम रखा है। बुद्ध ने भी कायम रखा है।
कबीर ने सब तोड़ दिया। कबीर साधु हैं कि गृहस्थ? कबीर गृहस्थ संन्यासी हैं, या संन्यासी गृहस्थ हैं? पत्नी है, बच्चे हैं, कबीर काम करते हैं और संन्यस्त हैं! यह बड़ी अपूर्व घटना है।
इसलिए कौन इनको पूजेगा? संन्यासी समझते हैं भ्रष्ट; गृहस्थ समझते हैं पागल। क्योंकि गृहस्थों में भी ठीक नहीं बैठता यह आदमी; संन्यासी है। ऐसे ही संन्यासी मैं बना रहा हूं। वे कहीं भी ठीक न बैठेंगे। गृहस्थ कहेंगे, कुछ गड़बड़ हो गए, दिमाग फिर गया है। ये गेरुए कपड़े पहन लिए? यह क्या भजन-कीर्तन और पूजन में और ध्यान में लगे हो? घर-द्वार सम्हालो। और संन्यासी कहेंगे, ये भ्रष्ट हैं। क्योंकि पत्नी बच्चे संन्यासी को कैसे हो सकते हैं? और तुम दुकान करते हो? ऐसा कभी सुना है कि संन्यासी--और दुकान करता है!
कबीर ऐसे संन्यासी थे, जिनको मैं संन्यासी कह रहा हूं। कबीर दुकान भी करते, कपड़ा भी बुनते। जुलाहे थे, जुलाहे ही रहे। बहुत लोगों ने कहा बाद में, बहुत शिष्य भी हो गए, कि आप यह बंद कर दें, तो कबीर कहते कि नहीं; जो परमात्मा ने चाहा है, वह होने दो। मैं बंद करने वाला कौन? और जब तक हाथ चलते हैं, तब तक करूंगा भी क्या? बुनते रहने दो। और फिर बहुत "राम" हैं, जो बाजार में मेरे कपड़ों की प्रतीक्षा करते हैं।
तो वे कपड़ा बुनते; नाचते, बाजार जाते। क्योंकि उनके लिए तो सभी राम थे। और ग्राहक जब आता, तब उससे कहते, राम थोड़ा सम्हाल कर पहनना। बड़े प्रेम से बुना हैः
झीनी झीनी बीनी रे चदरिया।
राम-रस भीनी रे चदरिया।।
चादर बुनते रहते और राम की धुन चलाते रहते। कबीर ने जो कपड़े बुने, वे अनूठे हैं। उनमें राम का रस डूबा हुआ है। और कबीर ने कहा कि ज्यों कि त्यों धर दीन्हीं चदरिया... खूब जतन से ओढ़ी रे चदरिया। तो कबीर कहते हैं कि ओढ़ी तो, पर खूब जतन से ओढ़ी।
संन्यासी वह है, जो ओढ़े ही न। क्योंकि ओढ़ने में डर है, कहीं चदरिया खराब न हो जाए! और गृहस्थ वह है, जो डट कर ओढ़े; चाहे फटे, चाहे गंदी हो, कुछ भी हो जाए। और कबीर ने ओढ़ी--खूब जतन से ओढ़ी रे चदरिया!
लेकिन "जतन" से ओढ़ी। यह जतन शब्द बड़ा अदभुत है। कृष्णमूर्ति जिसको अवेयरनेस कहते हैं, वही है जतन। बड़े होश से, बड़े प्रयत्न से, बड़ी जागरूकता से ओढ़ी। और "ज्यों की त्यों धर दीन्हीं चदरिया।" और जब परमात्मा के पास वापस लौटने लगे, तो उसे वैसी ही लौटा दी जैसी उसने दी थी--और ओढ़ी भी। ऐसा भी नहीं, कि बिना ओढ़े, नंगे बैठे रहे।
कबीर यह कह रहे हैं कि गृहस्थ भी रहे और संन्यस्त भी रहे। रहे संसार में और अछूते रहे--कमलवत।
बहुत मुश्किल है। इसलिए कबीर को ऊपर की जातियों का तो कोई सम्मान न मिल सका, क्योंकि उनको डर लगा जाने में। अपनी से छोटी जाति के पास कौन जाना चाहे? ब्राह्मण डरता है अगर क्षत्रिय ज्ञानी हो जाए तो उसके पास जाने से। क्षत्रिय डरता है अगर वैश्य ज्ञानी हो जाए, उसके पास जाने से। वैश्य डरता है अगर शूद्र ज्ञानी हो जाए, उसके पास जाने से।
चमार रैदास के पास कोई भी न गया। सेना नाई के पास कोई भी न गया। जुलाहे कबीर के पास कोई भी न गया। वे आखिरी हैं। उनके पास ऊंची श्रेणी के लोग भयभीत होते हैं।
स्वभावतः वे ही लोग गए, जो उसी श्रेणी के थे। इसलिए कबीर को मानने वालों की संख्या निम्न वर्ग के लोगों में मिलेगी। निम्न वर्ग के लोगों के पास न तो धन है, न पद है, न प्रतिष्ठा है। वे किसी को ऊपर आकाश में उठाना भी चाहें तो नहीं उठा सकते। सच तो यह है, उन के कारण ही कोई आकाश में हो तो वह भी जमीन पर उतर आएगा।

उनके पास कुछ भी तो नहीं है। इसलिए कबीर के माननेवाले कबीर को तो ऊपर नहीं उठा सके। कैसे उठाते? कोई उपाय न था। कोई सीढ़ियां न थीं उनके पास। बल्कि उनके मानने के कारण--चमार, भंगी, और शूद्र और हरिजन कबीर को मानने लगे; उस कारण और भी अड़चन हो गई पंडित को, ब्राह्मण को, क्षत्रिय को, वैश्य को आने की।
ऐसा हुआ कि मैं एक गांव में था। और वहां रैदास की जयंती मनाई जा रही थी। रैदास तो चमार थे। गांव के चमार मेरे पास आ गए और उन्होंने कहा कि आप भी चलें और रैदास पर दो शब्द कह दें। मैं राजी हो गया। मैं जिनके घर में मेहमान था, वे बड़ी मुश्किल में पड़ गए, जैन घर था, बड़े सम्पन्न व्यक्ति थे। उनको जरा बेचैनी मालूम होने लगी। सांझ को उन्होंने कहाः ऐसा है कि मुझे जरूरी काम है। अच्छा तो नहीं मालूम पड़ता कि आपको अकेला भेजूं--क्योंकि चमारों की सभा! अब उसमें गांव का प्रतिष्ठित श्रेष्ठ, श्रेष्ठि नगरसेठ, वह कैसे जाए चमारों की सभा में? और मैं तो कल चला जाऊंगा और यह झंझट सदा के लिए पीछे बंध जाएगी, कि चमारों की सभा में गए थे।
तो उन्होंने कहाः मुझे जरा जरूरी काम आ गया है। आना तो आपके साथ था। मैंने कहाः आप बिल्कुल फिकर न करें। जरूरी काम मुझे पता है, नहीं आया है, मगर कोई चिंता की बात नहीं, मैं अकेला ही जाऊंगा। आपको आने की कोई आवश्यकता भी नहीं।
नहीं, उन्होंने कहाः आप बुरा न मानें। आप ठीक कहते हैं, कोई काम नहीं आया है। आप से क्या झूठ बोलना! लेकिन डर लगता है चमारों की सभा--और आप भी न जाते तो अच्छा था।
मैंने कहाः मैं तो जाऊंगा। किसी और की होती तो मना भी कर देता। चमार आए, उनको मना करना भी ठीक नहीं। कोई वहां जाने को राजी भी नहीं है।
सेठ तो गए नहीं, वह तो ठीक ही है; ड्राइवर भी मुझे छोड़ कर दूर गाड़ी खड़ी करके अपनी कार में बैठा रहा। कोई घर से मेरे साथ न गया। वे सब जगह मेरे साथ जाते थे पत्नी, बच्चे, सब क्योंकि और जगह जाने से मेरे साथ प्रतिष्ठा मिलती थी। जहां भी जाते, मंच पर बैठते। चमारों की सभा में मंच पर भी बैठने में डर! ड्राइवर भी मेरे पास नहीं खड़ा रहा। वह भी दूर कार खड़ी करके खड़ा रहा। मैंने उससे पूछा कि तू सुनने नहीं आया? तू हमेशा गाड़ी बंद करके और सभा में आकर बैठता है। बोलाः जरा चमारों में बैठना ठीक नहीं। फिर जो सेठ ने किया--सेठ क्यों नहीं आए आपको पता है? वही कारण मेरा भी है। मैं ब्राह्मण हूं। सेठ तो वैश्य हैं। अगर वैश्य नहीं आ सकता, तो मैं तो ब्राह्मण और ब्राह्मण भी कोई साधारणंनहीं, कान्यकुब्ज ब्राह्मण हूं।
पागलों की दुनिया है। तरह-तरह के पागल हैं--कान्यकुब्ज, देशस्थ, कोंकणस्थ--तरह-तरह के पागल हैं। चमारों की सभा में कौन जाए! चमार बड़े प्रसन्न हुए, बड़े आनंदित हुए। उन्होंने कहाः हम सदा बुलाते हैं, निमंत्रण देते हैं। कोई आता ही नहीं।
कबीर के पास कौन जाए?
जबलपुर में जहां मैं रहता था वर्षों तक, वहां नाई "सेन उत्सव" मनाते हैं सेना नाई का। कोई जाने को राजी नहीं। मैं जब बोलता था तो मुझे कोई दस हजार, पंद्रह हजार लोग सुनने आते थे। यह सोच कर सेना के भक्तों ने सोचा कि अगर मैं बोलूं सेना नाई पर तो दस-पंद्रह हजार आदमी सुनने आएंगे। सेना नाई की बड़ी ख्याति होगी। मैंने उनको कहाः तुम गलती में हो। वे जो मुझे सुनने आते हैं दस-पंद्रह हजार लोग वे जब मैं तुम्हारे सेना नाई पर बोलूंगा तो नहीं आएंगे।
उन्होंने कहाः आप बात छोड़िए। वे आपको प्रेम करते हैं, सेना नाई से क्या लेना-देना? आप जिस पर भी बोलते हैं, वे सुनने आते हैं। गीता पर बोलते हैं, तो सुनने आते हैं, महावीर पर बोलते हैं तो सुनने आते हैं, बुद्ध पर बोलते हैं तो सुनने आते हैं।
मैंने कहाः वह ठीक है। बुद्ध, महावीर, कृष्ण, वह सभी सवर्णों की दुनिया है। मगर तुम नहीं मानते तो मैं आऊंगा।
मैं गया। कोई नहीं आया। पंद्रह हजार तो दूर, पंद्रह चेहरे न दिखे मुझे, जिनको मैं पहचानता था। सिर्फ नाई दिखाई पड़े। और बेचारे बड़ी राह

देखते रहे कि कोई आए। बस, पंद्रह-बीस नाई! वह भी एक नाईबाड़े के सामने उन्होंने मुझे बिठा दिया। उन्होंने बड़ी आशा की थी, बड़ा इंतजाम किया था, पंडाल बिछाया था, लगाया था--कोई नहीं आया!
मैंने उनसे कहाः वे नहीं आएंगे। सेना नाई पर मुझे सुनने नहीं आ सकते
तो सेना नाई के पास तो कैसे होंगे? असंभव!
और भारत तो बहुत ही ज्यादा अहंकारी मुल्क है। तुम कहते इसको धार्मिक हो, यह धार्मिक है नहीं। इससे ज्यादा अहंकारी समाज खोजना संसार में कठिन है। मैं तुमसे कहता हूं, भारत के बाहर ही यह घटना घटी है, जिनको तुम धार्मिक नहीं कहते।
जीसस बढ़ई थे, फिर भी "ईश्वर के पुत्र" की घोषणा हो सकी। मोहम्मद किसी बहुत ऊंचे वर्ण से नहीं आते थे। भेड़ों को चराने और भेड़ों के बाल काटने का धंधा करते थे, फिर भी पैगंबर हो सके। भारत के बाहर ही यह अनूठी घटना घटी है कि मोहम्मद जैसा अपढ़, गरीब, शूद्र वर्ग से संबंधित, जीसस जैसा अपढ़ शूद्र वर्ग से संबंधित व्यक्ति जीवन के उच्चतम शिखर पर विराजमान हो सका है। भारत तो बहुत अहंकारी है। अगर यहां क्राइस्ट पैदा होते भूल से, तो उनकी वही गति होती, जो कबीर की हुई। अगर यहां मोहम्मद पैदा हो जाते तो वही गति होती, जो कबीर की हुई; कोई फर्क न पड़ता।
भारत बहुत अहंकारी है। यहां धर्म भी अहंकार का हिस्सा हो गया है। और धार्मिक अहंकार! पवित्र अहंकार और भी खतरनाक हो जाता है--पवित्र जहर जैसा खतरनाक: क्योंकि जहर में अगर थोड़ा कुछ और मिला हो तो जहर जरा कम जहरीला हो जाता है।
मुल्ला नसरुद्दीन मरना चाहता था। तो बाजार गया, जहर खरीद लिया, रात को खाकर सो गया। कई बार उठ-उठ देखा, अभी तक मरे नहीं? सुबह भी हो गई। आंखे बंद किए थोड़ी देर पड़ा रहा, कि शायद मर गए हों। दूध वाले की आवाज सुनाई पड़ने लगी, घर में बरतन-भांडे बजने लगे--क्या मामला है? आंखें खोल कर देखा, सब वैसे ही है, मरे नहीं। सोचता था शायद नरक में पहुंचे कि स्वर्ग में --क्या हुआ? लेकिन मरे ही नहीं!
भागा हुआ दुकान पर पहुंचा जहर के और कहाः हद हो गई! तुमने धोखा दिया। उसने कहाः भई, मैं भी क्या कर सकता हूं? सभी चीजों में मेल चल रहा है। जहर भी शुद्ध कहां है आज? दूध ही अशुद्ध नहीं मिल रहा, जहर भी अशुद्ध है। उसको भी खाकर पक्का भरोसा नहीं कर सकते, कि मर ही जाओगे।
शुद्ध जहर तो बहुत खतरनाक हो जाता है। और धार्मिक व्यक्ति का अहंकार शुद्ध जहर है। उसमें से सब अशुद्धि बाहर निकाल दी गई। धनी आदमी के अहंकार में थोड़ी अशुद्धि है। वह अशुद्धि यह है, कि धन खो जाए तो अहंकार को गिरना पड़ेगा। पहलवान के अहंकार में थोड़ी अशुद्धि है, शरीर कल बीमार पड़ जाए--और पहलवान अक्सर बीमार पड़ते हैं। भयंकर बीमारियों से मरते हैं। क्योंकि पहलवानी शरीर के साथ ज्यादती है। वह प्राकृतिक है। इसलिए गामा हो, कि कोई भी हो, कैंसर, क्षयरोग, खतरनाक बीमारियों से मरते हैं--मरेंगे ही! क्योंकि शरीर के साथ जबरदस्ती कर रहे हैं। पहलवानी कोई स्वास्थ्य नहीं है।
तो एक दिन शरीर मरेगा, टूटेगा, खराब होगा; तब अकड़ चली जाएगी। आज पद पर हो, मिनिस्टर हो कि चीफ मिनिस्टर हो, कल नहीं रहोगे। फिर भीख मांगते वोट की फिरोगे। इसलिए वह अकड़ भी शुद्ध नहीं है।
लेकिन धार्मिक आदमी की अकड़ बिल्कुल शुद्ध है। उसको तुम छीन नहीं सकते। वह चरित्रवान है। चरित्र को कैसे छीनोगे? वह राम-चदरिया ओढ़ता है, राम-राम जपता है; उसको कैसे छीनोगे? वह मंदिर जाता है, पूजा-प्रार्थना करता है, यज्ञ-हवन करता है; उसको कैसे छीनोगे? उसका अहंकार छीनना मुश्किल। भारत महा-अहंकारी है। उसने अपने अहंकार को बड़े आभूषणों से सजा लिया है। और इसलिए बहुत से परम-ज्ञानियों से देश लाभ लेने से वंचित रह गया। बहुत पैदा हुए हैं इस मुल्क में, जिन्होंने परम सत्य को जाना है।
इसलिए मैं एक तरफ उपनिषदों पर बोल रहा हूं, कृष्ण पर बोल रहा हूं, लेकिन कबीर को भूलता नहीं। बीच-बीच में कबीर को भी ले आता हूं। किसी तरह राजपुत्रों को और शूद्रों को करीब लाना है। किसी तरह सिंहासन और भिखारी को पास लाना है। ताकि हम यह समझ सकें, कि सत्य को पाने का कोई भी संबंध न तो

जाति से है, न वर्ण से है, न धर्म से है, न कुल से है, न गोत्र से है। सभी के लिए खुला आकाश है सत्य का। जो भी आने का राजी है, उसका ही स्वागत है।

आज इतना ही।

मेरा मुझमें कुछ नहीं
तीसरा प्रवचन

पिया मिलन की आस

आंखरिया झांई पड़ी, पंथ निहार निहार।
जीभड़िया छाला पड़ा, राम पुकारि पुकारि।।
इस तन का दीवा करौं, बाती मैल्यूं जीव।
लोही सीचौं तेल ज्यूं, कब मुख देख्यौं पीव।।
सुखिया सब संसार है, खायै अरु सोवै।
दुखिया दास कबीर है, जागै अरु रोवै।।
नैन तो झरि लाइया, रहंट बहै निसुवार।
पपिहा ज्यों पिउ फिउ रटै, पिया मिलन की आस।।
कबीरा वैद बुलाइया, पकरि के देखो बांहि।
वैद न वेदन जानई, करक कलेजे मांहि।।

प्रभु की खोज बड़ी अनूठी है। क्योंकि जिसे हम खोजते हैं उसका कोई पता नहीं, कोई ठिकाना नहीं। वह है भी, यह भी पक्का नहीं।
कोई मंजिल है, तब तो मार्ग पर चलना आसान हो जाता है। लेकिन मंजिल दिखाई भी नहीं पड़ती, होगी इसका भी संदेह बना रहता है, कोई नक्शा हाथ नहीं, कोई दिशा-संकेत कोई मार्ग पर लगे मील के पत्थर नहीं।
खोज बड़ी अनूठी है। इसलिए बहुत कम लोग तो खोज ही शुरू करते हैं। इतने अनूठे अभियान में जाने का साहस कम लोगों का होता है। और जो खोज शुरू भी करते हैं, उनमें से भी बहुत ही कम पहुंच पाते हैं।
चार तरह के लोग हैं। उन्हें हम ठीक से समझ लें।
पहला वर्ग है, सरल-चित्त लोगों का; जिनके जीवन में श्रद्धा स्वाभाविक है। जिन्होंने संदेह जाना ही नहीं। जिन्होंने उस घाट का पानी ही नहीं पिया। जो किसी भांति बच गए। जो छोटे बच्चे की भांति ही हैं। जो सिर्फ भरोसा करना जानते हैं। उन्हें भरोसे का भी पता नहीं। क्योंकि भरोसे का भी पता उसे ही होता है, जिसने संदेह किया हो। उनकी सरलता ऐसी स्वाभाविक है, कि उसका बोध भी नहीं हो सकता।
ऐसे लोग तो परमात्मा को उपलब्ध ही हैं। आंख भर खोलने की बात है। द्वार खटखटाने की भर जरूरत है। शायद एक कदम भी उन्हें चलना नहीं, वे जहां हैं, वहीं उनका परमात्मा प्रकट हो जाए।
कभी पृथ्वी ऐसे वर्ग से भरी थी। लेकिन धीरे-धीरे वह वर्ग कम होता गया है। उसके भी कारण हैं।
क्योंकि तब संदेह की कोई शिक्षा-दीक्षा न थी। सारा जीवन ही एक ही पाठ पढ़ाता था, वह श्रद्धा का था। सब तरफ प्रकृति से एक ही खबर मिलती थी, वह श्रद्धा की थी। चांद-तारे श्रद्धा से घूमते मालूम पड़ते। सुबह रोज सूरज उग आता है समय पर, कभी नानुच नहीं करता। ऋतुएं एक वर्तुलाकार परिधि में घूमतीं--एक शांत नियम से। बच्चा जवान होता है, बूढ़ा होता है--सब व्यवस्थित है। और सब किसी गहरे अनुशासन में बंधा है।
उन दिनों, जब श्रद्धा वाले वर्ग का प्राबल्य था, कोई शिक्षा न थी संदेह की, कहीं से उसका पाठ न मिलता था। बचपन से लेकर--जब आंख खुलती, मृत्यु के क्षण तक, जब आंख बंद होती--सारा जीवन एक ही बात सिखाता था, वह भरोसा था। अब वह वर्ग न के बराबर है। लाओत्सु का बड़ा प्रसिद्ध वचन है, कि जब धर्म मिट गया, तब लोगों ने धर्म का चिंतन शुरू किया। वह पहले तरह के लोगों का धर्म रहा होगा। धर्म था ही नहीं। इसे थोड़ा समझ लेना।
धर्म की जरूरत ही नास्तिक को है। धर्म की जरूरत ही संदेहवाले को है। धर्म की आवश्यकता ही रुग्ण को है, क्योंकि धर्म औषधि है। अगर तुम बीमार ही नहीं हो, तो धर्म का क्या सवाल?
लाओत्सु कहता है, याद करो उन प्राचीन दिनों को, जब धर्म का किसी को पता
ही न था। क्योंकि लोग सहज ही धार्मिक थे। लोग स्वस्थ थे, औषधि का कोई चिंतन न था। लोग नैतिक थे, नीति की कोई विचारणा न थी। लोक सहज ही स्वभाववश

धार्मिक थे। न मंदिर था, न मस्जिद थी, न गुरुद्वारे थे; न वेद था, न कुरान थी, न बाइबिल थी। ये सब तो रोग की दुनिया के हिस्से हैं।
यह तुम्हें जान कर थोड़ी हैरानी होगी, चिकित्सा का शास्त्र बीमार जगत
का हिस्सा है। किसी दिन, तुम थोड़ा सोचो, अगर सारे लोग स्वस्थ हो जाए, बीमारी तिरोहित हो जाए, तो चिकित्सक विदा हो जाएगा। चिकित्सा का शास्त्र लोग धीरे-धीरे भूल जाएंगे।
कानून की जरूरत है, क्योंकि लोग चोर हैं, बेईमान हैं। अगर लोग ईमानदार हों, तो कानून की कोई जरूरत न होगी। अदालत चाहिए, क्योंकि आदमी का आदमी पर भरोसा नहीं है। आदमी का आदमी पर भरोसा हो, अदालत विदा हो गई। इसलिए मैं कहता हूं, कानून चोरों पर जीता है। न्यायाधीश के पैर के नीचे बेईमानों की जमात है। अदालतें अनीति पर खड़ी हैं, अन्यथा खो जाएंगी।
खलील जिब्रान की एक बड़ी मीठी कहानी है। एक रात एक शराबघर में एक व्यक्ति अपने मित्रों को लेकर आया और उसने खूब शराब पी, पिलाई, खूब लुटाई। ऐसे भी जो अनजान लोग बैठे थे शराबघर में, उनको भी बांटी। शराबघर का मालिक तो बड़ा प्रसन्न हुआ ऐसे दानी ग्राहक को पाकर।
आधी रात तक शोरगुल मचता रहा, शराब बहती रही। और लोग जब विदा हुए तो उसने अपनी पत्नी से कहा कि ऐसे ग्राहक रोज आएं तो हमारा धन्यभाग! उस आदमी ने विदा होते वक्त, जब वह बिल चुका रहा था, यह बात सुनी, तो उसने कहा कि तुम प्रार्थना करो कि हमारा धंधा ठीक से चलता रहे। तो रोज क्या, हम तो यहीं बने रहें, आने का सवाल ही नहीं।
उस आदमी ने पूछाः तुम्हारा धंधा क्या है?
उसने कहाः यह मत पूछा! मैं मरघट पर लकड़ी बेचने का काम करता हूं। मुर्दे रोज आते रहें, लकड़ी बिकती रहे, हम यहीं जमे रहेंगे। कभी मुर्दे आते हैं, कभी नहीं आते। भगवान से प्रार्थना करो हमारा धंधा ठीक चले, हम रोज आते रहेंगे।
अब जो आदमी मरघट पर लकड़ी बेचता है, उसकी सारी प्रार्थनाएं यही हैं कि कोई मरे। जल्दी करो, मरो! कोई तो मरो!
तुम्हें दिखाई नहीं पड़ता, चिकित्सक की प्रार्थना यही है कि कोई तो बीमार हो जाओ। न्यायाधीश की प्रार्थना यही है, कोई तो चोरी करो, कोई तो हत्या करो।
एक नया-नया आदमी न्यायाधीश हुआ था। दिन भर कोई मुकदमा न आया, तो उसने अपने क्लार्क से बड़ी उदासी हालत में कहा--क्योंकि वह बिल्कुल तैयार आया था--नया न्यायाधीश! जैसा नया मुल्ला मस्जिद जाता है, वैसा नया न्यायाधीश नियुक्त हुआ था। सब कानून वगैरह याद करके व्यवस्था से आया था, कि इस ढंग से शुरुआत करनी है। लेकिन कोई मुकदमा ही न आया! उसने क्लार्क से कहा, कि बड़ी निराशा होती है, कोई मुकदमा ही न आया।
उसने कहाः आप घबड़ाएं मत, मुझे आदमी के चरित्र पर पूरा विश्वास है। शाम
तक रुकें। जरूर कुछ न कुछ होगा ही। मुझे आदमी के चरित्र पर पूरा विश्वास है। कोई न कोई चोरी होगी, कोई हत्या होगी, कहीं छुरा चलेगा, कहीं आग लगेगी; आप घबड़ाएं मत। आप चिंतित मत हों। मेरी जिंदगी इस अदालत में बीत गई। ऐसा कभी होता ही नहीं कि दिन खाली चला जाए। आदमी के चरित्र पर मुझे पूरा विश्वास है! कोई आता ही होगा, रास्ते पर ही होंगे।
कैसा चरित्र है यह आदमी का, जिस पर अदालत जीती है!
और अगर लोग धार्मिक हों, तो पुरोहित न बचेगा। पुरोहित भी जीता है अधार्मिक आदमी के आधार पर। और अगर लोग साधु-चरित्र हों, तो तुम्हारे साधुओं का क्या होगा? वे खो जाएंगे। वे असाधुओं के आधार पर जीते हैं। साधु का मूल्य है, क्योंकि लोग असाधु हैं। अगर लोग साधुता से भरे हों, साधु का क्या मूल्य?
इसलिए लाओत्सु कहता है, धन्य थे वे दिन, याद करो वे पुराने दिन, प्राचीन पुरुषों का समय, जब धर्म की कोई बात ही न करता था, क्योंकि लोग सहज ही धार्मिक थे। तब नीति के कोई नियम न थे, क्योंकि नियम किसी ने कभी तोड़े ही न थे।

तोड़ने वाले से नियम बनते हैं। बिगाड़ने वाला व्यवस्था को सख्त करता है। हिंसक अहिंसा के शास्त्र को जन्म देता है। हिंसकों के समाज में "अहिंसा परमो धर्मः" यह सूत्र हो जाता है। वह पहले तरह का व्यक्ति तो कम होता गया। उस तरह के व्यक्ति से कभी धर्म का जन्म नहीं होता, वैसा व्यक्ति धार्मिक होता है। और वैसे व्यक्ति की तुम्हें कभी कोई खबर भी न मिलेगी। अगर वह होगा भी, तो उसकी तुम्हें कोई खबर नहीं मिलेगी। क्योंकि उसके जीवन में कोई उपद्रव ही न होगा। उसके जीवन में कोई क्रांति ही न होगी। शांति तो सघन होगी, क्रांति न होगी। और जब तक क्रांति न हो, तब तक तुम्हें खबर नहीं मिल सकती। वह ऐसे होगा, जैसे है ही नहीं।
ऐसे धार्मिक व्यक्तियों का उल्लेख किसी शास्त्र में नहीं है; हो नहीं सकता। तुम जान कर हैरान होओगे कि बुद्ध, महावीर, कबीर या मैं पहले वर्ग के लोग नहीं हैं। पहले वर्ग के आदमी का तो पता ही नहीं चल सकता। तुम मेरे पास आते कैसे? पहले वर्ग को तो खुद ही पता नहीं चलता कि वह धार्मिक है, दूसरे को कैसे पता चलेगा?
वह सहज ही चुपचाप जी लेता है। उसके जीवन में एक सुगंध तो होती है, लेकिन वह सुगंध ऐसी होती है, जैसे निर्जन में कोई फूल खिलता है। उसके जीवन में महिमा तो होती है, लेकिन उस महिमा को देखने शायद ही कोई कभी आता है। पता ही नहीं चलता।
वैसे व्यक्ति के जीवन में परमात्मा की खोज ही पैदा नहीं होती। वैसा व्यक्ति परमात्मा में ही जीता है। पैदा उसी में होता है, जीता उसी में है, श्वास उसी में लेता है, उसी में डूब जाता है। वैसे व्यक्ति का अपना होना अलग नहीं होता। ऐसा व्यक्ति न तो किसी साधना की जरूरत अनुभव करता है, न किसी साध्य की। ऐसे व्यक्ति का साधन और साध्य अलग-अलग नहीं होते। ऐसा व्यक्ति चुपचाप जी लेता है। उसकी श्वास-श्वास में अहोभाव होता है, उसके रोएं-रोएं में प्रार्थना होती है, लेकिन उसे भी पता नहीं होता।
क्योंकि प्रार्थना जब पता चलने लगे, तब दूसरी तरह का व्यक्ति है, पहली तरह का व्यक्ति नहीं। दूसरी तरह का व्यक्ति ठीक विपरीत है पहली तरह के व्यक्ति से। पहले तरह के व्यक्ति के लिए श्रद्धा स्वाभाविक है। उसे संदेह पैदा ही नहीं होता। उसे शक आता ही नहीं। वह उसकी लक्षणा है--श्रद्धा। वह उसके जीने का ढंग है। जैसे वह श्वास लेता है, ऐसे ही वह श्रद्धा लेता है। दूसरे तरह का व्यक्ति संदेह में निष्णात है। संदेह ही उसकी एकमात्र श्रद्धा है। वह संदेह करना ही जानता है। संदेह में ही जीना है। संदेह को उसकी पराकाष्ठा पर ले जाता है। बुद्ध, महावीर, कबीर सब दूसरे वर्ग के लोग हैं। इसलिए इनसे विराट धर्म का जन्म होता है।
जब दूसरे व्यक्ति का संदेह पराकाष्ठा पर पहुंचता है, तब वह अपने ही संदेह से दब कर, परेशान होकर, पीड़ित होकर संदेह को छोड़ता है और श्रद्धा को उपलब्ध होता है। वह संदेह में जलता है। जैसे कोई धूप में जलता हो भरी दुपहरी और फिर धूप में चल-चल कर थक जाए, पसीना-पसीना हो जाए, शरीर टूटने लगे, कदम उठाना मुश्किल हो जाए, तब एक वृक्ष के नीचे छाया में विश्राम करे। संदेह में चलता है ऐसा व्यक्ति, लेकिन संदेह में चल-चल कर टूटता है, थकता है। टूटेगा ही, थकेगा ही, क्योंकि संदेह जीवन नहीं है। संदेह तो विषाक्त है। जिसको भी उसकी आदत लग गई। वह उसे मिटाता है, आत्महत्या करवाता है।
संदेह सिकोड़ता है, मारता है।
श्रद्धा फैलाती है, बड़ा करती है।
इसीलिए तो श्रद्धा अंततः परमात्मा बनाती है तुम्हें। और संदेह अंततः तुम्हें सिर्फ एक क्षुद्र अहंकार में सीमित कर देता है। अगर संदेह के मार्ग से तुम चले, तो इस जगत में जो क्षुद्रतम वस्तु है अहंकार, वही तुम्हारी संपदा रह जाएगी। "मैं" के अतिरिक्त कुछ भी न बचेगा।
अगर तुम श्रद्धा से चले, तो "मैं" भर न बचेगा, और सब बचेगा। विराट बचेगा, तुम खो जाओगे। संदेह से चले तो बूंद रहेगी, सागर का कोई पता न रह जाएगा। श्रद्धा से चले तो सागर ही रहेगा, बूंद को खोजना ही मुश्किल हो जाएगा।

दूसरा वर्ग संदेह से चलने वाले लोगों का है, विचारकों का है, दार्शनिकों का, चिंतकों का, जिनको हम मनीषी कहते हैं, मनीषियों का। सोचते हैं; सोचने का मतलब ही संदेह होता है।
पहला वर्ग सोचता ही नहीं। वह तुम्हें भोला-भाला लगेगा। ऐसा भी हो सकता है, कि तुम्हें थोड़ा बुद्धू मालूम पड़े। उसकी श्रद्धा तुम्हें ऐसी लगेगी कि थोड़ी सी मूढ़ता जैसी है। समझ नहीं है, हृदय ही हृदय है; बुद्धि बिल्कुल नहीं है। कोई भी उसे धोखा दे सकता है। लेकिन कितना ही तुम उसे धोखा दो, तुम उसे संदेह नहीं दे सकते। तुम उसे धोखा दिए चले जाओ, इससे कोई फर्क न पड़ेगा। वह कोई रास्ता निकाल लेगा अपनी श्रद्धा को बचाने का। तुम उसकी श्रद्धा को नष्ट नहीं कर सकते। वह तुम्हें थोड़ा सा सरल भी मालूम पड़ेगा, भोला भी मालूम पड़ेगा, थोड़ा बुद्धू भी मालूम पड़ेगा।
इसलिए तो जगत से वह धीरे-धीरे मिट गया। क्योंकि तुम जहां, जिस जगत में जीते हो, उस संघर्ष में खड़े होने में उसके बचने की संभावना ही नहीं है। वह इतना शुद्ध है कि वह खो जाएगा। जैसे सोने का आभूषण बनाना हो तो थोड़ी अशुद्धि मिलानी पड़ती है। अगर सोना बिल्कुल शुद्ध हो, तो आभूषण नहीं बन सकता। क्योंकि थोड़ी अकड़ चाहिए।
इसलिए श्रद्धा संसार से खो गई है। या कभी कोई आदमी होता भी है, तो उसका पता नहीं चलता। वह इतना शुद्ध सोना होता है कि तुम्हें उसके जीवन में कोई आभूषण न दिखाई पड़ेंगे। तुम उसे बुद्ध की महिमा से भरा हुआ न पाओगे।
दूसरा वर्ग है संदेह करने वाले लोगों का, जो हर चीज पर संदेह करते हैं। जो संदेह को उसकी अंतिम सीमा तक ले जाते हैं। जो अति पर ले जाते हैं। जो संदेह से ही घिर जाते हैं। जिनके चारों तरफ संदेह का अंधकार ही बचता है। जो संदेह की पीड़ा से गुजरते हैं, संताप को भोगते हैं, संदेह का नरक देखते हैं।
अगर कोई व्यक्ति, यह दूसरे वर्ग का व्यक्ति जब तक पूर्ण संदेह से न भर जाए, तब तक इसके जीवन में क्रांति घटित नहीं होती। जब इसका संदेह इतना ज्यादा हो जाता है, कि यह संदेह पर संदेह करने लगता है--वह आखिरी घड़ी आ गई; अब संदेह मरने की घड़ी में आ गया, जब संदेह पर संदेह होता है।
इस घड़ी तक बहुत कम लोग पहुंचते हैं। जो पहुंच जाते हैं, उनके जीवन में बुद्धत्व का जन्म हो जाता है। संदेह पर संदेह करते ही संदेह गिर जाता है। और तब एक श्रद्धा का आविर्भाव होता है।
यह श्रद्धा तुम्हें दिखाई पड़ेगी। पहले वर्ग की श्रद्धा तुम्हें दिखाई न पड़ेगी, क्योंकि उसमें विपरीत बिल्कुल नहीं है। वह सफेद दीवाल पर खींची गई सफेद लकीर है। बुद्ध काले ब्लैक-बोर्ड पर खींची गई सफेद लकीर हैं। वे तुम्हें दिखाई पड़ेंगे, सदियों तक दिखाई पड़ेंगे। वे अनंत काल तक दिखाई पड़ते रहेंगे। उनकी महिमा का गुणगान जारी रहेगा।
दूसरे वर्ग का व्यक्ति अगर अपने संदेह में पूरा-पूरा चला जाए--और वह चला ही जाता है--तो वह नास्तिक होकर आस्तिक होता है। इसलिए उसकी आस्तिकता में पहली आस्तिकता से ज्यादा महिमा दिखाई पड़ती है। क्योंकि उसके जीवन में एक क्रांति घटती है, एक रूपांतरण होता है। अचानक अंधकार प्रकाश बनता है। अचानक संदेह श्रद्धा बन जाता है। वही ऊर्जा, जो संदेह बनती थी, श्रद्धा बन जाती है। वही ऊर्जा, जो विचार बनती थी, ध्यान बन जाती है। वही ऊर्जा, जो समस्याओं में उलझी थी, समाधि बन जाती है।
उसके जीवन में इतनी बड़ी क्रांति होती है कि जैसे पत्थर अचानक उठ कर चलने लगे। सारी दुनिया को दिखाई पड़ेगा। उसके पीछे हजारों लोग चलेंगे, लाखों लोग चलेंगे। उसके पीछे धर्म निर्मित होंगे।
पहला व्यक्ति अपने को सत्य में ही पाता है।
इसलिए हम पहले व्यक्ति की चर्चा न भी करें, तो भी चलेगा। क्योंकि उसको कोई जरूरत भी नहीं है। उसका कोई प्रयोजन नहीं। वह तो, गणित तुम्हें पूरा समझ में आ जाए, इसलिए मैंने पहले की भी बात की, ताकि तुम दूसरे को ठीक से समझ लो। अन्यथा दूसरे को समझना मुश्किल होगा।
कबीर और बुद्ध बड़े तार्किक हैं। महावीर से बड़ा तार्किक खोजना मुश्किल है। लेकिन उनका तर्क श्रद्धा के लिए समर्पित हो गया है। कभी वह तर्क

श्रद्धा के विपरीत लड़ा था, खूब लड़ा था, आखिरी दम तक लड़ा था। जब तक जीतने की कोई भी आशा बची थी, तब तक लड़ा था। जब सब आशा खो गई, और जीतने के सब उपाय खो गए, तभी उसने शस्त्र डाले।
यह दूसरा व्यक्ति--पहला व्यक्ति तो आस्तिक है ही; उसे पता भी नहीं, कि
वह आस्तिक है। दूसरा व्यक्ति आस्तिक है और उसे पता है, कि वह आस्तिक है क्योंकि वह नास्तिकता से गुजरा है। पहला व्यक्ति ऐसा है, जो कभी बीमार ही नहीं पड़ा, सिर में दर्द ही नहीं हुआ, वह जानता ही नहीं कि बीमारी क्या है; वह जानता ही नहीं कि स्वास्थ्य क्या है, क्योंकि बीमारी के बिना स्वास्थ्य को कैसे जानोगे?
दूसरा व्यक्ति बीमार रहा, अस्पतालों में रहा, हजार तरह की दवाइयों का कष्ट झेला, हजार तरह की चिकित्सकों से गुजरा, फिर स्वस्थ हुआ।
पहला व्यक्ति जागा, तब सुबह ही थी। दूसरा व्यक्ति जब जागा तब आधी रात थी। रात में भटका, अंधेरे में ठोकरें खाईं, फिर सुबह हुई। पहले व्यक्ति ने जब आंख खोली, तब वह मंदिर में ही था। दूसरे ने जब आंख खोली, तब उसने अपने को बाजार में पाया और यात्रा की, और मंदिर तक पहुंचा।
पहला व्यक्ति तीर्थ में ही पैदा होता है। दूसरा व्यक्ति तीर्थयात्रा करके तीर्थ पहुंचता है।
स्वभावतः दूसरे व्यक्ति की घोषणा दूर-दूर तक सुनी जाती है। दूर दिगंत
तक उसका नाम गूंजता है। उसके शब्दों का मूल्य होता है। उसके शब्दों पर विचार करना पड़ता है।
फिर तीसरी कोटि है। तीसरी कोटि उन लोगों की है, जो सदा डांवाडोल हैं।
न तो उनकी श्रद्धा पूरी है, न संदेह। न तो वे आस्तिक हैं पहले तरह के और न उन्होंने दूसरी तरह की नास्तिकता जानी है। वे अधूरे-अधूरे हैं, आधे-आधे हैं, फिफ्टी-फिफ्टी हैं।
एक क्षण आस्तिक, एक क्षण नास्तिक; उनका मन बड़ा डांवाडोल है। वे दो नावों पर एक साथ सवार हैं। उनकी दुविधा तुम समझ सकते हो। उनका कष्ट भारी है। वे तय ही नहीं कर पा रहे हैं कि कहां जाना है! वे चौराहे पर ही खड़े रहते हैं। कभी एक रास्ते पर दो कदम चलते हैं, फिर दूसरे रास्ते पर दो कदम चलते हैं, फिर चौराहे पर लौट आते हैं।
यह दुनिया में सबसे बड़ा वर्ग है। पहला वर्ग तो वर्ग कहना कठिन है। इक्के दुक्के लोग होते हैं। उस तरह के लोगों का कभी किसी को पता नहीं चलता। इतिहास में उनकी कोई स्मृति नहीं छूटती। उन्हें हम छोड़ सकते हैं।
उनका विचार करना अर्थपूर्ण नहीं है। उनके कोई पद-चिह्न नहीं छूटते।
क्योंकि वे कोई यात्रा ही नहीं करते तो पद-चिह्न कैसे छूटेगा? वे मंदिर में ही अपने को पाते हैं। उन्हें हम छोड़ दें। वे हमारे किसी काम के भी नहीं हैं।
क्योंकि तुमने अपने को मंदिर में पाया होता तो तुम यहां होते ही नहीं। तुमने नहीं पाया अपने को मंदिर में, तुमको दूसरा आदमी कुछ काम का हो सकता है। अगर तुम्हारे भीतर संदेह प्रगाढ़ हो--लेकिन उतना संदेह को प्रगाढ़ करने के लिए भी बड़ा साहस चाहिए। बड़ा डर लगता है संदेह करने में, कि कहीं परमात्मा हो ही न! फिर क्या होगा? भय लगता है, घबड़ाहट होती है। तो तुम आधी श्रद्धा और आधा संदेह...
और यह सबसे बड़ी दुर्गति है। क्योंकि यह मेल होता ही नहीं। पानी और दूध
तो मिल जाते हैं, लेकिन श्रद्धा और संदेह नहीं मिलते, वे पानी और तेल जैसे हैं। उनका मिलना होता ही नहीं। पानी भी खराब हो जाता है, तेल भी खराब हो जाता है।
पर यह बड़े से बड़ा वर्ग है दुनिया में। और इस वर्ग की तकलीफ यह है कि वह सदा कुनकुना रहता है, उबलता नहीं। या तो संदेह ही पूरा कल लो, या श्रद्धा ही पूरी कर लो। यह तो मैं जानता हूं, कि श्रद्धा तुम पूरी न कर सकोगे, क्योंकि वह तो पहले वर्ग के व्यक्ति की लक्षणा है।
दूसरा व्यक्ति तुम बन सकते हो तीसरी कोटि से। तुम संदेह ही पूरा कर लो। तुम खूब विचार में लग जाओ। तुम सोच ही लो। जल्दी भी नहीं है कुछ निर्णय लेने की। संदेह को पूरा कर लो, ताकि संदेह का सांप अपना फन झुका ले। तुम

गुजर जाओं उस यात्रा से--इनकार की यात्रा से, नकार की यात्रा से, "नहीं" की यात्रा से--गुजर जाओ! क्योंकि जरा सा भी "नहीं" अगर भीतर बचा रहा, तो "हां" कहने में असुविधा आएगी। और जब तक तुम परिपर्ण हृदय से "हां" न कह सकोगे, तब तक तुम्हें परमात्मा की कोई झलक न मिल सकेगी।
गुजरो! दुविधा में मत रहो। संदेह को चुनो, ताकि तुम कम से कम दूसरी कोटि के व्यक्ति हो जाओ। दूसरी कोटि से मार्ग पहली कोटि का खुलता है। और तीसरी कोटि से पहली कोटि में जाने का कोई सीधा उपाय नहीं है। संदेह करते तुम कैसे पूरी श्रद्धा कर सकते हो? इसे थोड़ा समझ लो।
जरा सा भी संदेह भीतर रहेगा, श्रद्धा अधूरी रहेगी। और अधूरी श्रद्धा अश्रद्धा से बदतर है। उसका कोई मूल्य ही नहीं है। वह जब होती है पूरी, तभी होती है। वह जब होती है पूरी, तभी उसकी गरिमा है। वह जब होती है पूरी, तभी तुम्हें रूपांतरित करती है और बदलती है।
जैसे सौ डिग्री गर्मी पर पानी भाप बनता है, वैसे ही सौ डिग्री संदेह
पर तुम्हारी जीवन-ऊर्जा श्रद्धा बनती है; उससे कम में नहीं बनती। तो तुम दूसरी कोटि में जाओ, ताकि पहली कोटि का द्वार खुल जाए।
फिर एक चौथा वर्ग है, वह सबसे बड़ा वर्ग है। उसको न तो श्रद्धा है, न संदेह है। उसके जीवन में सवाल ही नहीं उठा। उसे प्रश्न ही नहीं उठे। उसके लिए कबीर कहते हैं, "सुखिया सब संसार है, खायै अरु सोवै।"
वह चौथा वर्ग है। वे खाते हैं, सोते हैं, और बड़े सुखी हैं। क्योंकि यात्रा हो तो थोड़ा कष्ट भी होता है--चलना पड़े, कहीं जाना पड़े। खाना है, सोना है, मर जाना है, वहीं सड़ जाना है। जहां आए थे, वहीं से मिट जाना है। उनके जीवन में कोई उपक्रम नहीं है, कोई अभियान नहीं है, कोई खोज नहीं है, कोई यात्रा नहीं है। यह सबसे बड़ा वर्ग है। एक तरह की उपेक्षा है, इनडिफरेंस है।
इस वर्ग को हैरानी होती है कि क्या कर रहे हो मंदिर में? किसलिए जाते हो? क्या पढ़ रहे हो उपनिषद में? क्यों समय खराब करते हो? इतनी देर खाओ, पीओ, सोओ।
ऐसा वर्ग अत्यंत सतह पर जीता है। न तो संदेह है उसे, न श्रद्धा है। ऐसा वर्ग सबसे ज्यादा कठिन है। ऐसा वर्ग धर्म की यात्रा पर कैसे जाए? अगर बुद्ध भी निकल जाएं, कबीर भी चिल्लाते निकल जाएं तो ऐसे वर्ग के कान में आवाज नहीं पड़ती। वह समझता है, कोई पागल होगा। किसी का दिमाग खराब हो गया है। अन्यथा चुपचाप खाओ और सोओ। संसार में आए हो, भोग लो। जो है, उससे पार देखने की उसकी सामर्थ्य नहीं है। वह अंधे से अंधा वर्ग है।
इस चौथे वर्ग से ही धनपति पैदा होते हैं, धन की दौड़ वाले लोग पैदा होते हैं, राजनीतिक पैदा होते हैं, पद की दौड़ वाले लोग पैदा होते हैं। इस चौथे वर्ग से ही मनुष्य समाज का बहुजन हिस्सा बना है। पत्थर जैसा पड़ा है।
इसे तो कबीर के वचन समझ में भी न आएंगे। लेकिन ऐसा आदमी समझने भी नहीं आता। इस चौथे वर्ग में से एक भी आदमी यहां नहीं है। वह इतनी दूर भी नहीं आएगा। वह हो सकता है, यहां पड़ोस में ही रहता हो। उसको सिर्फ हैरानी होती है कि इतने लोग सुबह-सुबह यहां क्यों आते हैं? इतने समय का कुछ उपयोग कर लो। क्यों असार जीवन गंवा रहे हो?
जिस जीवन को वह जीता है, वही उसके लिए सार है। उसको कल्पना भी नहीं है,
कि इससे पार जीवन हो सकता है। संवेदना भी नहीं है उसमें, कि इससे भिन्न भी कुछ हो सकता है, इससे श्रेष्ठ भी हो सकता है, इससे सुंदर भी हो सकता है। वह सोचता है, जो है, बस, यहीं सब समाप्त है। दृश्य पर सब समाप्त है, उसके पीछे कुछ भी छिपा नहीं है।
ऐसे आदमी के जीवन में रहस्य का कोई अनुबोध नहीं होता। रहस्य की कोई पुकार नहीं उठती। ऐसा आदमी जीता कम है, मरता ज्यादा है। ऐसे आदमी के दिन नींद से भरे दिन हैं। वह मूर्च्छित है।
मोहम्मद ने ऐसे व्यक्तियों के लिए कहा है, कि अगर पहाड़ मोहम्मद के पास
न आएगा तो मोहम्मद पहाड़ के पास जाएगा। पहाड़ आता ही नहीं मोहम्मद के पास। यह चौथे वर्ग के लिए मोहम्मद ने कहा है, कि अगर तुम न आ सकोगे तो मैं तुम्हारे पास आऊंगा।

लेकिन इससे भी कोई फर्क नहीं पड़ता। मोहम्मद भी जाए, तो ऐसा आदमी दरवाजा बंद कर लेता है और कहता है, आगे; कहीं और जाओ, यहां नींद खराब मत करो। हम शांति से सो रहे हैं। और सपना बहुत अच्छा चल रहा था। मोहम्मद के जाने से कोई फर्क नहीं पड़ता। पहाड़ पहाड़ ही है। इसके भीतर कोई चेतना ही नहीं जगी है।
इस चौथे तरह के व्यक्ति में तो जीवन की कोई घटना ही ऐसी घट जाए, जो उसे तिलमिला दे। कोई ऐसी घटना घट जाए, जो उसको चोट दे दे, और सपने को थोड़ा झकझोर दे। कोई ऐसी घटना घट जाए, जो उसे सोचने को विवश कर दे। किसी स्त्री को वह प्रेम करता हो और वह स्त्री मर जाए, तो शायद एक क्षण को उसे ख्याल उठे, कि यह जीवन सार है? जिस बच्चे को उसने बहुत साज-सम्हाल से पाला हो, बड़ा किया हो, बड़ी महत्वाकांक्षाएं संजोई हों, जिसके आस-पास बड़े इंद्रधनुष बांधे हों, वह अचानक समाप्त हो जाए, या धोखा दे दे, या घर छोड़ कर चला जाए, तो उसे धक्का लगता है। या दिवालिया हो जाए, पद खो जाए, प्रतिष्ठा चली जाए, तो शायद! ऐसे व्यक्ति के लिए जब तक जीवन में कोई ऐसी दुखांत घटना न घट जाए, जो सारी अतीत की व्यवस्था को तिलमिला दे, तब तक उसके जीवन में धर्म की कोई किरण नहीं आती, विचार ही नहीं आता। ऐसे व्यक्ति के लिए दुख की घटना ही एकमात्र उपाय है।
इसलिए ज्ञानियों ने कहा है, दुख को सदा दुख मत मानना, कभी वह आशीष भी है। चौथे वर्ग के लिए निश्चित वही एकमात्र आशीष है, वही एकमात्र वरदान है, क्योंकि उसी से उसकी यात्रा शुरू हो सकती है। अन्यथा वह दबा ही रहेगा अपने अंधकार में।
यह चौथा वर्ग ही बाजारों में बैठा है, दुकानों पर बैठा है। सब तरफ फैला हुआ है। यह चौथा वर्ग ही दुनिया को व्यवस्था दे रहा है, क्योंकि उसकी बड़ी संख्या है। मत उसका है। वह चाहे अपने को हिंदू कहे, चाहे मुसलमान कहे, चाहे ईसाई कहे, ये सब बातें निष्प्रयोजन हैं। उसे इनमें कोई सार नहीं है। वह सिर्फ कहने को कह रहा है। यह लोकोपचार है, व्यवस्था का अंग है। तो कहता है, हिंदू हूं, ईसाई हूं, मुसलमान हूं। फर्क उसे कुछ दिखाई नहीं पड़ता, कि इनमें कोई फर्क है। कोई फर्क नहीं है। रस उसका किसी में भी नहीं है। वह बाइबिल घर में रखे रहता है, सिर्फ धूल जमती है।
मैंने सुना है कि एक व्यक्ति ने एक द्वार पर दस्तक दी। महिला ने द्वार खोला। उस व्यक्ति ने कहा, कि मैं शब्दकोष बेचता हूं, डिक्शनरी बेचता हूं। और एक नया शब्दकोष आया है; आप लेना पसंद करेंगी?
महिला ने उसे टालने के लिए कहा, कि शब्दकोष तो हमारे पास है। टेबिल पर रखी हुई किताब बता दी दूर से। उस आदमी ने कहा कि वह शब्दकोष नहीं हो सकता, वह बाइबिल है।
वह महिला बड़ी हैरान हुई, वह बाइबिल थी! वह तो सिफ बहाना थ कि शब्दकोश है--टालने के लिए बात की थी। उसने कहा कि हैरानी की बात है। तुमने कैसे जाना, कि वह बाइबिल है?
उसने कहाः जमी धूल बता रही है। शब्दकोष तो कोई कभी-कभी देखता भी है, उस
पर इतनी धूल नहीं जम सकती। सिर्फ बाइबिल पर, वेद पर ऐसी धूल की पर्ते गमती हैं। कोई कभी उठा कर भी देखता है?
अब हिंदू कहे चले जाते हैं, कि वेद भगवान है; उनमें से एक उठाकर नहीं देखता, कि वह भगवान कैसा है!
और तुम देखोगे तो बहुत हैरान होओगे। वेद के सौ वचनों में एकाध वचन ही वेद जैसा है। बाकी तो बिल्कुल साधारण हैं। तुम खुद ही हैरान होओगे। मगर तुमने देखा ही नहीं है, इसलिए भगवान है। वेद भगवान चलता चला जाता है। अगर तुम अपने शास्त्र देखोगे तो नब्बे प्रतिशत पर तो तुमको भी हैरानी होगी यह इसमें क्यों है?
अब वेद में कोई किसान भगवान से प्रार्थना कर रहा है, कि मेरे खेत पर ज्यादा पानी बरसा देना और मेरे शत्रु के खेत पर कम! अब वेद भगवान है, इसमें इसके होने की क्या जरूरत? और यह भी कोई बात हुई! यह धार्मिक आदमी का लक्षण हुआ! कि मेरे शत्रुओं की गायों का दूध खो जाए! यह भी संयुक्त वेद में

इकट्ठा है। पर उसे तुमने कभी देखा ही नहीं है। अच्छा ही है, नहीं तो तुम्हें शक पैदा होते।
यह जो चौथे तरह का व्यक्ति है, मंदिर भी चला जाता है, मगर वह सामाजिक व्यवस्था का हिस्सा है, वह इसकी प्यास नहीं है। इसके कंठ में कोई प्यास नहीं है। यह पानी पर प्रवचन सुन लेता है, लेकिन पानी पीने की इसकी कोई उत्कंठा नहीं है। जब यह मंदिर जाता है तो सरोवर की तलाश में नहीं जाता। भीड़ जा रही है, इसे भी जाना उचित है, क्योंकि भीड़ के साथ रहना सुविधापूर्ण है। भीड़ के विपरीत चलना असुविधापूर्ण है। भीड़ पसंद नहीं करती कि कोई भीड़ से अलग चले। क्योंकि उस से भीड़ के अहंकार को चोट पहुंचती है।
तो सब निभा लेता है--पर निभा रहा है। इसके अंतः प्राणों में कहीं कोई वीणा नहीं बजती। मंदिर के घंटे बजते रहते हैं, इसके भीतर कोई ध्वनि प्रवेश नहीं करती। पूजा होती रहती है मंदिर में, अर्चना के दीप जलते रहते हैं, इसके भीतर कोई किरण नहीं पहुंचती। धूप जलती है, सुगंध उठती है, पर इसके भीतर सब निर्जन है। वहां कोई सुगंध का प्रवेश नहीं होता। वहां इसकी अपनी जीवन की जो दुर्गंध है, वही आवास किए रहती है।
ये चार तरह के लोग हैं। पहले तरह के लोगों में इतनी सरलता होगी कि उनकी सरलता के कारण ही उनकी कोई रेखा जीवन पर नहीं छूटेगी। उनका पता ही नहीं चलेगा। हवा के झोंके की तरह वे आएंगे और चले जाएंगे। उनमें से बड़े प्यारे लोग होंगे। वे अपनी पत्नी को प्रेम करेंगे, अपने बच्चों को प्रेम करेंगे। उनके निकट जो आएगा, उसे प्रेम देंगे, श्रद्धा देंगे। लेकिन वे मनुष्यता को प्रेम करने की बात नहीं करेंगे। न ही वे कहेंगे, कि राष्ट्र के लिए कुरबान हो जाओ। न ही वे कहेंगे, कि धर्म खतरे में है। वे जी लेंगे धर्म को। धर्म उनका जीवन होगा, श्वास-श्वास होगा, उनका वक्तव्य नहीं होगा। इसलिए उनका तुम्हें कोई पता नहीं चलेगा।
लाओत्सु का एक बड़ा पुराना वचन है कि परम संतों का पता ही नहीं चलता। कैसे चले पता? हो सकता है, तुम्हारे पड़ोस में ही कोई रहता हो। और यह भी हो सकता है कि तुम्हारे घर में हीत कोई रहता हो। हो सकता है तुम्हारा पति, तुम्हारी पत्नी, तुम्हारा बेटा उस परम अवस्था में हो, लेकिन पता नहीं चलेगा। वह बात इतनी शांत है, वह बात इतनी मौन है, वह घटना इतनी अदृश्य है... दूसरा वर्ग सर्वाधिक महत्वपूर्ण सिद्ध होता है, क्योंकि वह नास्तिकता से गुजरता है, पीड़ा से गुजरता है, नरक से गुजरता है और फिर होती है सुबह। अंधकार के बाद उगता है सूरज। बड़े संताप के बाद स्वर्ग की प्रतीति होती है, वह नाच उठता है। यह दूसरा वर्ग संदेह कर-कर के एक दिन उस अवस्था में पहुंचता है, जहां कंठ में प्यास जगती है; जहां वह पुकारता है; जहां परमात्मा और इसके बीच अनंत दूरी मालूम पड़ती है और परमात्मा के साथ एक हो जाने का भाव और अभीप्सा पैदा होती है।
ये कबीर के वचन उस दूसरे व्यक्ति के ही वचन हैं। दूसरी कोटि के वचन हैं। दूसरी कोटि से ही बड़े दार्शनिक पैदा होते हैं, अगर वे संदेह में ही रह जाएं। बड़े विचारक--प्लेटो, अरस्तू, कांट, हीगेल, रसेल। अगर वे संदेह में ही रह जाएं तो बड़े दार्शनिक पैदा होते हैं। अगर वे संदेह का अतिक्रमण कर जाएं तो बड़े रहस्यवादी संत पैदा होते हैं--लाओत्सु, कृष्ण, बुद्ध, कबीर।
इसी दूसरे वर्ग से महान कवि पैदा होते हैं। अगर वे संदेह में ही रह जाएं तो उनकी कविताएं संसार से संबंधित होती हैं, कामवासना से प्रेरित होती हैं। तो उनकी कविताएं तृष्णा को ही रूप देती हैं, वासना की ही मूर्तियां निर्मित करती हैं।
और अगर वे संदेह के पार हो जाएं तो उपनिषद के ऋषि पैदा होते हैं, कवि पैदा होते हैं, व्यास पैदा होते हैं, रवींद्रनाथ पैदा होते हैं, खलील जिब्रान पैदा होते हैं। तब-तब उनकी कविताओं में उनकी श्रद्धा का आविर्भाव होता है। तब उनकी कविता से उनकी श्रद्धा बहती है।
यह दूसरा वर्ग सबसे ज्यादा पोटेंशियल, सबसे ज्यादा संभावनाओं से भरा हुआ वर्ग है। और अगर तुम अपने को दूसरे वर्ग में पाते हो, तो जितनी जल्दी हो सके, संदेह की यात्रा पूरी कर लो। और अधूरा मत छोड़ना संदेह को, अन्यथा वह सदा तुम्हारा पीछा करेगा।

ध्यान रखना इस सूत्र को, कि जिस अनुभव को भी तुमने आधा छोड़ दिया, वह सदा तुम्हारे सिर के आस-पास मंडराएगा, वह तुम्हारा आभा-मंडल बन जाएगा। वह तुम्हारा पीछा न छोड़ेगा। वह तुम्हारे सपनों में छाया डालेगा, वह तुम्हारी वासनाओं में उतरेगा, वह तुम्हारी कामनाओं में चित्र निर्मित करेगा। वह तुम्हें डगमगाएगा, वह तुम्हें पीछे खींचेगा, वह तुम्हें आगे न जाने देगा। वह तुम्हारे पैर में जंजीर होगा।
पूरा कर लेना। बिना पूरा किए कोई भी चीज आगे नहीं जा सकती। पक जाने देना संदेह को। पका हुआ संदेह का फल जैसे ही जमीन पर गिरता है, वैसे ही वृक्ष श्रद्धा को उपलब्ध हो जाता है।
अगर तुम पाओ कि तुम दूसरे वर्ग में नहीं हो, तीसरे वर्ग में हो, जिसकी संभावना बहुत है--कि तुम डांवाडोल हो, कि न तुम श्रद्धा कर सकते, न तुम संदेह कर सकते, तो दो संभावनाएं हैं।
अगर तुम पंडितों और पुजारियों की सुनोगे तो वे कहेंगे, छोड़ो संदेह और श्रद्धा को पकड़ लो। मैं तुमसे वह न कहूंगा, क्योंकि तुम्हारी श्रद्धा तब बिल्कुल झूठी होगी। और तुम्हारी श्रद्धा के भीतर संदेह की आग जलती रहेगी। तुम ऊपर-ऊपर से श्रद्धा को ओढ़ लोगे वस्त्रों जैसा, लेकिन तुम्हारी आत्मा संदेह की रहोगी। और अंतिम रूप से निर्णायक तुम्हारे भीतर जो है, वही है। तुम्हारा बाहर निर्णायक नहीं है। वस्त्रों से कहीं कोई निर्णय होता है? तुम सुंदर वस्त्र पहन कर सुंदर नहीं हो जाते, सुंदर हृदय चाहिए। न ही तुम सुंदर आभूषण पहन कर सुंदर हो जाते हो, सुंदर आत्मा चाहिए।
नहीं, ऊपर से ओढ़ी श्रद्धा कुछ काम न आएगी। राम चदरिया तुम मत ओढ़ना। उससे कुछ हल होने वाला नहीं है। राम जब तक हृदय में ही न उतर जाए, तब तक कुछ सार नहीं है।
तो अगर तुम तीसरी कोटि में अपने को पाते हो, तो तुम संदेह को बढ़ाओ, ताकि तुम शीघ्र ही दूसरी कोटि में प्रवेश कर जाओ। फिर तुम संदेह को पूरी तरह जी लो, ताकि तुम पहली कोटि में प्रवेश कर जाओ।
और मैं नहीं सोचता कि चौथी कोटि का कोई व्यक्ति यहां होगा। वह इतना भी श्रम नहीं करता। लेकिन अगर वह तुम्हें कहीं मिल जाए, तो उसके साथ तुम व्यर्थ सिर मत तोड़ना। वह पहाड़ है। उसके साथ तुम शक्ति मत गंवाना। उसके लिए तुम सिर्फ प्रार्थना कर सकते हो कि परमात्मा उसे कोई जीवन की ऐसी घड़ी दे, जहां उसकी नींद टूट जाए।
बुद्ध ने कहा है कि जब भी तुम प्रार्थना करो, तब उस विराट बहुजन समाज
के लिए प्रार्थना करना, जो सोया है। हर प्रार्थना के बाद तुम उसका स्मरण करना कि उसकी नींद टूट जाए। तुम्हारी प्रार्थना ही उसके लिए सहयोगी हो सकती है, तुम्हारा विवाद नहीं, तुम्हारा प्रवचन नहीं, तुम्हारे वचन नहीं। तुम चौथे को समझा न पाओगे। उसे प्रयोजन ही नहीं है। वह ऐसा ही है, जैसे कोई छोटे से बच्चे को काम वासना के संबंध में समझाए, और वह बच्चा कोई रस न ले; क्योंकि अभी काम वासना जगीही नहीं। तो तुम चाहे वात्स्यायन का काम-सूत्र समझाओ, चाहे फ्रायड का मनोविश्लेषण समझाओ, वह बच्चा कहेगा, बंद करो बकवास। यह तुम क्या कह रहे हो? अभी काम वासना उठी नहीं, थोड़ा उसे प्रौढ़ होने दो।
तो चौथे वर्ग के साथ बड़ी प्रतीक्षा चाहिए। कई बार लोग उसके साथ सिर खपाते हैं--व्यर्थ! उसका कोई सार नहीं है। तुम प्रतीक्षा करो, पकने दो उसे। वह अपने से ही एक घड़ी आएगी उसके जीवन में, तब यात्रा शुरू हो सकती है। ध्यान रखना, पहले के लिए सिर्फ प्रार्थना की जा सकती है। दूसरे को सहारा दिया जा सकता है। तीसरे को बड़े दूर तक यात्रा करवायी जा सकती है। और चौथे को जरूरत ही नहीं है।
ये चार वर्ग हैं। इसमें तुम कहां हो, उस पर ही निर्भर करेगा, कि कबीर
के वचन तुम्हारे भीतर क्या अर्थ लेते हैं।
इसलिए ज्ञानियों के हर वचन के चार अर्थ होंगे। कभी-कभी मैं सोचता हूं
कि चारों अर्थ करूं, लेकिन तब तुम बड़ी मुश्किल में पड़ जाओगे। बहुत उलझन हो जाएगी। इसलिए मैं तीसरे व्यक्ति का अर्थ करता हूं। तुम वैसे ही उलझे हो, और न उलझ जाओ।

"आंखरिया झांई पड़ी, पंथ निहार निहार।
जीभड़िया छाला पड़ा, राम पुकारि पुकारि।।
इस तन का दीवा करौं, बाती मैल्यूं जीव।
लोही सीचौं तेल ज्यूं, कब मुख देख्यौं पीव।।
सुखिया सब संसार है, खायै अरु सौवे।
दुखिया दास कबीर है, जागै अरु रोवै।।
नैन तो झरि लाइया, रहंट बहै निसुवार।
पपिहा ज्यों पिउ पिउ रटै, पिया मिलन की आस।।
कबिरा वैदा बुलाइया, पकरि के देखी बांहि।
वैद न वेदन जानई, करक कलेजे मांहि।।
जिसका संदेह गिर गया, उसके जीवन में प्यास का आविर्भाव होता है। जब तक संदेह है, तब तक तो प्यास हो ही नहीं सकती। जब तक तुम्हें यह भरोसा ही नहीं आ गया कि परमात्मा है, तब तक तुम कैसे पुकारोगे? तब तक कैसे "जीभड़िया छाला पड़ा, राम पुकारि पुकारि!"
पागल हो तुम, कि जीभ पर छाले पड़ जाएं, इतना तुम राम को पुकारोगे, जिस राम पर श्रद्धा ही नहीं! तब तुम यह करोगे कि पुजारी रख लोगे, तनख्वाह दे दोगे कि तू राम-राम पुकार। जीभड़िया छाला पड़े, तो तेरी जीभ पर पड़े। हम उसका पैसा दे देते हैं।
तो तुम पुरोहित को बुला लेते हो यज्ञ करने। धनपति मंदिर बना देते हैं
घर में, और एक पुजारी रख देते हैं। और पुजारी क्यों जीभ पर छाला डालेगा? पैसे के लिए कोई जीभ पर छाला डालता है? वह भी धीरे-धीरे राम-राम कहता है। वह भी देख लेता है। जब मालिक गुजरता है मंदिर के पास से, तो वह जोर-जोर से राम राम कहने लगता है। वह राम को नहीं पुकार रहा है, वह मालिक के कानों को समझा रहा है। उसका क्या लेना-देना? उसका प्रयोजन है पैसे से। तनख्वाह मिल जाती है, बात खतम हो गई। कोई राम तो तनख्वाह देते नहीं!
तो पुजारी हैं, पंडित हैं, जीवन भर राम पुकारते रहते हैं। न तो जीभ पर छाले पड़ते हैं, न आंख में झांई पड़ती... व्यवसाय है!
पंडित भी जीवन भर चिल्ला-चिल्ला कर व्यर्थ ही चिल्लाता रहता है। वह पैसे ले लेता है, निपटारा हो गया। और जिसके लिए चिल्ला रहा है, उसको क्या खाक मिलेगा कुछ!
क्या तुमने कभी नौकर रखा है अपनी पत्नी के पास जाकर प्रेम प्रकट करने को? पैसा हो, तो रख लेना चाहिए एक मुनीम। वह जाए, पत्नी के सामने हाथ जोड़ कर और प्रार्थना और प्रेम प्रकट कर आए, और तुम्हारी झंझट बच जाए!
किसी दिन धनपति रखेंगे। क्योंकि यह भी उपद्रव मालूम पड़ता है। और जो नौकर से निपट जाए काम, उसे खुद करने में क्या सार है? इतनी देर में तुम हजार दूसरे काम कर सकते हो।
लेकिन इसमें तुम्हें हंसी आती है पत्नी के पास नौकर भेजने में, लेकिन परमात्मा के पास भेजने में? तो तुमने परमात्मा को पत्नी से भी गया-बीता समझा? प्रेम कहीं नौकर को भेज सकता है? प्रेम तो स्वयं जाएगा। प्रेम कहीं नौकर से कहेगा कि तू पुकार, मेरा काम तू निपटा दे, मैं जरा दूसरे जरूरी काम में उलझा हूं? प्रेम सब काम छोड़ देगा और परमात्मा को पुकारेगा।
यह तीसरी दशा है आदमी की, जब संदेह गिर जाता है। और कबीर यद्यपि सुशिक्षित नहीं हैं, लेकिन बड़े तर्कनिष्ठ हैं। कबीर के तर्क का क्या कहना! उन्होंने किसी विश्वविद्यालय में तर्क नहीं पढ़ा है। विश्वविद्यालय में पढ़ने से तो तर्क में एक तरह की सूक्ष्मता भी आ जाती है, कबीर का तर्क तो जैसे सिर पर कोई सीधा डंडा मार दे, वैसा तर्क है। मगर तर्क बड़ा प्रगाढ़ है। सुबह-सुबह मस्जिद में कोई अजान पढ़ रहा है और कबीर कहते हैं, क्या बहरा हुआ है खुदा? क्या तेरा खुदा बहरा हो गया है, जो इतनी जोर से चिल्ला रहा है? हृदय की गूंज सुनी जाती है। इतनी जोर से चिल्लाने की क्या जरूरत? और मीनार पर चढ़ कर चिल्लाने की क्या जरूरत?
बहुत तर्कनिष्ठ हैं। संदेह किया होगा खूब! अब संदेह से पीड़ित हो गए हैं। ध्यान रखना, संदेह ऐसा है, जैसे हाथ में कोई अंगारा रख ले। जलाता है खुद को, घाव कर देता है। जब समझ में आता है, तब पता चलता है कि संदेह से तुम

परमात्मा को तो न मिटा पाए, अपने को मिटा दिए। संदेह से तुम यह तो सिद्ध न कर पाए कि परमात्मा नहीं है, सिर्फ इतना ही सिद्ध हुआ कि तुम्हारा जीवन व्यर्थ गया।
परमात्मा है क्या?
तुम्हारे जीवन की मूल्यवत्ता है।
परमात्मा का अर्थ क्या है?
उसका इतना ही अर्थ है कि तुम्हारे जीवन में अर्थ है। और तो कोई अर्थ नहीं है। परमात्मा का इतना ही अर्थ है कि तुम्हारा जीवन यूं ही नहीं है, संयोग नहीं है; एक संयोजन, एक संगीत है। तुम्हारा जीवन ऐसे ही हो गया और समाप्त हो जाएगा ऐसा नहीं--सकारण है, योजना है, पीछे कोई हाथ है।
जैसे किसी चित्रकार ने किसी चित्र को बनाया हो, ऐसा है तुम्हारा जीवन--कोई सजीव हाथ, कोई चेतना! ऐसा नहीं है कि हवा का झोंका आया और रेत पर चिन्ह बन गए। ऐसा नहीं है तुम्हारा जीवन। एक दुर्घटना मात्र नहीं है, संयोग मात्र नहीं है। एक सुनियोजित इशारा है पीछे। ऐसा नहीं है, कि बंदर बैठ गया टाइपरायटर पर और उसने ठोक दिया और कुछ शब्द आ गए! ऐसा नहीं है। ऐसा है, जैसे किसी कवि ने गीत को गाया। अब लाख बंदर को तुम बिठाए रखो लाखों साल तक और अच्छे से अच्छा टाइपरायटर दे दो, और बंदर ठोकता रहे; क्या तुम सोचते हो कभी गीतांजलि संयोगवशात पैदा हो जाएगी ठोकते-ठोकते?
जो लोग कहते हैं, ईश्वर नहीं है, वे यही कह रहे हैं कि अगर बंदर को भी समुचित समय दिया जाए, अच्छा टाइपरायटर दिया जाए और वह बैठा-बैठा ठोकता रहे--क्योंकि वह ठोकता ही रहेगा, बंदर बैठ नहीं सकता खाली! बस इतना उसको पता चल जाए, कि इसे ठोकने से कागज सरकता है, कुछ-कुछ अक्षर बनते हैं, तो वह ठोकता ही रहेगा।
क्या तुम सोचते हो कभी गीतांजलि पैदा हो जाएगी? या जीसस का सरमन आन द माऊंट, या कृष्ण की गीता? असंभव! कितने ही संयोग होते रहें!
एक चैतन्य चाहिए। ईश्वर को इनकार जब तुम करते हो तो तुम यह कह रहे हो,
कि तुम्हारा जीवन एक व्यर्थता है। इसे तुम कितनी देर झेल पाओगे? तुम व्यर्थ अपने को मान कर कैसे जी पाओगे? तुम्हारा अर्थ खो जाएगा तो तुम्हारे रहने का कारण खो जाएगा, तुम्हारे होने का कारण खो जाएगा। तब तुम घसीटोगे। तब तुम सिर्फ मौत की प्रतीक्षा करोगे, कि कब आ जाए और छुटकारा हो जाए। जिनके जीवन में परमात्मा नहीं, उनके जीवन में मौत के अतिरिक्त और क्या हो सकता है। और मौत भी कोई आशा करने जैसी बात है? प्रतीक्षा करने जैसी?
कबीर ने किया है संदेह। संदेह से जले हैं। गिर गया संदेह। अब एक नये जीवन का सूत्रपात हुआ है।
आंखरिया झांई पड़ी...
अब प्रतीक्षा शुरू हुई है। प्रतीक्षा तभी शुरू होती है, जब श्रद्धा शुरू हो। कोई आने को है--कोई अतिथि। और तुम आतिथेय बनने को है, तुम द्वार खोल कर बैठे हो।
"आंखरिया झांई पड़ी पंथ निहार निहार"
अब तुम राह देख रहे हो। अब आने वाले पर ही सब निर्भर है। अगर वह आएगा,
तो ही तुम्हारे जीवन में अर्थ गूंजेगा। अगर वह आएगा तो ही तुम्हारे जीवन की वीणा बजेगी। अगर वह आएगा तो ही तुम नाचोगे। अगर वह आएगा तो ही कुछ सार है। अगर वह न आया तो सब व्यर्थ है, सब असार है। हुए, न हुए बराबर है। अगर वह न आया तो तुम मिट्टी हो, अगर वह आया तो तुम स्वर्ण हो जाओगे।
उसके पद-चिह्न, उसकी पदचाप, उसकी द्वार पर दस्तक!
"आंखरिया झांई पड़ी पंथ निहार निहार"
कोई भक्त ही राह देखता है।
और फर्क यहां समझ लेना। योगी तो खोजने निकल जाता है, भक्त राह देखता है। यह फर्क है। योगी तो खोज में निकल जाता है, कि परमात्मा को खोजना है। तो हिमालय जाता है, साधता है, यह क्रिया, वह क्रिया--हजार उपाय करता है, साधन करता है।

भक्त क्या करे? क्योंकि भक्त कहता है, मुझे पता ही नहीं कि तू कैसे सधेगा? तेरा ही मुझे पता नहीं। तू किस बात से राजी होगा, यह मैं कैसे जानूं? क्योंकि तेरा मुझे कुछ पता नहीं।
मेहमान पता हो, तो तुम उसके लिए बिस्तर लगा रखते हो, गरम पानी कर रखते हो, भोजन बना रखते हो, क्योंकि तुम्हें पता है, कौन मेहमान है; उसकी क्या पसंद है, क्या नापसंद है!
मैं एक ऐसे मेहमान को खोजने में लगा हूं, भक्त कहता है, जिससे कभी मेरा मिलना तो हुआ नहीं। मैं कैसे करूं? क्या तैयारी करूं?
कबीर कहते हैं, आंख बंद करूं? नाक रूंधू? शीर्षासन करूं? पता नहीं ये तुझे राजनी पड़ेंगे, न पड़ेंगे! तो भक्त कहता है, मैं तो इतना ही कर सकता हूं कि आंख खोल कर द्वार पर बैठा तेरी प्रतीक्षा करूं।
भक्त की सारी साधना प्रतीक्षा है।
और प्रतीक्षा से बड़ी कोई साधना नहीं है, क्योंकि प्रतीक्षा सबसे कठिन है।
साधना में कुछ तो करने को रहता है। तो तुम व्यस्त रहते हो। माला जप रहे हो, बैठे हो, पूजन कर रहे हो। बैठे हो आसन जमा कर, प्राणायाम कर रहे हो।
कुछ करने को रहता है, मन उलझा रहता है, आलंबन रहता है। मन लगा रहता है।
भक्त सिर्फ प्रतीक्षा करता है।
प्रतीक्षा का अर्थ हैः मन शून्य हो, तो ही प्रतीक्षा हो सकती है।
विचार बीच में न हो; अन्यथा मेहमान आएगा और अगर विचार बीच में रहे, तो तुम देख न पाओगे। तो भक्त निर्विचार होकर प्रतीक्षा करता है। सब हटा देता है विचार। बस, उसकी राह देखता है।
"आंखरिया झांई पड़ी, पंथ निहार निहार"
वह कहता है, आंखें थक गईं, बूढ़ी हो गईं। झांई पड़ गई आंखों में। पलक भी नहीं झप सकता, पता नहीं तू कब आ जाए! कबीर ने कहा है, आंख नहीं झप सकता क्योंकि पता नहीं, वही पल तेरे आने का पल हो; और मैं फिर चूक जाऊं। तो आंखें खोले बैठा हूं।
"पंथ निहार निहार"--
राह पर आंख टिकाए हूं, कि तू आता होगा। कि बस अब तू आता होगा। कि अब मेरी प्रतीक्षा का अंत करीब आता है।
"जीभड़िया छाला पड़ा, राम पुकारि पुकारि।"
और तुझे पुकारता हूं कि शायद तू मेरी आवाज सुन ले।
"इस तन का दीवा करौं"--
तैयार हूं, तेरी राह देख रहा हूं, तू आ भर जाए।
"इस तन का दीवा करौं"--
तो इस शरीर को मैं दीया बना दूंगा।
"बाती मैल्यूं जीव" और अपने प्राणों की बाती लगा दूंगा।
"लोही सीचैं तेल ज्यूं"--
और अपने खून से दीये को भर दूंगा, जैसे तेल से भर दिया हो।
बस, एक ही आशा है। यह सब करने को तैयार हूं।
... "कब मुख दैख्यौं पीव"
बस, कब तेरा चेहरा देख लूं।
"सुखिया सब संसार है, खायै अरु सोवै।
दुखिया दास कबीर है, जागै अरु रोवै।।"
बड़ा अदभुत वचन है!
ऊपर से देखने पर कबीर पागल और दुखिया है, क्योंकि दिन-रात रो रहा है, दिन-रात चिल्ला रहा है। उसकी वही हालत है, जो मजनू की हालत थी लैला के लिए। गांव भर हंसता था मजनू पर। गांव भर को दया भी आती थी, कि यह पागल हो गया है। कितना दुःख भोग रहा है! और ऐसा भी क्या रखा है उस लड़की में। साधारण सी लड़की थी लैला। साधारण से भी साधारण थी। मजनू ने उसे लैला बना दिया।
गांव का सम्राट तक चिंतित हो गया। यह मजनू चिल्लाता फिरता है, लैला- लैला-लैला। यह बड़ी अनूठी कहानी है। सम्राट ने बुलाया मजनू को और कहा, बहुत हो गया। रात नहीं, दिन नहीं, चैन नहीं! न दिन देखता, न रात देखता! ये बारह

लड़कियां खड़ी हैं! उसने महल की सबसे सुंदर लड़कियां खड़ी कर दीं और कहाः इनमें से तू जिसको चाहे चुन ले। इनके मुकाबले लैला कुछ भी नहीं है। इनके पैर की धूल भी नहीं है। मैंने भी तेरी लैला देखी है, साधारण सी सांवली लड़की! इन लड़कियों में से कोई भी चुन ले। ये हीरे जवाहरात हैं।
मजनू ने तो लड़कियों की तरफ देखा ही नहीं। उसने सम्राट से कहाः लैला आपने देखी? नहीं, आप पहचान नहीं पाए। क्योंकि लैला को देखने के लिए मजनू की आंख चाहिए। मेरी आंख से देखो, अगर लैला को देखना हो। और इनको मैं देखता हूं, मुझे तो सिर्फ लैला ही दिखाई पड़ती है। कोई स्त्री मुझे दिखाई नहीं पड़ती। और वह राजमहल से लैला को पुकारता हुआ चला गया।
खबर मिली मजनू को--क्योंकि लैला का बाप परेशान हो गया। यह जरा अशोभन
हो गया था मामला। वह समृद्ध था और मजनू आवारा था। और यह मामला जरा जरूरत से ज्यादा आगे बढ़ गया। गांव भर में चर्चा थी। विवाह भी वह मजनू के साथ नहीं कर सकता था, क्योंकि उसकी कोटि का न था। और भरोसे योग्य भी नहीं मालूम होता था, कि यह पगला विवाह के योग्य भी है, कि यह सम्हाल भी पाएगा?
यह लैला-लैला चिल्लाना एक बात है, घर बसाना बिल्कुल दूसरी बात है। कविता करना एक बात है, गृहस्थी बनाना बिल्कुल दूसरी बात है। प्रेमी होना एक बात है, पति होना बड़ी मुश्किल बात है। प्रेमी तो कोई भी हो जाता है-- आवारा। क्योंकि कुछ करना नहीं है। तो बाप...
और बाप यानी सोच-विचार करे, हिसाब लगाए, लड़की की चिंता करे। उसने गांव
ही छोड़ दिया।
मजनू को खबर मिली कि वह रात गांव छोड़ कर जा रहा है। वह गांव के बाहर एक वटवृक्ष के नीचे छिप कर खड़ा हो गया कि आखिरी बार लैला को देख ले। वह काफिला निकल गया, उसने लैला को आखिरी बार देख लिया। लेकिन फिर उसकी गांव आने की इच्छा न रही।
यह कहानी बड़ी अनूठी है। फिर वह कभी गांव वापस न आया। और कहानी यह कहती
है, कि वह उसी वृक्ष के नीचे खड़ा रहा, कि कभी तो लैला वापस लौटेगी। और वह लैला-लैला पुकारता रहा। धीरे-धीरे ऐसा हुआ, कि उसका शरीर वृक्ष से जुड़ गया। उसी जगह टिके-टिके पीठ और वृक्ष की छाल एक हो गए। उसी जगह टिके-टिके वह वृक्ष के साथ एक हो गया।
वषों बाद लैला लौटी उसे खोजती। तो गांव में उसने पूछा; उन्होंने कहा
कि जब से तू गई है, वह एक झाड़ के नीचे खड़ा रहा है। और अब तो उसका पता भी नहीं चलता। बस, कभी-कभी रात के सन्नाटे में उस वृक्ष से "लैला" की आवाज उठती है। क्योंकि वह मजनू वृक्ष के साथ इतना एक हो गया कि अब वह वृक्ष भी लैला-लैला चिल्लाने लगा।
लैला उसे खोजने आई, उसने सब तरफ देखा, मजनू कहीं दिखाई नहीं पड़ता, लेकिन "लैला" की आवाज गूंजती है!
भक्त भगवान के लिए वैसा ही पागल हो जाता है, जैसा प्रेमी प्रेयसी के लिए पागल हो जाता है। और प्रेयसी तो कहीं होगी, आवाज भी पहुंचाई जा सकती है; परमात्मा कहां है, यह कुछ पता नहीं। फिर भी चिल्लाता है कि शायद सुन ले।
जीभड़िया छाला पड़ा, राम पुकारि पुकारि।
इस तन का दीवा करौं, बाती मैल्यूं जीव।
लोही सीचौं तेल ज्यूं, कब मुख दैख्यौं पीव।।
सुखिया सब संसार है--
और ऐसा भक्त बड़ा दुखी दिखाई पड़ता है। सदा उसकी आंखों में विरह और सदा उसकी आंखों में आंसू!
रामकृष्ण के साथ ऐसा हो जाता था। उनको रास्ते से लेकर निकलना मुश्किल
हो जाता था। क्योंकि कोई कह दे, "जय राम जी।" और वे वहीं खड़े हो गए! वहीं भटक गए बीच रास्ते पर। राम की स्मृति आ गई। आंखों में आंसू बहने लगे। हाथ-पैर अकड़ जाएं, जैसे गहरी मूर्छा में चले गए। वहीं गिर पड़े।
तो भक्त बड़े डरते थे, कि कहीं उनको ले जाना हो तो बड़ा इंतजाम करना पड़ता था। क्योंकि कौन जाने, कौन क्या कह रहा है?

एक बार कहीं से लेकर भक्त उनको निकलते थे, घर के अंदर किसी झोपड़े में कोई बात कर रहा था। और किसी ने भगवान का नाम ले लिया बातचीत में। रामकृष्ण वहीं गिर पड़े। छह घंटे तक बेहोश रहे।
किसी विवाह में निमंत्रण दे दिया भक्तों ने, कि आप जरूर आएं।
रामकृष्ण के शिष्यों ने तो कहा कि मत उपद्रव करो, क्योंकि पता नहीं क्या हो जाए। कोई कुछ कह दे! नहीं माने, रामकृष्ण गए। वह सब उपद्रव हो गया वहां। किसी ने नाम ले लिया परमात्मा का। और इस मुल्क में तो नाम ही नाम हैं।
आदमियों के नाम सभी परमात्मा के नाम हैं। एक हजार नाम हैं परमात्मा के विष्णु-सहस्रनाम में। करीब-करीब सब आदमियों के नाम में कहीं न कहीं परमात्मा है। फोटो लगे हैं, मूर्तियां रखी हैं घर-घर में। और बिना परमात्मा के तो कुछ है ही नहीं।
वह बारात संकट में पड़ गई, वह विवाह दुविधा में पड़ गया, क्योंकि रामकृष्ण बेहोश हो गए। लोग दूल्हे को भूल गए, दुलहन को भूल गए। रामकृष्ण दूल्हा हो गए! वे केंद्र हो गए। तीन दिन तक होश न आया।
तो भक्त तो हमें दुखी दिखाई पड़ेगा। भक्त तो हमें परम दुखी दिखाई पड़ेगा। उससे तो हमें लगेगा, कि संसार के लोग ही सुखी हैं, वे चौथी कोटि के लोग ही सुखी हैं। होटलों में देखो, कैसा हंस रहे हैं, मुसकुरा रहे हैं! रास्ते पर मिलते हैं लोग, एक-दूसरे से पूछते हैं, कैसे हो? वे कहते हैं, बड़े मजे में हैं। सब मजे में हैं, सब कुशल हैं। हंस रहे हैं, आनंद ले रहे हैं, मजाक कर रहे हैं, प्रफुल्लित दिखाई पड़ते हैं। सारा जगत सुखिया मालूम पड़ता है।
कबीर कहते हैंः "सुखिया सब संसार है, खायै अरु सोवै।"
बस, लोग खा-पी लेते हैं, सो जाते हैं। बड़े सुखी मालूम पड़ते हैं। कोई दुख नहीं उनके जीवन में।
दुख तो वरदान है। ऐसा दुख, जैसे दुख से कबीर दुखी हुए, वह तो परम आशीर्वाद है। क्योंकि उस दुख के बाद ही परम सुख की संभावना है। उस दुख से ही द्वार खुलता है आनंद का।
तुम सोए रहोगे, उठोगे, खा लोगे, पी लोगे; तुम्हारी हंसी, तुम्हारी खुशी
सब छिछली है। उसमें कोई गहराई नहीं है। वह सब बहाना है समय गुजारने का, उससे ज्यादा नहीं। ऊपर से तुम सुखिया दिखाई पड़ते हो, सुखिया तुम हो नहीं।
तुम ही असली दुखिया हो।
और कबीर ऊपर से दुखिया दिखाई पड़ते हैं, पर कबीर ही असली सुखिया हैं।
उनके भीतर ही सुख का बीज अंकुरित हो रहा है।
"सुखिया सब संसार है, खायै अरु सोवै।
दुखिया दास कबीर है, जागै अरु रोवै।"
उनका काम है संसारियों का, कि खा लें और सो जाएं।
और भक्त का काम हैः जागे और रोए। जागे--अपलक! पलक भी न झपे, क्योंकि पता नहीं प्रियतम कब आ जाए! कौन घड़ी आए! कोई पहले से खबर भी तो नहीं आती।
परमात्मा अतिथि है। हमने सबसे पहले परमात्मा के लिए अतिथि शब्द का प्रयोग किया। फिर दूसरे मेहमानों के लिए अतिथि शब्द का प्रयोग किया।
अतिथि शब्द बड़ा मूल्यवान है। इसका मतलब है, जो बिना तिथि बतलाए आ जाए।
इसलिए अंग्रेजी में गेस्ट है, उर्दू में मेहमान है, लेकिन वह मजा नहीं।
अतिथि तो बात ही अलग है। अतिथि का मतलब है, बिना तिथि बतलाए जो आ जाए।
तो आजकल तुम्हारे घर में जो अतिथि आते हैं टेलीग्राम करके, वे अतिथि न रहे। भाषा के हिसाब से वे अतिथि नहीं हैं; मेहमान होंगे। जब टेलीग्राम ही कर दिया तो अतिथि कैसे रहे? बता दिया कि कल फलानी ट्रेन से आ रहा हूं। बात ही खतम हो गई।
परमात्मा लेकिन अभी भी अतिथि है। न कोई टेलीग्राम आता, न कोई संदेशवाहक आता, न कोई डाकिया आता और कहता कि बस आ रहा है। जब भी आता है, अचानक! अनायास! तुम्हें खबर भी न थी, कि यह घड़ी वह चुनेगा। और अचानक द्वार पर खड़ा हो जाता है। सब बंद द्वार खुल जाते हैं। सब जीवन का अंधकार खो जाता है। अचानक सुबह हो जाती है।
कबीर कहते हैं; जैसे हजार-हजार सूरज एक साथ उग जाएं।

"दुखिया दास कबीर है, जागै अरु रोवै।"
जागता है, रोता है। जागता है, क्योंकि प्रतीक्षा करनी है, सो नहीं जाना है। रोता है, क्योंकि रोने के अतिरिक्त और क्या किया जा सकता है? इसे थोड़ा समझ लेना।
योगी बहुत कुछ कर सकता है, भक्त सिर्फ रो सकता है। उसके आंसू ही उसका योग हैं। उसका विरह और उसकी पीड़ा ही उसकी प्रार्थना है। जार-जार उसका रोना, उसके हृदय का उसकी आंखों में भर जाना, उसकी आंखों से उसके हृदय का झर जाना ही उसकी एकमात्र साधना है। वही प्रार्थना, वही पूजा, वही अर्चना है। रामकृष्ण पूजा करते थे। पुजारी थे दक्षिणेश्वर में। उनको पुजारी रख
कर बड़ी भूल हो गई। क्योंकि वे ठीक पुजारी थे, और ठीक पुजारी की मंदिरों में क्या जरूरत? मंदिर तो नौकर-चाकर चाहते हैं, पेशेवर पुजारी चाहते हैं। वे पुजारी थे। पेशेवर नहीं थे, वही अड़चन हो गई।
जब उनको रख लिया था, तब तो किसी को अंदाज न था कि कितना बड़ा आविर्भाव होने वाला है इस आदमी में। रख कर बड़ी झंझट हो गई। जिसने रखा था उनको दक्षिणेश्वर के मंदिर में, वह रानी रासमणि थी। बड़ी धनाढ्य महिला थी। रानी का उसे पद था, लेकिन शूद्र थी। इसलिए कोई ब्राह्मण मंदिर में पुजारी बनने को राजी न था। सिर्फ रामकृष्ण राजी हो गए। भक्त को क्या शूद्र, क्या ब्राह्मण! और भगवान भी कहीं शूद्र और ब्राह्मण के अलग होते हैं! और मंदिर भी कहीं शूद्र और ब्राह्मण का होता है! मंदिर भगवान का। कोई ब्राह्मण राजी न था। क्षुद्रतम ब्राह्मण राजी न थे। ऐसे ब्राह्मण भी राजी न थे, जो मरघट में मुर्दो के कपड़े भी स्वीकार कर लेते हैं, वे भी राजी न थे। शूद्र का मंदिर! उसमें कौन पूजा करेगा? कौन भ्रष्ट होगा?
इसलिए रामकृष्ण जब राजी हो गए तो रानी रासमणि ने स्वीकार कर लिया। कुछ ढंग के तो नहीं मालूम पड़ते थे। कुछ खोए-खोए लगते थे। आंखें कहीं और थीं। बात यहां करते, चित्त कहीं और था। मगर कोई मिलता नहीं था। सोचा, थोड़ा पगला है, जैसा है, काम चलेगा। मंदिर बिना पुजारी के तो हो नहीं सकता।
फिर रानी रासमणि खुद पूजा नहीं कर सकती थी, शूद्र थी। तो रामकृष्ण पुजारी हो गए। कुल चौदह रुपये महीने उनकी तनख्वाह थी, लेकिन अड़चन शुरू हो गई, ट्रस्टी मुश्किल में पड़ गए। जल्दी ही ट्रस्टियों को बैठक बुलानी पड़ी, कि यह तो भूल कर ली, इससे तो खाली मंदिर बेहतर!
क्योंकि कभी तो पूजा दिन भर चलती और कभी दो मिनट में पूरी हो जाती! कभी मिनट नहीं लगता, और कभी पूजा होती ही नहीं! कभी दिन बीत जाते और रामकृष्ण का कोई पता ही नहीं! और कभी-कभी दिन भर! सुबह से शुरू होती तो रात हो जाती है, घंटा बजता ही रहता, वे नाचते रहते, पूजा ही करते रहते!
रामकृष्ण से कहाः यह क्या मामला है? उन्होंने कहाः पूजा भी कोई नियम थोड़े ही है! कोई व्यवस्था से पूजा होती है। पूजा प्रेम है। जब आता है, आता है। यह तो हवा का झोंका है; आया, आया। लाने का क्या उपाय है? जब आ जाता है, जितनी देर टिकता है, टिकता है। हटाने का भी क्या उपाय है? कोई घड़ी से चल सकती है पूजा कि घंटा हो गया! पुरोहित, व्यवसायी पुरोहित घंटे से चलता है, घड़ी से चलता है, हृदय से तो नहीं।
रामकृष्ण कहते, जब आती है तो आती है। नहीं आती, नहीं आती।
फिर तो और अड़चन आनी शुरू हुई। इस तक के लिए भी वे राजी हो गए, क्योंकि कोई दूसरा ब्राह्मण मिलता नहीं था। कम से कम कभी-कभी तो होती है! और फिर यह आदमी इकट्ठा भी कर लेता है। एक दिन इतनी कर देता है कि समझो सप्ताह भर न भी करे तो चलेगा।
लेकिन फिर अड़चन हुई, क्योंकि पता चला कि यह जो भोग लगाता है, पहले खुद अपने को लगा लेता है। पहले मिठाई खुद चख लेता है, फिर प्रतिमा को रख देता है। यह तो बड़ा जघन्य पाप है। परमात्मा को जूठा भोजन चढ़ाना! पहले परमात्मा को चढ़ाओ, फिर अपने को ले सकते हो।
रामकृष्ण ने कहाः सम्हालो तुम्हारी नौकरी। हम से न होगी। मुझे पता है, मुझे प्रेम के शास्त्र का पता है। मेरी मां मेरे लिए जब भी कुछ देती थी तो पहले चखकर देती थी। मेरी मां तक को इतना पता है, तो क्या मुझे कुछ पता नहीं? बिना चखे मैं नहीं दे सकता। पता नहीं देने योग्य हो भी, या न हो? बिना

चखे पक्का क्या है, कि ये देने योग्य था? भगवान को दे रहा हूं, चखकर ही दूंगा।
दुनिया में ऐसा पुजारी न तो पहले हुआ, न फिर पीछे हुआ। यही पुजारी है लेकिन। यह जो धुन है...
और रामकृष्ण जब पूजा करते तो रोते। रोना ही पूजा है। भक्त कुछ जानता नहीं।
रामकृष्ण ने अपने शिष्यों को कहा है, क्या करोगे तुम साधना? जब छोटा बच्चा जोर से रोता है, तो मां भागी चली जाती है। बस, तुम रोना सीख लो। जब तुम रोओगे, वह भागा चला आएगा। न आए तो समझना, कि रोना अभी पूरा नहीं हुआ। अभी तुम ऐसे ऊपर-ऊपर से रो रहे हो। अभी तुम्हारे प्राण का संयोग नहीं मिला। अभी तुम रोना ही नहीं हो गए हो। रुदन तुम्हारी आत्मा नहीं बना है। छोटा बच्चा भी जानता है बिना सिखाए। कहीं योग सीखने जाता है छोटा बच्चा, कि जब मां को बुलाना है तो क्या करना? चीखता है, चिल्लाता है, रोता है, आंसू बहने लगते हैं। मां भागी चली आती है। हजार काम छोड़ कर चली आती है। परमात्मा को होंगे हजार काम, रामकृष्ण कहते, तुम रोओ भर, उसको आना ही पड़ेगा।
कुछ और करने की भक्त को जरूरत नहीं। भक्ति कठिन है और सरल भी। कठिन इसलिए कि रोने को तुम साध तो नहीं सकते। आएगा तो आएगा, कठिन इसलिए। सरल इसलिए कि सिर्फ रोने से सब हो जाता है। पतंजलि के योगशास्त्र की जरूरत नहीं। बस, आंसुओं का शास्त्र तुम समझ लो, सब हो जाता है।
"सुखिया सब संसार है, खायै अरु सोवै।
दुखिया दास कबीर है, जागे अरु रोवै।।
नैन तो झरि लाइया, रहंट बहै निसुवार।"
जैसे कुएं पर रहट चलती रहती है दिन-रात, पानी बहता रहता है, ऐसी आंखों
से झड़ी लगी है।
"पपिहा ज्यों फिउ पिउ रटै, पिया मिलन की आस।"
ऐसे ही मैं भी पागल रटता रहता हूं--"पिया-पिया।" जैसे पपीहा रटता रहता है, और प्यारे के मिलने की आस लगी रहती है।
"कबीरा वैद बुलाइया"...
शायद घर के लोगों ने, शायद मित्रजनों ने, शायद प्रियजनों ने वैद्य को बुला लिया ऐसा दुखी देख कर, कि क्यों रोता है यह आदमी? क्या हो गया इसे? क्या बीमारी है? क्या तकलीफ है इसकी?
"कबीरा वैद बुलाइया, पकरि के देखो बांहि।"
तो वैद्य ने नाड़ी देखी।
"वैद न वेदन जानई, करक कलेजे मांहि।"
यह बेचारा वैद्य क्या समझेगा, कि बीमारी हृदय की है! यह जो पीड़ा है, हृदय की है, इसका शरीर से कुछ लेना-देना नहीं। नाड़ी की जांच से यह पकड़ में न आएगी।
मगर इस "वैद्य" शब्द को थोड़ा गौर से समझ लो। यह बड़ा कीमती शब्द है।
हमारे पास कुछ शब्द हैं--वेद, विद्या, विद्वान, वैद्य, वेदना; ये सब एक
ही धातु से बने हैं। वैद्य का मतलब हैः ज्ञानी। असल में भारतीयों ने आयुर्वेद को पांचवां वेद कहा है। इसलिए तो "वेद", "आयुर्वेद"; उसको जो जानने वाला है, वह वैद्य। वैद्य शब्द डाक्टर से ज्यादा कीमती है। डाक्टर का तो मतलब होता है, सिर्फ पंडित। जो डॉक्ट्रिन को जानता है, वह डाक्टर। जो सिद्धांत को समझता है, वह डाक्टर।
वैद्य का अर्थ हैः जो न केवल सिद्धांत को समझता है, बल्कि सिद्धांत के प्रयोग को भी; जिसको हम फिजिशियन कहते हैं। न केवल जो चिकित्सा के शास्त्र को जानता है, बल्कि चिकित्सा की विधि को भी। अनुभोक्ता है जो। जो किसी कालेज में सिर्फ प्रोफेसर नहीं है, जो किसी अस्पताल में मरीजों की चिकित्सा भी करता है।
असल में डाक्टर शब्द का प्रयोग सिर्फ होना चाहिए उस डाक्टर के लिए, जो कालेज में पढ़ाता हो चिकित्सा के शास्त्र को; वही डाक्टर है। सभी डाक्टर

नहीं हैं, क्योंकि बाकी तो फिजिशियन हैं, बाकी तो वैद्य हैं। वैद्य शब्द बड़ा कीमती है क्योंकि यह वेद से ही बना है।
तो इस वचन में इसके कई अर्थ हो सकते हैं--"कबीरा वैद बुलाइया" इसका सीधा तो अर्थ यह है, कि किसी चिकित्सक को बुलाया, बांह पकड़ी चिकित्सक ने, नाड़ी जांची। लेकिन कबीर मन ही मन हंसे होंगे और सोचा होगा, "वैद न वेदन जानई। " इसको वेदना का कुछ पता नहीं! यह शरीर का ही जानकार है।
"करक कलेजे मांहि"--
वह जो पीड़ा है, वह तो कलेजे में है। उसका इसे कुछ भी पता नहीं।
दूसरा अर्थ, जो और भी गहरा है, वह है...
"कबीरा वैद बुलाइया"--
उसको बुलाया, जो वेद का जानकार है। लेकिन वेद का जानकार भी हृदय की पीड़ा को नहीं जानता। वह भी शास्त्र को समझता है। शास्त्र यानी शरीर; सत्य यानी आत्मा। पीड़ा तो सत्य के लिए है और आत्मा में है; सिद्धांत के लिए नहीं है और शरीर में नहीं है। शास्त्र को समझने से पीड़ा मिटने वाली नहीं है। यह तो प्रेमी से ही मिलन हो जाए तो ही मिटेगी।
तो जो वेद को जानता है, उसे बुलाया उसने भी शब्द पकड़े, सिद्धांत पकड़ा शास्त्र पकड़ा--"पकरी के देखो बांहि"--उसने भी ऊपर-ऊपर जांच की।
"वैद न वेदन जानई।"
यह वेद का जानकार भी वेदना को नहीं जानता।
वेदना शब्द के दो अर्थ हैं। एक अर्थ तो दुख है, और एक अर्थ ज्ञान है।
क्योंकि वह भी वेद से ही बना शब्द है।
संस्कृत एक अर्थ में बड़ी अनूठी भाषा है। उसमें बड़ी गुत्थियों में गुत्थियां हैं और शब्दों के बड़े खेल हैं। वेद से ही बनता है वेदना, वेद से ही बनता है विद्या; विद्, विद्वान, जानना, ज्ञान, ज्ञान का शास्त्र।
क्या संबंध है दोनों में? जब तुम्हें पीड़ा होती है, तभी तुम्हें ज्ञान होता है। पीड़ा और ज्ञान संयुक्त है; जैसे एक ही सिक्के के दो पहलू हों। थोड़ा सोचो, तुम्हारे सिर में दर्द है, तभी तुम्हें सिर का ज्ञान होता है। अगर सिर में दर्द ही न हो, तो सिर का पता ही न चलेगा।
इसलिए स्वस्थ आदमी की परिभाषा आयुर्वेद में--सिर्फ आयुर्वेद में ही स्वस्थ आदमी की परिभाषा है। वह परिभाषा यह है कि जब शरीर का पता न चले। जब पता चले तो बीमारी है। जब ज्ञान हो शरीर का, तो बीमारी है। जब पेट में तकलीफ होती है, पेट का पता चलता है। पैर में कांटा गड़ता है, पैर का पता चलता है। सिर में दर्द होता है, सिर का पता चलता है।
जहां पीड़ा होती है, जहां वेदना होती है, वहीं ज्ञान होता है, वहीं बोध होता है। जब शरीर में कोई पीड़ा नहीं होती तो शरीर का कोई पता नहीं चलता। स्वस्थ का वही अर्थ है, जो विदेह का। जब देह का कोई पता न चले, तो आदमी स्वस्थ हो गया; स्वयं-स्थित हो गया। अब देह का पता भी कैसे चलेगा?
स्वस्थ शब्द भी बड़ा कीमती है। उसका मतलब है स्वयं में स्थित हो जाना, स्वयं में ठहर जाना। जब भी पीड़ा होती है, तब तुम स्वयं में नहीं ठहर सकते। तब पीड़ा तुम्हें खींचती है अपनी तरफ और ज्ञान पीड़ा की तरफ भागता है। क्योंकि पीड़ा को मिटाना है, तो जानना जरूरी है।
ज्ञान और दुख संयुक्त हैं। इसलिए जब कोई व्यक्ति परम आनंद को उपलब्ध होता है, तो आनंद का ज्ञान नहीं होता। क्योंकि आनंद का कोई ज्ञान नहीं हो सकता। केवल दुख का ही ज्ञान हो सकता है। बीमारी का ज्ञान हो सकता है, स्वास्थ्य का कोई ज्ञान नहीं होता। स्वास्थ्य तुम स्वयं हो, बीमारी विजातीय है, वह अलग है, उसका ज्ञान होता है। आनंद तुम स्वयं हो। कैसे ज्ञान होगा? कौन है जानने वाला? कौन किसको जानेगा? एक ही बचा, वही आनंद है, वही जानने वाला है, भेद न रहा। दुख अलग है, दुख स्वभाव नहीं है। इसलिए दुख का ज्ञान होता है।
"वेद न वेदन जानई, करक कलेजे मांहि।"
और यहां एक दूसरी ही पीड़ा चल रही है, वह है हृदय की पीड़ा। और हृदय की पीड़ा से तुम यह मत समझ लेना, जिसको डाक्टर हृदय की बीमारी कहते हैं: हार्ट

डीसिज, वह मत समझ लेना। कोई कबीर को हार्ट फेल का डर नहीं है और न कोई हार्ट अटैक हुआ है।
हृदय एक तो शरीर का हिस्सा है, जिसको चिकित्सक जानते हैं। और हृदय का गहरा हिस्सा तुम्हारी आत्मा का हिस्सा है, जिसे चिकित्सक नहीं जानते। चिकित्सक तो केवल फेफड़ों को ही जानते हैं, यंत्र को जानते हैं। उनके भीतर छिपा हुआ जो हृदय है, उसे नहीं जानते। इसलिए कोई सर्जन तुमसे राजी नहीं होगा, जब तुम कहते हो, कि मुझे बड़ी प्रेम की पीड़ा होती है और हृदय पर हाथ रख लेते हो। वह थोड़ा हैरान होगा, कि हृदय पर हाथ किसलिए रख रहे हो? क्योंकि वहां से प्रेम का क्या लेना-देना? वहां तो केवल फेफड़े हैं। खून को चलाने की व्यवस्था और यंत्र है। वहां हाथ किसलिए रख रहे हो?
लेकिन सारी दुनिया में, समस्त जातियों में, समस्त कालों में जब भी किसी को प्रेम की पीड़ा उठती है तो वह अपना हाथ हृदय पर रखता है, कहीं और नहीं। इस फेफड़े के पीछे छिपा हृदय है। वह सूक्ष्म है, वह अदृश्य है।
"... करक कलेजे मांहि।"
उस कलेजे में पीड़ा है। वैद्य उसे न जान सकेगा और न वेद का ज्ञाता; चारों वेदों का जानकार उसे न जान सकेगा। शास्त्र उसे नहीं पहचान सकता।
शास्त्र की पहुंच शरीर तक है, खोल तक है, आवरण तक है, अंतस तक नहीं है।
और कबीर रो रहे हैं, कबीर पीड़ित हो रहे हैं, कबीर परेशान हो रहे हैं। ऐसा कबीर के जीवन में घटा या नहीं घटा; यह केवल कविता होगी--सूचक, सांकेतिक; लेकिन नानक के जीवन में यथार्थतः ऐसा घटा।
नानक युवा थे और इस प्रेम के पागलपन ने उन्हें पकड़ लिया। और वे दिन-रात रोते। एक रात ऐसा हुआ; भादों की रात होगी। आकाश में बादल घिरे थे; चारों तरफ बिजली चमकती थी। और नानक गीत गाते रहे उस पी के मिलन का। नानक परमात्मा की स्तुति में डूबे रहे।
आधी रात बीती, और भी रात बीतनी लगी, मां चिंतित हो गई। नानक जवान थे; होंगे कोई सोलह, सतरह-अठारह साल के। मां ने आकर, जब आधी रात बीत गई तो कहाः नानक, अब चुप हो जा, अब बहुत हो गया। अब थोड़ा सो ले। शरीर को सोने की भी जरूरत है।
नानक, क्षण भर को मां ने कहा तो रुक गए, लेकिन फिर बोले कि नहीं। तो मां
ने कहाः इतने जल्दी क्यों बदल गया? नानक ने कहा कि सुन, आधी रात--और एक पपीहा पिऊ-पिऊ की पुकार किए जा रहा है। नानक ने कहाः जब तक यह पपीहा चुप नहीं होता, तब तक मैं कैसे चुप हो जाऊं? और इसकी प्रेयसी तो बहुत दूर न होगी, यहीं कहीं पास किसी वृक्ष में छिपी होगी। और मेरा प्रेमी तो बहुत दूर है। मुझे रोको मत।
कबीर ठीक कहते हैंः
आंखरिया झांई पड़ी, पंथ निहार निहार।
जीभड़िया छाला पड़ा, राम पुकारि पुकारि।
इस तन का दीवा करौं, बाती मैल्यूं जीव।
लोही सीचौं तेल ज्यूं, कब मुख देख्यौं पीव।।
रात भर नानक गाते रहे। स्वभावतः अस्वस्थ हो गए। दूसरे दिन चिकित्सक बुलाया गया--यह वास्तविक घटना है। कबीर ने तो शायद प्रतीक में कही होगी--इस लड़के को कुछ हो गया। बाप थोड़े चिंतित हुए। और नानक के पिता एक साधारण गृहस्थ आदमी थे, चौथी कोटि के; जिनको यह सब व्यर्थ की बकवास थी। कहां का परमात्मा! किस को पाना? क्या करना? यह सब दिमाग की खराबी है।
चिकित्सक को बुलाया। पर यही घटना घटी। चिकित्सक करेगा भी क्या बेचारा? कलेजे को जांचने का कोई उपाय भी तो नहीं है। तो उसने भी नानक की नब्ज पकड़ी और जांच की। और नानक हंसने लगे। और उन्होंने कहा कि वहां मेरी बीमारी नहीं है। मेरी बीमारी यहां हृदय में है।
लेकिन लगता है, वह वैद्य सिफ वैद्य ही न रहा होगा। थोड़े से वेद से भी उसका संबंध रहा होगा। थोड़े भीतर के ज्ञान से भी संबंध रहा होगा। उसने नानक के पिता को कहा, कि मत इसे परेशान करो। और इसकी बीमारी मेरी सीमा के बाहर है। लेकिन किसी ज्ञानी को खोजो जो इसकी बीमारी में काम आ जाए; जो इसके कलेजे को पहचान ले। इतना मैं कहता हूं, कि शरीर इसका रुग्ण नहीं है, लेकिन

भीतर कोई बड़ी गहरी पीड़ा है। और यह भी तुमसे कहता हूं कि यह पीड़ा सौभाग्य है। मैं कुछ नहीं कर सकता। मैं साधारण वैद्य हूं। इसे किसी असली वैद्य की जरूरत है। धन्यभाग हैं उस व्यक्ति के, जो इस दशा में आ जाए, जब वह कह सकेः "सुखिया सब संसार है, खायै अरु सोवै।
दुखिया दास कबीर है, जागै अरु रोवै।"
क्योंकि वहीं से एक-एक कदम चल कर वह मंदिर पास आता है।

आज इतना ही।

मेरा मुझमें कुछ नहीं
चौथा प्रवचन

गुरु-शिष्य दो किनारे

पहला प्रश्नः सबके इतने सारे प्रश्न पाकर क्या आप धर्म-संकट में नहीं पड़ते कि इसका जवाब दूं, या उसका, या किसका?

प्रश्न तीन तरह के पूछे जाते हैं।
एक तो, तुम्हारी मूढ़ता से जन्मते हैं। उनका मैं कभी उत्तर नहीं देता। क्योंकि तुम्हारी मूढ़ता को उतना सहारा देना भी नुकसान, तुम्हें हानि पहुंचाएगा। तुम्हारी मूढ़ता को उतनी स्वीकृति भी देना--कि मूढ़ता से उठे प्रश्न का भी कोई अर्थ होता है, घातक है।
मूढ़ता से उठे प्रश्न इस भांति पूछे जाते हैं कि जैसे पूछने वाला मुझ
पर कोई पूछ कर एहसान कर रहा हो। उसका स्वर साफ होता है। मूढ़ता से भरे प्रश्न असंबंधित होते हैं। न कबीर से कोई नाता, न मुझ से कोई नाता, न तुमसे कोई नाता।
जैसे आज ही एक प्रश्न है, कि यदि कम्युनिज्म आ जाए, तो आपके संन्यासी
तो काम कर लेंगे; आपका क्या होगा?
अब इसका न तो कबीर से कुछ लेना-देना है, न तुमसे कुछ लेना-देना है, न मुझसे कुछ लेना-देना है। "यदि" भी कोई प्रश्न होता है? "यदि" से कहीं कोई प्रश्न शुरू होता है? फिर मेरी सारी शिक्षा यही है, कि अभी और यहां जीओ। कल क्या होगा? कल तुम रहोगे, कल मैं रहूंगा। कल जो होगा, उसे हम सामना करेंगे। फिर कम्युनिज्म कल आ जाए, इससे तुम्हारा क्या संबंध है? और मैं किसी मुसीबत में भी पड़ूंगा, तो वह तुम्हारी समस्या नहीं है। तुम्हारे पास अपनी समस्याएं काफी हैं, तुम उन्हें हल कर लो। या कि तुम्हारी समस्याएं चुक गईं, अब तुम मेरी समस्याएं हल करने की कोशिश में लगे हो?
तुम ऐसे ही परेशान हो। मूढ़ता का अर्थ ही यह है, कि उसे पता ही नहीं है,
कि उसके जीवन की समस्याएं हैं, जो हल करनी हैं, कि जीवन उलझन में है, उसे सुलझाना है; कि जीवन अटका है, यात्रा करनी है। वह जमाने भर के प्रश्न पूछेगा, जिनमें कोई तुक नहीं है, जिनमें कोई अर्थ नहीं। वह दूसरों की समस्याएं हल करने चला जाएगा।
मूढ़ता से भरा प्रश्न ऐसा मान कर चलता है कि शायद इसका जवाब दिया नहीं
जा सकता, इसीलिए पूछता है। उन प्रश्नों को मैं छोड़ देता हूं। वे निरर्थक हैं। वे मेरा और तुम्हारा समय खराब करेंगे। उनमें चुनने जैसा कुछ भी नहीं है।
जब से मैंने कहा है कि लोग दस्तखत करके दें, तब से मू.ढ़ता पूर्ण प्रश्नों की संख्या एकदम गिर गई है। इसीलिए मैंने दस्तखत करवाना शुरू किया। क्योंकि उनकी संख्या काफी थी; करीब-करीब पचास प्रतिशत थी। जब से मैंने दस्तखत करवाने को कहा, उनकी संख्या ज्यादा से ज्यादा पांच प्रतिशत रह गई। पैंतालीस प्रतिशत एकदम से गिर गई। क्योंकि मूढ़ भी इतना तो सोचता है, कि यह प्रश्न अपने साथ संबंधित करना ठीक है कि नहीं।
दूसरा बड़ा वर्ग है, उसके भी मैं उत्तर कभी नहीं देता। वे तुम्हारे पांडित्य से आते हैं। न तो मूढ़ का उत्तर देता हूं, न पंडित का।
पांडित्य के प्रश्न इस तरह के होते हैं, कि वेद में ऐसा कहा है, आपने ऐसा क्यों कहा?
वेद ने कुछ ठेका लिया है? मेरे ऊपर कोई वेद की जिम्मेवारी है, कि वेद
ने ऐसा क्यों कहा है? तुम वेद के ऋषियों को कब्रों से उखाड़ो, उनसे पूछो। मैं क्या कह रहा हूं, उससे ज्यादा मेरी किसी के संबंध में कोई जिम्मेवारी नहीं है। और अगर वेद में कुछ कहा है और मैं उससे भिन्न कह रहा हूं, विपरीत कह रहा हूं, तो मैं कोई तालमेल बिठाने को नहीं हूं। मैं कोई समझौता करने को नहीं हूं। तुम अपने वेद को सुधार लो, अगर मेरी बात ठीक लगती हो। अगर मेरी बात ठीक न लगती हो, मुझे छोड़ दो; वेद को पकड़ लो, लेकिन व्यर्थ के प्रश्न मत उठाओ।

पांडित्य के प्रश्न ऐसे होते हैं, जैसे कोई मेरी परीक्षा ले रहा हो। मूढ़ ऐसे पूछता है, जैसे इसका जवाब हो ही नहीं सकता। वह मुझ पर एहसान कर रहा है। पंडित ऐसे पूछता है, जैसे इसका जवाब उसे पहले से मालूम है। वह सिर्फ मुझे एक परीक्षा का मौका दे रहा है। इन दोनों को मैं छोड़ देता हूं।
तब बच रहते हैं, मुश्किल से दस प्रतिशत प्रश्न, जो जिज्ञासा से जन्मते हैं, मुमुक्षा से। जो तुम्हारी जीवन की खोज से आविर्भूत होते हैं। जो तुम्हारी जीवन की समस्या से संबंधित होते हैं। जो प्रामाणिक हैं। जिनको हल करने पर तुम्हारे जीवन का अर्थ निर्भर होगा। जो हल होंगे तो तुम्हारे जीवन का ढंग रूपांतरित होगा। जो तुम्हारी प्यास हैं, भूख हैं; बौद्धिक नहीं हैं, खोपड़ी से नहीं आ रहे हैं। तुम्हारे समग्र अस्तित्व से आविर्भूत हो रहे हैं। जिनके ऊपर तुम्हारी जिंदगी दांव पर लगी है। उनके हल होने पर बहुत कुछ निर्भर है। उनके हल होने पर तुम भी हल हो जाओगे। वे प्रश्न नहीं हैं उन प्रश्नों में तुम खुद हो। वे जीवंत हैं। न तो शास्त्रों से उधार लिए गए हैं, न अहंकार की जड़ता से पैदा हुए हैं।
जब मैं देखता हूं कि प्रश्न प्रामाणिक हैं--इसे देखने में देर नहीं लगती। क्योंकि तुम्हारे प्रश्न में तुम्हारे आंसू छिपे होते हैं। तुम्हारे प्रश्न में तुम्हारी प्यास छिपी होती है। तुम्हारे प्रश्न में तुम्हारे प्राण धड़कते हैं। तुम्हारे प्रश्न में तुम मेरे पास आते हो। न तो तुम्हारे पास कोई उत्तर है पांडित्य का; और न तुमने किसी मूढ़तावश पूछ लिया है। तुमने मुमुक्षा से पूछा है। तुम खोजी हो। तुम यात्रा पर निकले हो। तुम्हारी यात्रा पर मैं तुम्हें थोड़ा साथ दे सकूं, तुम्हारा थोड़ा बोझ कम कर सकूं, तुम्हारे भटकाव को थोड़ा कम कर सकूं, तुम्हें मार्ग पर ले आ सकूं, उन्हीं प्रश्नों के उत्तर देता हूं।
और ये जो प्रश्न हैं, इनके रूप ही भिन्न-भिन्न होते हैं; इनका प्राण एक
ही होता है। अगर बहुत गौर से देखो, तो ये जो तीसरी कोटि के प्रश्न हैं, जिनके मैं उत्तर देता हूं, ये एक ही प्रश्न के विभिन्न ढंग हैं और इनका एक ही उत्तर है। जिस दिन तुम जानोगे, जागोगे, उस दिन तुम पाओगे, तुमने बहुत-बहुत ढंग से एक ही प्रश्न पूछा था; और मैंने बहुत-बहुत ढंग से एक ही उत्तर दिया था।
जैसे ही मुझे उस एक की प्रतिध्वनि मिलती है किसी प्रश्न में, मैं सदा तत्पर हूं उत्तर देने को। इसलिए कोई धर्म-संकट खड़ा नहीं होता। मामला बिल्कुल सीधा-साफ है। गणित बिल्कुल स्पष्ट है। मुझे जरा भी दुविधा नहीं होती। तुम्हारे प्रश्न को हाथ में लेते ही, तुम्हारी पंक्तियों को पढ़ते ही तुम्हारे प्राण वहां उपस्थित हो जाते हैं, कैसे तुमने पूछा है।
झेन कहानी है, कि टोकियो का गवर्नर एक झेन फकीर को मिलने गया। तो उसने अपना नाम लिखा और साथ में लिखा कि टोकियो का गवर्नर। फकीर के पास चिट पहुंची, उसने चिट नीचे फेंक दी और कहा, इस तरह के आदमी को मैं जानता नहीं। और उससे कह दो, वापस लौट जाओ। यहां कोई जगह भी नहीं है, समय भी नहीं है। गवर्नर तो बहुत चकित हुआ। इस फकीर के चरणों में बहुत बार आया है। और
यह फकीर उसे भलीभांति जानता है। आज क्या हो गया? लेकिन तभी उसे समझ आ गई बात। उसने टोकियो का गवर्नर--जो कार्ड पर लिखा था, उसको काट दिया। फिर से कार्ड भेजा।
फकीर ने कहाः अरे, तुम हो? भीतर आ जाओ।
जो शिष्य कार्ड को लाया था, ले गया था दो बार, वह थोड़ा हैरान हुआ। उसने कहा, यह आदमी वही है, यह कार्ड भी वही है। लेकिन उस फकीर ने कहा, सब बदल गया। इस आदमी का ढंग बदल गया। पहले यह आया था--टोकियो का गवर्नर। टोकियो के गवर्नर से फकीर का क्या लेना-देना? यह भीतर भी टोकियो के गवर्नर की तरह ही आता तो मुलाकात व्यर्थ थी, बातचीत असार थी। यह पूछता, हम बोलते, वह कहीं मेल नहीं खा सकता था। फकीर का गवर्नर से क्या लेना-देना? अब यह शुद्ध आदमी की तरह आया है, समझ कर आया है, गवर्नर को बाहर छोड़ कर आया है। अब कुछ मुलाकात हो सकती है, कोई संवाद हो सकता है।
तुम उसी प्रश्न को दुबारा पूछ कर देखना, जो मैंने तुम्हारा उत्तर न दिया हो। और अगर तुमने टोकियो के गवर्नर को छोड़ दिया तो मैं उत्तर दूंगा।

और तुम मुझे धोखा नहीं दे सकते। तुम किसी भी तरह प्रश्न को बनाना, उससे कोई फर्क नहीं पड़ेगा। अगर टोकियो का गवर्नर पीछे है, मैं उत्तर नहीं दूंगा।
जिस दिन तुम सरलता से, सहजता से, समस्या को हल करने की आकांक्षा से, सदभाव से पूछते हो, उस दिन मैं सदा तत्पर हूं। धर्म-संकट कुछ भी नहीं है। चीजें बिल्कुल साफ हैं।
जैसे तुम्हारे चेहरे पर मैं तुम्हारे क्रोध को पढ़ता हूं, तुम्हारी आंखों में तुम्हारे अहंकार को; ऐसे तुम्हारे हस्ताक्षरों में, तुम्हारे शब्दों में, तुम्हारे वचन के विन्यास में, तुम्हारे प्रश्न के बनाने में भी तुम्हें पढ़ता हूं। वह भी तुम्हारा है। तुम उसमें पूरे-पूरे मेरे सामने उपस्थित हो जाते हो।
मैं तुम्हारे प्रश्न नहीं चुनता, तुमको चुनता हूं। और जब तुम्हारे प्रश्नों के उत्तर न दूं, तो तुम विचार करना कि तुम क्यों नहीं चुने गए? तुम जरूर दो में से कोई एक बात पाओगे। या तो मूढ़ता से पूछा था, या पांडित्य से पूछा था; मुमुक्षा नहीं थी। मैं यहां हूं कि तुम्हारा मोक्ष सरल हो जाए। वह तुम्हारी मुमुक्षा के बिना नहीं होगा। मैं तुम्हें मोक्ष की तरफ इशारा तभी कर सकता हूं, जब तुम्हारे प्रश्न ने मुमुक्षा की तरफ आकांक्षा की हो; उससे अन्यथा होने का कोई उपाय नहीं।

दूसरा प्रश्नः मैं तीसरी कोटि का व्यक्ति हूं। मेरी स्थिति हैः खावै अरु रोवै; प्रवचन सुनै अरु रोवै। आप कहते हैं, पूरा संदेह कर लो, तो वह भी आपको देख लेने के बाद होना असंभव नजर आता है और श्रद्धा भी दूषित है। और आप जैसा वैद्य भी विद्यमान है, लेकिन बीमारी कुनकुनी है और आप की चिकित्सा की कड़वी कुनैन भी झेल पाने की स्थिति नहीं। मैं असहाय हूं। न संदेह को बढ़ा सकता हूं, न श्रद्धा को शुद्ध कर सकता हूं; ऐसे में क्या करूं?

ऐसी ही अवस्था है; तुम्हारी ही नहीं, सभी की। तुम्हें दिखाई पड़ रही है, औरों को दिखाई नहीं पड़ रही है। और दिखाई पड़ जाना बहुत कीमती है, बहुमूल्य है।
व्यक्ति अपने को असहाय पा ले, हेल्पलेस--कि कुछ भी किए नहीं होता। जो
भी करता हूं, वही अधूरा रह जाता है। जो भी पैर उठाता हूं, वह भी कहीं नहीं पहुंचता मालूम पड़ता। सब कर लिया है, सब व्यर्थ पाया है। मंजिल नहीं आती। अपना किया हुआ कहीं ले जाएगा, इसका भरोसा भी टूट गया है। ऐसी असहाय दशा की तीव्र पीड़ा तुम्हें अनुभव हो जाए, तो यहीं से भक्त का जन्म होता है। असहाय समझ लेना भक्त होने की शुरुआत है।
भक्ति का अर्थ क्या है?
भक्ति का अर्थ है, परमात्मा! तू करेगा तो ही होगा। मेरे किए नहीं होता। मेरी पूजा भी अधूरी है, मेरी प्रार्थना भी संदिग्ध है, मेरी साधना भी काम-चलाऊ है। मैं जीवन को जुआरी की तरह दांव पर नहीं लगा पाता। मेरी व्यावसायिक बुद्धि सब जगह मौजूद है। मेरा संदेह मेरी श्रद्धा को दूषित कर जाता है।
और संदेह भी पूरा नहीं हो पाता। क्योंकि श्रद्धा की भी छाया पड़ती रहती है। इस असहाय अवस्था को जितने गहरे उतर जाने दो, उतना लाभ होगा।
तुम पूछ रहे होः "मैं क्या करूं?"
मैं तुमसे कहूंगा, कुछ भी मत करो। अब असहाय अनुभव होना शुरू हुए हो; ठीक से असहाय ही हो जाओ। टोटल हेल्पलेसनेस, संपूर्ण असहाय हो जाओ। कह दो कि अब मुझसे किए कुछ भी नहीं होता। अब तेरी जो मर्जी। असहाय अवस्था में ही कोई कह सकता है, "तेरी जो मर्जी।"
जब तक तुम्हें लगता है, मेरे किए कुछ हो सकता है, तब तक तो तुम किए ही जाओगे। तब तक तो थोड़ा न बहुत तुम प्रयास जारी रखोगे। यत्न जारी रखोगे। असहाय अवस्था का अर्थ क्या है?
असहाय अवस्था का इसका अर्थ है, मेरी अपने पर श्रद्धा उठ गई। अब अहंकार
को खड़े होने की जगह न रही। भूमि खिसक गई नीचे से। अहंकार का बल टूट गया।
अहंकार नपुंसक सिद्ध हुआ। क्योंकि जो भी किया व्यर्थ हुआ।

यह बड़ी उपलब्धि है। तुम इसे ऐसे ही मत गंवा देना। असहाय अवस्था को पूरी तरह छा जाने दो। इसी असहाय अवस्था से प्रभु के शरण जाने का भाव उठता है। शरण कोई जाएगा कब? जब तक असहाय नहीं हुआ तब तक शरण जाने का भाव उठता है। शरण कोई जाएगा कब? जब तक असहाय नहीं हुआ, तब तक शरण जाएगा नहीं। जब असहाय हो गया, तभी शरण का बोध उठता है, तब छोड़ने का मन होता है। तुमने अपनी तरफ से काफी चला ली पतवार, नाव कहीं जाती नहीं, बल्कि उलटा तुम देखते हो, गोल-गोल घूमती है।
कभी तुमने नाव चलाई? एक पतवार से चला कर देखना। एक पतवार से अगर नाव चलाओगे, गोल-गोल घूमेगी। वहीं-वहीं चक्कर काटेगी, कहीं जाएगी नहीं। और आदमी जैसी नाव चला रहा है, वह एक पतवार की नाव है। उसमें आदमी अकेला ही चला रहा है, परमात्मा का हाथ नहीं है। परमात्मा को तुमने काट कर अलग कर दिया है। तुम अकेले ही चला रहे हो। वह गोल-गोल घूमती है। एक दुष्चक्र पैदा हो जाता है--वहीं-वहीं। पुनरुक्ति करती है, कहीं जाती नहीं, कहीं यात्रा नहीं होती, कोई मंजिल नहीं आती।
अब इस पतवार को भी रख लो। इससे कोई सहारा नहीं है। इसको भी नाव में रख लो। अब तो तुम पाल खोल दो नाव का। और परमात्मा को कहो, जहां तेरी मर्जी, जहां तेरी हवाएं ले जाएं, अब हम वहीं जाएंगे।
नाव को चलाने के दो ढंग हैंःएक तो पतवार से, और एक पाल से।
रामकृष्ण से कोई पूछता थाः मैं क्या करूं? तो रामकृष्ण ने कहाः तुम कुछ मत करो। तुम काफी कर चुके हो। बहुत उपद्रव हो गया है। अब तुम पाल खोल दो और पतवार रख लो। रामकृष्ण ने कहाः पहले मैंने भी पतवार चला कर देख ली, कहीं नहीं पहुंचा। फिर मैंने पाल खोल दिया और हवाएं नाव को ले जाने लगीं। वे सदा तत्पर हैं तुम्हें ले जाने को। तुम ही राजी नहीं हो। तुम ही आनाकानी करते हो। उसका हाथ बढ़ा हुआ है, तुम थोड़ा हाथ बढ़ाओ। अगर हाथ नहीं बढ़ा सकते हो, तो खड़े रह जाओ। उससे कह दो अब तेरी ही मर्जी। तू ही हाथ बढ़ा। तो भी घटना घटती है। जिस दिन व्यक्ति सब कुछ छोड़ देता है--समर्पण! उसी दिन क्रांति शुरू हो जाती है।
तो दुनिया में दो मार्ग हैं। एक मार्ग है साधक का और एक मार्ग है भक्त का। साधक के मार्ग पर तो संदेह पूर्ण होना चाहिए, ताकि श्रद्धा का जन्म हो जाए। भक्त के मार्ग पर संदेह के पूर्ण होने की भी जरूरत नहीं है, किसी चीज के पूर्ण होने की कोई जरूरत नहीं है। भक्त के मार्ग पर तो असहाय अवस्था की प्रतीति होनी चाहिए। उसी असहाय अवस्था में से श्रद्धा का कमल निकल आता है।
असहाय अवस्था तो बहुत बुरी लगती है। वह कीचड़ जैसी है। लेकिन जब उसमें
से समर्पण का कमल निकलता है, तो कीचड़ और कमल में जमीन आसमान का फर्क है। निकलता कीचड़ से है, कीचड़ जैसा बिल्कुल नहीं है। कीचड़ से बिल्कुल विपरीत है, बिल्कुल भिन्न है। कहां कमल, कहां कीचड़! अगर तुम्हें पता न हो कि कमल कीचड़ से पैदा होता है, तो कमल को देख कर तुम कल्पना भी नहीं कर सकते कि इसका कीचड़ से संबंध हो सकता है।
समर्पण असहाय अवस्था से निकलता है। असहाय अवस्था कीचड़ है। जब तुम कीचड़ में फंसे हो, तब तुम सोच भी नहीं सकते कि इससे कमल के पैदा होने की संभावना है, कि कमल का बीज यहां छिपा है। लेकिन जब कमल निकलता है, तभी तुम जानोगे। असहाय अवस्था से लोगों ने समर्पण को पा लिया।
तो तुम कुछ करो मत; करना छोड़ दो। तुम बहो; तैर लिए बहुत। तैरो मत। नदी
ले जाएगी। नदी जा ही रही है सागर की तरफ। तुम नाहक ही शोरगुल मचाते हो, हाथ पैर तड़फाते हो। नदी उसी परमात्मा की तरफ जा रही है। जीवन उस तरफ बह ही रहा है। अगर तुम अड़चन न डालो तो काफी है। तुम पहुंच जाओगे।
इसे थोड़ा समझ लो।
मेरे देखे परमात्मा और तुम्हारे बीच कोई विधायक बाधा नहीं है, कोई पाजिटिव हिंडरेंस नहीं है। एक निगेटिव, नकारात्मक बाधा है। नकारात्मक बाधा का अर्थ है कि तुम अड़चन खड़ी करते हो, इसीलिए परमात्मा से नहीं मिल पाते। अन्यथा कोई बाधा नहीं। तुम अड़चन खड़ी न करो, अभी मिलन हो जाए।

ऐसे ही है, जैसे सूरज निकला है और तुमने दरवाजे बंद कर लिए हैं। सूरज
के भीतर आने में कोई भी बाधा नहीं है; तुम ही दरवाजे बंद किए खड़े हो। दरवाजा खोल दो, सूरज अपने आप भीतर चला आता है। सूरज को भीतर थोड़े ही लाना पड़ता है! समझाना-बुझाना थोड़े ही पड़ता है किरणों को, कि आओ भीतर। फुसलाना थोड़े ही पड़ता है, कि आ जाओ भीतर, डरो मत! सिर्फ द्वार खुला हो, सूरज भीतर आ जाता है।
और यह भी हो सकता है कि द्वार भी खुला है लेकिन तुम पीठ किए खड़े हो। यह
भी हो सकता है कि द्वार भी खुला है, पीठ भी तुम नहीं किए हो, सिर्फ आंख बंद किए खड़े हो। जरा सी पलक खोलने की बात है।
असहाय अगर सच में ही अनुभव कर रहे हो--मैं कहता हूं, "सच में" क्योंकि
यह भी हो सकता है, कि तुम असहाय अनुभव न कर रहे हो और अभी भी कुछ करने की तमन्ना बाकी बची हो। जब तक करने की कोई भी तमन्ना बाकी बची है, तब तक तुम असहाय नहीं हो। तब तक तुम कहते हो, थोड़ा और करके देख लें। लेकिन जब तक तुम्हारी अस्मिता पूरी ही न टूट जाएगी, जब तक तुम बिल्कुल ही गिर न जाओगे, जब तक तुम्हें यह न लग जाएगा कि कुछ होता ही नहीं मेरे किए, तब तक असहाय अवस्था भी पूरी नहीं है।
तो तुम थोड़ा असहायता को समझो और असहाय अवस्था में जीओ। और असहायता से डरो मत, भागो मत। उसे छिपाओ भी मत। उसी असहाय-भाव की कीचड़ से तुम पाओगे, कमल उठने लगा।
अगर कोई व्यक्ति पूर्ण असहाय हो जाए तो कुछ भी करने को बाकी नहीं रहा। पाल खुल गए, नाव चल पड़ी।
तो तुमसे मैं कहता हूं और मत पूछो कि क्या करूं? क्योंकि मैं तुम्हें
जो भी करने को कहूंगा, तुम उसको भी कुनकुना ही करोगे। तुमने कुनकुना ही सब करने की आदत बना ली है। तुम ध्यान भी करोगे, तो आधा-आधा ही करोगे। तुम प्रार्थना करोगे तो भी आधी-आधी होगी। आधा मन प्रार्थना करेगा, आधा बाजार में होगा, कहीं और होगा। तुम कहीं पूरे न हो पाओगे।
लेकिन यह असहाय अवस्था तो करने की बात ही नहीं है, यह तो तुम्हें खुद अनुभव हो रही है। इसे तो तुम खुद ही जान रहे हो। यह कोई मैंने नहीं कहा है कि तुम करो। यह किसी ने तुम्हें सिखाया नहीं है, कि तुम करो। यह तो तुमने अपने ही जीवन की स्थिति को समझ कर पाया है, कि असहाय है स्थिति; हेल्पलेस हूं। बस, इसमें ही रम जाओ।
अभी तो लगेगा कीचड़ में बैठ गए। लेकिन अगर कीचड़ में बैठने की हिम्मत हो, तो कमल कीचड़ से बहुत दूर नहीं। जरा सा फासला है। और जो भी कीचड़ में बैठने के लिए हिम्मत रखता है, उसके जीवन में कमल खिल जाता है।
और सब तुम करके देख चुके, अब असहाय होकर ही देख लो। अब कुछ मत करो। अड़चन आएगी; क्योंकि तुम्हारा अहंकार कहेगा कि ऐसे बैठे रहने से क्या होगा? तुम्हारा अहंकार गणित रखता है। वह कहेगा, करने से नहीं हुआ तो न करने से कैसे होगा? जब कर-कर के नहीं हुआ तो न करने से तो बिल्कुल डूब जाओगे। कर-कर के कम से कम थोड़े बचे हो। कहीं पहुंचे नहीं यह ठीक; रास्ते पर तो हो; मंजिल नहीं आई। यह न करके तो रास्ते के किनारे बैठ जाओगे।
और मैं तुमसे कहता हूं, रास्ते के किनारे जो बैठ गया, वही मंजिल पर पहुंच जाता है। बैठ जाने में मंजिल है।
जापान में एक पर्वत-शिखर पर एक मंदिर है, तीर्थ है। हजारों यात्री प्रतिवर्ष वहां जाते हैं। बुद्ध की बड़ी सुंदर प्रतिमा वहां विराजमान है। पहाड़ चढ़ते हैं।
एक फकीर लिंची गया था तीर्थयात्रा को और पहाड़ के नीचे ही बैठा रहा, कभी ऊपर नहीं गया। लिंची जिस गांव से आया था, उस गांव के लोग जब यात्रा करने आए तो उन्होंने उसे पहचाना और कहा, कि तुम यहीं बैठे हो? आए थे यात्रा करने को!
लिंची ने जो उत्तर दिया उसे तुम याद रख लो। लिंची बूढ़ा था, शरीर दुर्बल था, पहाड़ चढ़ने की क्षमता न थी। हां, चाहता तो किसी के ऊपर डोली में बैठ कर जा सकता था, लेकिन वह उसने ठीक न समझा कि तीर्थयात्रा पर भी डोली में बैठ कर जाना क्या शोभा देता है? अपने पैर से चल कर परमात्मा के मंदिर

तक न आ सके? और अपने पैर से चल कर जहां नहीं पहुंचे, वहां पहुंचने में अर्थ भी क्या है? पहुंचने का अर्थ तो अपना ही पहुंचना है।
तो लिंची यह सोच कर डोली पर सवार न हुआ। वहीं पहाड़ के नीचे बैठ गया और उसने कहाः मैं तो असहाय हूं, पैर मेरे कमजोर हैं, पहाड़ मैं चढ़ नहीं सकता, बूढ़ा हूं, जीवन का भी भरोसा नहीं। दूसरे के कंधे पर बैठ कर जाना भी शोभा नहीं देता कि यह भी कोई यात्रा हुई? और दूसरे के कंधे पर बैठ कर भी पहुंच गए तो क्या यह कोई पहुंचना हुआ? कम से कम तेरे मंदिर तक तो अपने पैर से चल कर आते। तो अब तो एक ही उपाय है, कि अगर तेरी मर्जी हो, तो तू ही आ जा। अन्यथा हम यहीं बैठे रहेंगे।
और कहते हैं कि बुद्ध का आगमन वहीं हुआ।
तो जब गांव के लोग आए और उन्होंने कहाः तुम यहीं बैठे हो? तो लिंची ने कहा, जरा मुझे गौर से देखो, मैं वही नहीं हूं, जो तुम्हारे गांव से यात्रा पर निकला था।
निश्चित ही उनको भी लग रहा था, कि कोई महिमा प्रकट हुई है, आभा बदल गई है, आंखों में ज्योति किसी और लोक की है। चेहरे पर भाव इस संसार का नहीं है। यह शरीर ही किसी और महिमा से मंडित है। जैसे भीतर कोई दीया जल रहा है और शरीर से उसकी रोशनी बाहर आ रही है।
उन्होंने कहाः वह तो हमें भी लग रहा है। लेकिन तुम ऊपर मंदिर तक पहुंचे कि नहीं? उसने कहाः मैं असहाय था, चढ़ना मुश्किल था, दूसरे के कंधे पर जाना उचित न था। मैं यहीं बैठा रहा। और मैंने कहाः मैं तो न चढ़ सकूंगा तेरे मंदिर तक; लेकिन अगर मेरी प्यास सच है तो तू मेरी असहाय अवस्था समझना। और अगर तेरी मर्जी हो, तो तू यहां आ जाना।
और यह भी है कि मैं तेरे मंदिर तक भी पहुंच जाऊं, लाखों लोगों को रोज मैं जाते-आते देखता हूं, लेकिन अगर तेरी मर्जी न हो तो वे खाली ही लौट आते हैं। तेरे मंदिर तक पहुंच कर लोगों को खाली लौटते देखता हूं, तो यह भी हो सकता है, कि मैं यहीं बैठा रहूं और भर जाऊं। अब तुझ पर ही छोड़ देता हूं।
और लिंची ने न तो प्रार्थना की, न पूजा की, न कोई विधि-विधान किया। वहीं नीचे पहाड़ के बैठे-बैठे वह बुद्धत्व को उपलब्ध हुआ। जब वह बुद्धत्व को उपलब्ध हो गया तो लोगों को कहने लगा, कुछ करना जरूरी नहीं है, सिर्फ छोड़ देना जरूरी है।
उस छोड़ देने का नाम समर्पण है।
लेकिन छोड़ोगे कब? जब अहंकार सच में ही समझ लेगा कि बिल्कुल असहाय हूं। छोड़ते ही घटना घट जाती है। इधर तुम मिटे नहीं, उधर परमात्मा आया नहीं। इस द्वार से तुम बाहर निकलो, उस द्वार से परमात्मा भीतर आ जाता है। तुम जरा जगह खाली करो। बस, तुम्हीं अटके हो बीच में। तुम्हारे अतिरिक्त और कोई बाधा नहीं।
असहाय-भाव बड़ा अदभुत है। असहाय ही रहो। सब उसी भाव से फलित हो जाएगा। थोड़ा सोचो, असहाय होने की भाव-दशा--उससे ज्यादा महिमापूर्ण और क्या तुम पा सकोगे? असहाय अवस्था में कैसे बचाओगे अपने अहंकार को? गिर पड़ेगा, विसर्जित हो जाएगा।

तीसरा प्रश्नः भक्त भाव से भरा होता है; लेकिन भाव और विचार में हम कब
और कैसे सही-सही फर्क कर सकते हैं?

विचार एक आंशिक घटना है, जो तुम्हारे मस्तिष्क में चलती है। भाव एक सर्वांग घटना है, जो तुम्हारे पूरे अस्तित्व में गूंज जाती है; यही फर्क है। विचार तो तुम्हारी खोपड़ी में चलता है। वह तुम्हारे समग्र व्यक्तित्व को ओतप्रोत नहीं करता। तुम्हारे मन में एक विचार चल रहा है--भगवान का, तो तुम्हारा रोआं-रोआं उस भगवान के विचार से स्नान नहीं कर पाएगा। विचार मन में चलता रहेगा। हृदय की धड़कन में नहीं गूंजेगा। तुम विचार भगवान का करते रहोगे, लेकिन तुम्हारे पैरों को उसकी कोई भी खबर न मिलेगी। तुम्हारे हड्डी-मांस-मज्जा को उसकी कोई खबर न मिलेगी। वह विचार ऊपर-ऊपर चला जाएगा। वह ऐसे ही होगा जैसे सागर पर तुम एक कागज की नाव तैरा दो। वह ऊपर-ऊपर लहरों

पर डगमगाती रहेगी। सागर की गहराइयों को पता ही नहीं चलेगा, कि ऊपर कोई कागज की नाव भी डांवाडोल हो रही है।
विचार कागज की नावें हैं। वे तुम्हारी मस्तिष्क की सतह पर डोलते रहते हैं। वहीं आते हैं, वहीं से तिरोहित हो जाते हैं। तुम्हारे भीतर तुम्हारी गहराई को उनकी कोई भी खबर नहीं मिल पाती। वे आए, इसका भी पता नहीं चलता; कब चले गए, इसका भी पता नहीं चलता।
भाव सर्वांग अवस्था है। जब तुम परमात्मा के भाव से भरते हो तो तुम्हारा मस्तिष्क ही नहीं भरता; मस्तिष्क भरता ही है, तुम्हारा रोआं- रोआं, तन-प्राण सब भर जाता है।
परमात्मा के भाव से भरे हुए व्यक्ति को कहना न पड़ेगा कि वह परमात्मा
का विचार कर रहा है। तुम देखोगे, तुम पाओगे कि वह परमात्मा को जी रहा है। विचार और जीवन में जितना फर्क है, उतना ही फर्क विचार और भाव में है। भाव यानी सर्वांगीणता, भाव यानी समग्रता।
जब तुम कभी किसी के प्रेम में पड़ जाते हो, तब खोपड़ी में ही थोड़ी प्रेम रहता है! वह तुम्हारे हृदय में भी धड़कने लगता है। तुम्हारे रोएं-रोएं में भी पुलक आ जाती है। तुम्हारी चाल बदल जाती है। कल भी तुम चलते थे। ऐसे चलते थे, जैसे पैरों को घसिटते हो। आज भी तुम चलते हो, पैर वही हैं, आकाश वही है, कुछ भी बदला नहीं; लेकिन आज तुम्हारे पैरों में एक नाच है। तुम किसी के प्रेम में पड़ गए हो।
हालैंड में एक बहुत बड़ा चित्रकार हुआ, विनसेंट वानगॉग। इस सदी में जैसी वान गाग की ख्याति है, वैसी किसी दूसरे चित्रकार की नहीं है। वान गाग कुरूप था, बहुत कुरूप था। और कोई स्त्री कभी उसके प्रेम में न पड़ी। कुरूप ही नहीं था, विकर्षक था, रिपल्सिव्ह था; कि उसके पास जाकर दूर हटने का मन पैदा होने लगे, कि दुबारा इससे मिलना न हो।
लेकिन बड़ा अदभुत चित्रकार था। सौंदर्य का बड़ा पारखी था। शरीर बड़ा कुरूप था। किसी तरह जी रहा था, काम करता था। एक चित्रशाला में रोज काम करने जाता था। काम भी कर देता था, चित्र भी बना देता था, चित्र बिक भी जाते थे। लेकिन चलता था घसिटता हुआ! जिसके जीवन में प्रेम की वीणा न बजी... प्रार्थना तो बहुत दूर है, परमात्मा तो बहुत दूर है। प्रेम तो बड़ी फीकी ध्वनि है प्रार्थना की, बड़ी फीकी! जैसे हजार-हजार पर्दो के पार से तुमने परमात्मा को देखा हो। बस एक झलक, छाया सरक गई हो, बस, ऐसा प्रेम है। लेकिन फिर भी प्रेम बड़ा महत्वपूर्ण है। क्योंकि जिनके जीवन में प्रार्थना नहीं, परमात्मा नहीं, उनके जीवन में तो प्रेम ही एकमात्र घड़ी है, जब वे समग्रता को जानते हैं। अन्यथा सभी चीजें खंड-खंड हैं।
वह घसिटता हुआ चलता था, जैसे पैर अलग चलते, हाथ अलग चलते, सिर अलग चलता। जैसे कोई चीज जोड़ने वाली न थी भीतर। जैसे भीतर कोई केंद्र न था। जैसे वह कोई एक एकता न था। जैसे यंत्र सब ढीला हो गया था और सब अस्थि-पंजर-- किसी तरह लटके चल रहे थे।
एक दिन अचानक चित्रशाला के मालिक ने देखा, वानगॉग की चाल बदल गई है।
उसमें थोड़ी गति है; और गति ही नहीं है, एक पुलक है! न केवल पुलक है बल्कि उसके चेहरे पर एक ताजगी है। जैसे उसने आज कई वर्षों के बाद स्नान किया है। स्नान तो वह रोज करता था, लेकिन आज कोई भीतरी स्नान हो गया है, एक नाच है। उसके मालिक ने कहाः वानगॉग! तुम्हें वर्षों से देख रहा हूं। तुमसे ज्यादा उदास, हताश, हारा हुआ आदमी नहीं देखा। आज क्या हो गया है? सीढ़ियां चढ़ते वक्त तुम सीटी बजा रहे थे। क्या मामला है? क्या किसी के प्रेम में पड़ गए?
वानगॉग ने कहाः हां, एक स्त्री ने मेरी तरफ मुस्कुरा कर देखा है।
एक स्त्री जब तुम्हारी तरफ मुस्कुरा कर देख ले, तो इतनी बड़ी घटना घट जाती है; और जब परमात्मा तुम्हारी तरफ मुस्कुरा कर देखेगा हजार-हजार आंखों से, हजार-हजार रूपों में--वृक्षों से, चांद-तारों से, झरनों से, पहाड़ों से, सब तरफ से तुम पर झुक आएगा; जैसे आषाढ़ में मेघ घिर गए हों, ऐसा सब तरफ से तुम पर झुक आएगा और वर्षा करने लगेगा प्रेम की, तब क्या तुम्हारी खोपड़ी में ही ऐसा भाव उठेगा, कि परमात्मा देख रहा है?

नहीं, तब तुम नाच उठोगे। मीरा कहती हैः "पद घुंघरू बांध मीरा नाची।" उसी घड़ी में सोचने से काम न चलेगा; नाचना भी कम पड़ जाएगा। नाचने का अर्थ ही यह है कि तुम्हारी समग्रता ओतप्रोत हो गई, तुम्हारा रोआं-रोआं सम्मिलित हो गया, तुम्हारी धड़कन-धड़कन डूब गई, तुम्हारी श्वास-श्वास ने स्पर्श किया उसका।
भाव-दशा का अर्थ है अखंड, पूरे तुम उसमें हो। इसलिए प्रेम विचार नहीं है, प्रेम भाव है। प्रार्थना भी विचार नहीं है, प्रार्थना भाव है। ध्यान भी विचार नहीं है, ध्यान भाव है।
और भाव को अगर तुम ठीक से समझ लो, तो वह विचार से बिल्कुल उलटा है, क्योंकि उसका गुणधर्म निर्विचार का है। जितना ही भाव तुम्हें पूरा पकड़ लेता है, उतने ही विचार शांत हो जाते हैं, तरंगें खो जाती हैं। तुम इतनी गहरी अनुभूति से भरे होते हो, कि विचार करने की सुविधा कहां? जगह कहां? जरूरत कहां?
प्रेम का विचार तो वही करता है, जिसने प्रेम का भाव नहीं जाना। भोजन
का विचार वही करता है, जो भूखा है और जिसने भोजन नहीं जाना। भरा-पेट आदमी कहीं भोजन का विचार करता है! भोजन से मिल जाती है तृप्ति, विचार खो जाते हैं। भूखा विचार करता है भोजन का। भूखा भोजन ही भोजन का विचार करता है, और कोई विचार आते ही नहीं।
तो परमात्मा का विचार तो तभी तक आएगा, जब तक परमात्मा की भूख ही है। अभी तृप्ति नहीं हुई। प्यास ही है, कंठ पर जल की धार नहीं गिरी। अभी मिलन नहीं हुआ। एक हलकी सी फुहार भी नहीं पड़ी। भाव है तुम्हारा पूरा-पूरा संयुक्त किसी अवस्था में हो जाना। इसलिए सारा जोर समस्त साधनाओं का एक ही है, कि तुम विचार से भाव की तरफ हटो।
और सारी संस्कृति, सारी सयता, सारा समाज, सारी शिक्षा एक ही बात की है,
कि तुम भाव से बचो और विचार में जीयो। स्कूल, कालेज, युनिवर्सिटी विचार सिखाती है, भाव नहीं--"सोचो!" और सोचने का अर्थ क्या होता है? सोचने का अर्थ होता है, जीने से बचना। जितना तुम सोचोगे, उतना जीने से बचते जाओगे। तुम सोचते ही रहोगे। आखिर में तुम पाओगे, खोपड़ी अपने भीतर ही सब कर लेती है। शरीर की कोई जरूरत ही नहीं रह गई।
अभी पश्चिम में कुछ प्रयोग हुए हैं। मस्तिष्क की सर्जरी के प्रयोगों
से एक बात अनुभव में आई है कि मस्तिष्क को शरीर से बाहर निकाला जा सकता है और अलग शरीर के रखा जा सकता है यंत्रों के सहारे; तो भी मस्तिष्क सोचता ही चला जाता है। तुम्हारी कोई जरूरत ही नहीं है मस्तिष्क को सोचने के लिए। मस्तिष्क को घंटों बाहर रख कर परीक्षण किए गए हैं। शरीर से बिल्कुल बाहर निकाल लिया है। अब उसको यंत्रों के सहारे चलाते हैं। यांत्रिक फेफड़ा खून देता है। यांत्रिक फेफड़े से आक्सीजन मिलती है और मस्तिष्क सोचना जारी रखता है।
उस आदमी को पता भी नहीं होगा, कि कोई फर्क पड़ गया है। वह जो सोच रहा था-- अगर वह पैसे का पागल था तो वह पैसे का सोच-विचार जारी रखेगा, हिसाब-किताब लगाता रहेगा भीतर। धन, रुपए गिनता रहेगा।
अगर वह आदमी राजनीतिज्ञ था तो पद की आकांक्षा में लगा रहेगा। मिलता रहेगा अपने वोटर्स से। चुनाव का दौरा करता रहेगा। और शरीर के बाहर पड़ा है मस्तिष्क!
अगर वह कामी था, तो कामवासना से भरा रहेगा। अब कामवासना के तृप्त करने
का कोई उपाय भी नहीं, क्योंकि शरीर से अलग है मस्तिष्क।
अगर वह किसी मंत्र का पागल था, कि ओम्-ओम्, ओम्-ओम जपना है, तो वह जपता रहेगा।
विचार अकेले मस्तिष्क से चल सकते हैं, उनके लिए तुम्हारे पूरे होने
की जरूरत नहीं है। इसलिए जितना विचारक विचार में डूबता चला जाता है, उतना ही उसका जीवन संकीर्ण होता चला जाता है, छोटा होता चला जाता है।
पश्चिम में एक विचारक बहुत विचार करने के बाद परेशान होकर इस नतीजे
पर पहुंचा कि अगर किसी तरह विचार से मुक्ति हो जाए तो ही शांति मिल सकती है। तो उसने एक छोटा सा प्रयोग किया है, वह बड़ा कीमती प्रयोग है। शायद

तुम्हें भी काम का हो जाए। फिर तो वह बहुत प्रसिद्ध हो गया। फिर तो उसने एक छोटी सी किताब लिखी अपने प्रयोग के बाबत।
उसने एक प्रयोग किया कि विचार से बहुत परेशान होने के कारण मानसिक चिकित्सा, मनोविश्लेषण सब करवा लिया, कोई हल न पाया। और मन था कि पगलाए चला जाता है। मन की आंधी बढ़ती चली जाती, वहां धुआं इकट्ठा होता चला जाता और विक्षिप्तता करीब है।
तो उसने एक छोटा सा प्रयोग किया। वह कैसे प्रयोग पर पहुंचा, कहना मुश्किल है, लेकिन वह बहुत पुराना तांत्रिक प्रयोग है। वह प्रयोग यह है कि वह अपने को इस तरह अनुभव करने लगा, जैसे सिर है ही नहीं। राह फर चलता है, लेकिन एक ख्याल रखता है, कि सिर कटा हुआ है। बस, गर्दन तक हूं, उसके पार नहीं। बैठता है, सोता है, लेकिन एक ख्याल बनाए रखता है, कि गर्दन है ही नहीं। धीरे-धीरे वह चकित हुआ कि गर्दन न होने का ख्याल; गर्दन कट गई, सिर के न होने का ख्याल मन के विचारों को शांत करने लगा।
उसे तो कुंजी मिल गई। फिर तो उसने इसका गहन प्रयोग किया। उठते, बैठते, चलते, सोते वह एक ही मंत्र बना लिया उसने कि खोपड़ी नहीं है। बस, नीचे का धड़ है, सिर नहीं है। और कोई साल भर के प्रयोग के बाद सारे विचार शून्य हो गए। तो अब तो वह गुरु हो गया। तो वह लोगों को समझाता है। और उसने एक छोटी
सी तरकीब निकाली है। वह साथ में, अपने झोले में कागज की थैलियां रखे रहता है। थैलियां, जो दोनों तरफ से खुली हैं; लंबी थैलियां कागज की। वह लोगों को कहता है, इस में सिर डाल लो। वहां कुछ है ही नहीं, खाली थैली है। और वहां देखते रहो और सोचते रहो, कि सिर है ही नहीं। न तो कुछ देखने को है, न कोई देखने वाला है।
और अनेक लोगों को ध्यान की थोड़ी-थोड़ी झलकें उसकी थैलियों से मिलना शुरू हो गईं। वह थैली काम की है, कारगर है, तुम भी प्रयोग करके देखना। बस, थोड़ी सी कागज की थैली, उसमें खोपड़ी डाल ली। और वहां कुछ है नहीं, खाली थैली है; वहां देखते रहे, देखते रहे। न कुछ देखने को है, न कोई देखने वाला है। बस, इतना ही तो सारा ध्यान का शास्त्र है, न कुछ देखने को है, न कोई देखने वाला है। न दृश्य है, न दर्शन है। फिर विचार कहां उठता है? फिर विचार खो जाता है।
लेकिन विचार का खो जाना पर्याप्त नहीं है। यही भक्तों में और ध्यानियों में फर्क है। ध्यानी कहता है, विचार खो गया, सब हो गया। भक्त कहता है, विचार खो गया, यह तो केवल प्राथमिक चरण है। अभी भाव कहां जन्मा है? तो विचार खो जाने के बाद तुम पाओगे विचार तो नहीं रहा। मन शांत हो गया, लेकिन आनंद तुम न पाओगे।
इसलिए ध्यान करने वाला व्यक्ति शांत हो जाएगा, शून्य हो जाएगा। आनंद
की स्फुरणा न पाएगा। यही फर्क है बुद्ध के विचार और वेदांत का। बुद्ध का विचार शून्य तक पहुंचा देता है। बड़ी गहरी बात है शून्य तक पहुंचा देना; आधी मंजिल पूरी हो गई।
लेकिन वेदांत कहता है, यह काफी नहीं है। शून्य तो हो गया, लेकिन अभी परमात्मा से भरा नहीं। जहर से तो खाली हो गया पात्र, लेकिन अमृत अभी भरा नहीं। अच्छा हुआ कि जहर से खाली हो गया, काफी है यह भी। यह कितना मुश्किल है, लेकिन अधूरा है।
यही वेदांत का और बुद्ध के चिंतन का फर्क है। वेदांत कहता है, जब तक शून्य पात्र ब्रह्म से न भर जाए, तब तक तुम शांत तो हो जाओगे, लेकिन आनंदित कैसे होओगे?
इसलिए बुद्ध को तुम वृक्ष के नीचे शांत बैठा देखते हो। महावीर को तुम पहाड़ों में शांत खड़ा हुआ देखते हो; पर मीरा का नाच, चैतन्य का अहोभाव वह दिखाई नहीं पड़ता। कुछ कमी है। कुछ चूक रहा है। सब है--बैंड-बाजे बज गए, बराती आ गए, मेहमान इकट्ठे हो गए, दूल्हा खो रहा है। सब है, लेकिन कुछ फीका- फीका है। दरबार भरा है, दरबारी बैठे हैं, सिंहासन खाली है, सम्राट नहीं है। सन्नाटा है, प्रतीक्षा है, लेकिन कुछ चूक रहा है--कोई एक कड़ी!
वेदांत परम शास्त्र है। उससे ऊपर कोई शास्त्र कभी नहीं गया। वेदांत परम दृष्टि है, क्योंकि वह शून्य में पूर्ण को उतार लेती है।

मैं भी तुमसे कहता हूं कि ध्यान जरूरी है, एकदम जरूरी है। उसके बिना
तो कुछ भी न होगा। वह तो प्राथमिक है। उससे तो भवन निर्मित होगा। लेकिन फिर भी अतिथि के आने की जरूरत पड़ेगी।
भूमि तैयार कर ली, बीज भी डालने पड़ेंगे। भूमि तैयार कर लेना बगीचे का
लग जाना नहीं है। जब भाव उमगेगा, तभी बगीचा लगा। इसलिए जब तक तुम नाच न सको, तब तक समझना मंजिल नहीं आई। शांत हो जाओगे; खूब! बहुत खूब! अच्छा हुआ। लेकिन जब तक नाच न पाओ, तब तक समझना अभी थोड़ा सा फासला बाकी है।
बुद्ध खूब हैं, लेकिन कृष्ण के ओंठों पर रखी बांसुरी की कमी है। थोड़ा
सा चूक रहा है। हो सकता है बुद्ध के भीतर वह पूरा भी है गया हो; लेकिन बुद्ध नाच नहीं सकते। उनकी सारी प्रक्रिया शून्यता की है, अहोभाव की नहीं। हो सकता है, भीतर वे आनंद को भी उपलब्ध हो गए हों, लेकिन वह आनंद उनके रोएं- रोएं से बहता नहीं। उसमें भी एक संयम मालूम पड़ता है। उसमें वे पागल होकर नाच नहीं उठते, बावले नहीं हो जाते।
ख्याल रखना--विचार, निर्विचार, फिर भाव। विचार से मुक्त होना है, निर्विचार को लाना है, ताकि भाव आ सके। और जब भाव आ जाए तो संकोच मत करना और डरना मत; और भयभीत न होना और संयम मत रखना। फिर नाचना अबाध! तभी जीवन परम उत्सव को उपलब्ध होना है। और जीवन की आखिरी घड़ी अगर उत्सव न हो सके, तो कहीं कुछ कमी रह गई। थोड़ी सी रह गई हो, लेकिन कमी रह गई।
नाचते हुए तुम मृत्यु में जा सको तो ही आवागमन से छुटकारा है। तुम्हारा मंदिर तुम्हारा नृत्यगृह बन जाए और तुम्हारा ध्यान तुम्हारे भीतर अनाहत नाद को जगा दे। तुम्हारी विचार-शून्यता में ओंकार का विस्फोट हो। तुम शून्य बनो और पूर्ण का अतिथि तुम्हारे द्वार पर दस्तक दे। इससे कम पर राजी मत होना।
धर्म अगर अंततः नृत्य और उत्सव न बन जाए तो धर्म पूरा नहीं है।

चौथा प्रश्नः मन में कई प्रश्न उठते हैं, किंतु जी चाहता है, कुछ न पूछूं; केवल चरण-कमलों के पास बैठा रहूं।

मन में प्रश्न ऐसे ही लगते हैं जैसे वृक्षों में पत्ते लगते हैं। वे लगते ही चले जाएंगे। तुम कितना ही पूछो और मैं कितना ही जवाब दूं! मैं इस आशा में जवाब नहीं देता हूं कि मेरे जवाबों से तुम्हारे प्रश्न उठने बंद हो जाएंगे। वह भूल मैं नहीं कर सकता। मुझे भलीभांति पता है कि मेरा हर जवाब तुम्हारे भीतर और दस नये सवाल उठाएगा।
इसलिए अगर मैं तुम्हारे प्रश्नों के उत्तर देता हूं, तो इस ख्याल से नहीं कि तुम्हारे प्रश्न हल हो जाएंगे। सिर्फ इसी ख्याल से कि धीरे-धीरे, धीरे-धीरे तुम्हें दिखाई पड़ेगा कि इतने प्रश्नों के उत्तर मिल जाते हैं, फिर भी प्रश्नों की भीड़ तो उतनी की उतनी बनी है। उसमें तो रत्ती भर कमी नहीं हुई। शायद थोड़ी बढ़ गई हो; नये प्रश्न उठ आए हों क्योंकि नये उत्तर मिले, जो तुम ने कभी सुने न थे। मन ने नये प्रश्न उठा दिए।
अगर यह तुम्हें दिखाई पड़ना शुरू हो जाए--वही मेरी चेष्टा है; इसलिए तुम्हारे प्रश्नों के उत्तर देता हूं, उत्तरों को हल करने को नहीं। कोई उत्तर किसी प्रश्न को कभी हल नहीं कर पाता। सिर्फ तुम्हें यह बोध देने को कि कोई उत्तर किसी प्रश्न को कभी हल नहीं कर पाता; उलटे हर उत्तर नये प्रश्न को खड़ा कर जाता है।
तो इस मार्ग से हल होने वाला नहीं है। पूछ-पूछ कर कभी कोई ज्ञान को उपलब्ध नहीं हुआ है। जानकारी को उपलब्ध हो जाए भला; खूब जान ले, लेकिन खूब जानने से कुछ ज्ञान का संबंध नहीं है। जागेगा नहीं, अनुभव नहीं होगा। शब्दों से चित्त भर जाएगा। और हर शब्द बीज की तरह नये शब्द पैदा करेगा। और इसकी कोईशृंखला का अंत नहीं है।
अगर यह तुम्हें दिखाई पड़ने लगे कि प्रश्न तो बहुत उठते हैं, लेकिन पूछने का जी नहीं होता, तो तुम एक बहुत महत्वपूर्ण घड़ी के करीब आ गए। यही तो मेरी सारी चेष्टा है, कि तुम्हारे मन में प्रश्न उठें और पूछने का जी न हो। क्योंकि तुम्हें यह समझ भी आ जाए, कि पूछने से क्या होगा।

सभी शास्त्रों में सभी प्रश्नों के उत्तर भरे पड़े हैं। तुम खरीद ला सकते हो सब शास्त्र, पढ़ भी ले सकते हो, कुछ हल न होगा। लेकिन अगर तुम्हें यह समझ आ जाए, कि उठने दो प्रश्नों को, हम प्रश्नों में पड़ते ही नहीं। हम तो बैठेंगे सत्संग में। हम तो शांत, चुप--अगर किसी ने जाना है तो उसकी मौजूदगी का रस लेंगे। हम बुद्धि से बुद्धि के संवाद में न पड़ेंगे, हम तो अस्तित्व को अस्तित्व से जोड़ेंगे।
जब तुम मुझसे कुछ पूछते हो, मैं तुम्हें कुछ उत्तर देता हूं, तब दो बुद्धियों का संवाद होता है। संवाद भी कठिन है। सौ में निन्यानबे मौके पर तो विवाद होता है।
इधर मैं कह रहा हूं, उधर तुम सोच रहे हो, ठीक नहीं है। पता नहीं ठीक है
या नहीं, या उत्तर दे रहे हो, जवाब खोज रहे हो, तुम्हारी मान्यता के अनुकूल नहीं है, तुम्हारे शास्त्र के विरोध में है--हजार तरह का विवाद चल रहा है। अगर तुम बहुत शांत चित्त के व्यक्ति हो, और शास्त्रीय नहीं हो, और शास्त्रों का बोझ नहीं ढो रहे हो अपने सिर पर, तो शायद संवाद हो जाए--तुम अगर प्रेमी हो। तुम्हारा मेरे पास होना एक प्रेमी का सान्निध्य है, तो शायद संवाद हो जाए। तो शायद तुम वही सुन लो, जो मैं कहने की कोशिश कर रहा हूं। तो शायद मेरे शब्दों में तुम्हें निःशब्द की थोड़ी झनकार आ जाए। तो शायद मेरे शब्दों के पार तुम मुझे देखने में थोड़े से सफल हो जाओ। तो शायद शब्दों के बीच जो खाली जगह है, वह तुम्हें सुनाई पड़ सके। वही ज्यादा मूल्यवान है।
तो जब मैं रुक जाता हूं क्षण भर को और तुम्हारी तरफ देखता हूं, वही असली उत्तर है।
यह अगर दिखाई पड़ जाए तो स्वाभाविक फिर तुम पूछना न चाहोगे। प्रश्न तो उठते ही रहेंगे। जब तक मन है, उठते ही रहेंगे। वह मन का स्वभाव है। जैसे सड़क पर लोग चलते रहेंगे, नदियां बहती रहेंगी, आकाश में बादल सरकते रहेंगे, ऐसे ही तुम्हारे मन में विचार लगते रहेंगे। इससे कुछ अड़चन नहीं है।
अगर तुम मेरे पास होने की उत्सुकता से भर जाओ तो उसी उत्सुकता में तुम अपने मन से दूर होने लगोगे। और या तो तुम मेरे पास हो सकते हो, या अपने मन के पास हो सकते हो। दोनों के पास तुम नहीं हो सकते।
मत पूछो। अगर समझ आ गई है तो मत पूछो। चुप रहो। उठने दो, उपेक्षा करो। समझो, कि जन्मों-जन्मों का उपद्रव है, चल रहा है, थोड़े दिन चलेगा। चलने दो; उसमें बहुत रस भी मत लो, ध्यान भी मत दो। तुम थोड़े दूर हटने लगो। तुम मेरे पास होने लगो। सत्संग का यही अर्थ है। गुरु के पास होना। अपने से दूर होना, गुरु के पास होना, सत्संग का अर्थ है। क्योंकि दो में से एक ही बात हो सकती है। या तो तुम अपने पास हो सकते हो, या गुरु के पास हो सकते हो। अपने पास रहे, सत्संग नहीं हुआ। गुरु के पास रहे, सत्संग हो गया।
तब तो इसका यह भी अर्थ हुआ कि तुम हजारों मील से भी तुम गुरु के पास हो सकते हो और गुरु के पास बैठ कर भी दूर हो सकते हो। इसलिए सत्संग का कोई संबंध भूगोल से नहीं है। सत्संग का कोई संबंध न तो स्थान से है, न काल से है। क्योंकि अगर प्रेम गहन हो, तो तुम आज इसी क्षण बुद्ध के पास हो सकते हो; तो स्थान की दूरी भी कुछ दूरी नहीं है। समय की दूरी भी कुछ दूरी नहीं है। और अन्यथा तुम मेरे पास बैठे हो सकते हो और करोड़ों वर्षों का फासला है, और करोड़ों मीलों का फासला है। तुम जितने अपने निकट, उतने ही तुम मुझसे दूर हो।
यह एक सदभाव का जन्म हुआ है। इस सदभाव को जीओ। पूछने की फिकर छोड़ो।
मैं यह नहीं कह रहा हूं कि दूसरे, जिनकी अभी पूछने की आकांक्षा है, वे पूछना बंद कर दें। उधार काम नहीं चलता। जिसके भीतर यह आकांक्षा उदय हुई है, कि अब पूछने में रस नहीं है, सिर्फ पास होने में रस है, उसके लिए ठीक। जिसको अभी थोड़ी और खुजलाहट मन की बाकी हो, उसे खुजा लेना चाहिए।
मस्तिष्क तो खुजली जैसा है। खुजाने में रस आता है। आखिर में खून ही निकलता है, तकलीफ ही होती है। पर जिसका निकल आता है खून, वही रुकता है। वह भी नहीं रुक पाता, क्योंकि पुरानी आदत कहती है, थोड़ा और खुजला लो। खुजलाने में बड़ी मिठास मालूम पड़ती है। खुजली हुई हो कभी, तो तुम्हें पता होगा। न

हुई हो, तो खुजली करवा कर देखने जैसी है। उसमें बड़े जीवन का सार छिपा है। क्योंकि सारी खोपड़ी खुजली है। खुजलाने में थोड़ा सा रस आता है। जानते हुए भी, कि खून निकलेगा, पीड़ा होगी, तकलीफ होगी; फिर भी खुजलाते वक्त रस आता है। तो अभी रस आ रहा हो, तो जारी रखो, क्योंकि तुम दूसरे का ज्ञान उधार नहीं ले सकते। यह तो तुम्हारा ही अनुभव जब तुम्हें इस जगह ले आएगा कि व्यर्थ है पूछना। क्योंकि कितने उत्तर मिले, कुछ भी तो पाया नहीं जाता। सुन लेते हैं। उलटे घड़े पर गिरे पानी की तरह सब बह जाता है। तुम वही के वही रह जाते हो।
तो कब तक ऐसा करते रहोगे? तब चुप पास बैठ जाने की कला का धीरे-धीरे सूत्रपात होता है। और पास बैठने की कला गहनतम बात है।
हमने अपने इस देश की सर्वाधिक महत्वपूर्ण ज्ञान की परंपरा को उपनिषद कहा है। उपनिषद शब्द के दो अर्थ होते हैं। एक अर्थ होता है, गुरु के पास बैठने की कला। उपनिषद का अर्थ होता है, पास बैठना।
और दूसरा अर्थ होता है, गुह्य ज्ञान, गुप्त-ज्ञान।
दो अर्थ हैं उपनिषद शब्द केः समीप होना, सत्संग; और गुप्त-ज्ञान। मगर दोनों अर्थ संयुक्त हैं। दोनों अर्थ एक ही तरफ इशारा करते हैं। मतलब यह है कि गुप्त ज्ञान तभी मिलता है, जब तुम समीप होने की कला सीख लेते हो। जब तुम गुरु के पास बैठ जाते हो, बैठना आ जाता है।
बड़ा मुश्किल है गुरु के पास बैठना आना। क्योंकि उसका मतलब यह है कि चुप बैठना, मौन बैठना, बिना विचार के बैठना, भाव से बैठना। तब गुरु तुममें प्रवाहित होना शुरू हो जाता है। तब गुरु और तुम्हारे बीच जीवन की सरिता डोलने लगती है। तब गुरु एक किनारा हो जाता है, शिष्य एक किनारा हो जाता है। दोनों के बीच जीवन की धारा बहने लगती है।
उस गंगा को बहाना हो--और उस गंगा के अतिरिक्त बाकी कोई गंगा, गंगा नहीं है। अगर उस रसधारा को बहाना हो, तो उपनिषद की कला सीखनी पड़े: चुप बैठ जाना। क्या पूछना है? पूछकर क्या पाना है? पूछकर कुछ मिल भी जाएगा तो शब्द
ही मिलेंगे। तुम्हें लगी है भूख, और तुम पूछते हो भोजन के संबंध में। और मैं भोजन के संबंध में समझाता हूं, मैं तुम्हें पूरा पाकशास्त्र समझा देता हूं; भूख कैसी मिटेगी? तुम कहोगे, भोजन चाहिए।
तुम प्यासे हो, तुम पूछते हो जल के संबंध में और मैं तुम्हें समझाता हूं कि जल कैसे निर्मित होता है। एच.टू.ओ. उसका फार्मूला है। आक्सीजन उदजन दोनों से मिल कर बनता है। उद्भजन के दो परमाणु, आक्सीजन का एक परमाणु, तीनों से मिल कर बनता है। तुम कहोगे, इससे मेरी प्यास नहीं बुझती। समझ में आ गया, लेकिन इस एच.टू.ओ. से प्यास नहीं बुझती। किसी वेद से नहीं बुझ सकती, क्योंकि वेद यानी एच.टू.ओ.। किसी शास्त्र से नहीं बुझ सकती। कोई कुरान, कोई बाइबिल नहीं बुझा सकती। किसी गुरु का कोई वचन नहीं बुझा सकता।
प्यास तो बुझेगी, पानी तुम्हारे कंठ से गुजरे तब। मेरे पास बैठो, पानी गुजर सकता है। सिर्फ तुम खुले द्वार रखो। पास बैठने का इतना ही अर्थ है कि तुम रोकोगे न, रुकावट न डालोगे, दीवाल खड़ी न करोगे। तुम नग्न, निर्वस्त्र, शांत, चुप बैठे रहोगे।
इसका यह मतलब नहीं है, कि तुम्हारे भीतर आज एकदम से विचार उठने बंद हो जाएंगे। वे तो चलते रहेंगे। उनको तुम चलने दो, तुम उनसे दूर होते जाओ। एक डिस्टेंस, एक फासला बनाओ; वे चल रहे हैं, ठीक है।
श्री अरविंद ने लिखा है, कि जिस व्यक्ति से उन्होंने ध्यान सीखा, उसने
एक छोटी सी बात उन्हें समझाई थी। कहा था कि तुम ध्यान करने बैठ जाओ, शांत हो जाओ, निर्विचार हो जाओ। तो अरविंद ने कहाः लेकिन निर्विचार हो जाओ, यह क्या कहने से हो सकता है? हम बैठ जाएंगे; बैठना हो सकता है, निर्विचार कैसे होंगे? विचार तो चलते ही रहेंगे।
तो उस व्यक्ति ने कहाः तुम ऐसा समझना कि जैसे तुम शांत बैठे हो और मक्खियां तुम्हारे चारों तरफ घूम रही हैं। विचार मक्खियों की तरह हैं। तुम उनको घूमने देना। तुम उनकी फिकर न लेना। मक्खियों से क्या लेना-देना है? घूमने दो। तुम शांत रहना, विचारों को घूमने देना। कोलाहल चलता रहेगा तुम्हारे चारों तरफ, लेकिन तुम डांवाडोल मत होना।

श्री अरविंद तीन दिन तक बैठे रहे वैसी अवस्था में। रस लग गया। जिसको कबीर कहते हैं, तारी लग गई। तीन दिन तक उठे ही नहीं, सोए भी नहीं, भोजन भी नहीं किया। ऐसा रस भीतर आने लगा, कि उठने का मन ही न रहा। यह असली उपवास है। ख्याल ही न आया भूख का, प्यास का, नींद का। ऐसा मजा आने लगा, ऐसा भीतर अमृत झरने लगा।
और धीरे-धीरे मक्खियां दूर होने लगीं। अब भी थीं, मगर बड़े फासले पर। मीलों लंबा फासला था। फासला बड़ा होता चला गया; जैसे चांद-तारों के पास अब मक्खियां गूंज रही थीं, और तुम इतने दूर थे, क्या लेना-देना?
विचार के साथ तादात्म्य तोड़ लो, बस! तुम उनसे अलग हो, तुम उनसे भिन्न हो। तुम विचार नहीं हो, तुम विचार के द्रष्टा और साक्षी हो; बस, इस साक्षीभाव से मेरे पास रह जाओ। तो तुमने जो प्रश्न नहीं भी पूछे हैं, उनका भी उत्तर मिल जाएगा। पूछ-पूछ कर तो तुम जो पूछते हो, उसका भी कहां मिलने वाला है? और जो मैं तुम्हें उत्तर देता हूं, वह तो बच्चों को खिलौने देने जैसा है। ताकि रस लगा रहे, बच्चे खेलने आते रहें; कभी उलझ जाएंगे। कभी खिलौना फेंक देंगे और असली चीज लेने को राजी हो जाएंगे।
देना चाहता हूं तुम्हें शून्य; क्योंकि उसी से पूर्ण का मार्ग खुलता है। लेकिन तुम शब्द मांगते हो इसलिए शब्द देता हूं, कि ठीक, आते रहे तो किसी न किसी दिन रोग पकड़ ही जाएगा। यह रोग बड़ा संक्रामक है।
गुरु से ज्यादा संक्रामक दुनिया में कोई और दूसरी चीज नहीं है। बस, आते रहो। उतनी हिम्मत अगर रखी आते रहने की, तो किसी न किसी दिन रोग पकड़ ही जाएगा। और यह रोग बिना मारे नहीं छोड़ता। यह बिल्कुल मिटा ही डालता है। इसका कोई इलाज भी नहीं है; लाइलाज है, इनक्योरेबल है। एक दफा लग गया, फिर छूटता नहीं।

पांचवां प्रश्नः कभी-कभी जीवन में दुख और पीड़ा का इतना अनुभव होता है,
कि लगता है इससे ज्यादा दुख नरक में भी नहीं होगा। फिर भी जीवन के प्रति वैराग्य पैदा क्यों नहीं होता?

दुख से कभी वैराग्य पैदा होता ही नहीं, सुख से पैदा होता है। दुखी की आशा तो जिंदा रहती है; सिर्फ सुखी की आशा टूटती है। क्योंकि दुख में ऐसा लगता ही रहता है, कि आज दुख है, कल ठीक हो जाएगा। अभी दुख है, सदा थोड़े ही रहेगा! और दुख में ऐसा भी लगता है, कि कुछ न कुछ रास्ता है इसके पार जाने का।
गरीब कितना ही गरीब हो, उसको लगता ही रहता है, अमीर होने का कोई न कोई उपाय है। आखिर दूसरे हो गए हैं। इसलिए भिखमंगा कभी विरागी नहीं हो सकता। बड़ा मुश्किल है। भिखमंगे की आशा लगी रहती है। जिसके पास है ही नहीं, वह छोड़ेगा कैसे? जिसके पास है, वही छोड़ सकता है। सुख से असली वैराग्य पैदा होता है, दुख से नकली वैराग्य। इसलिए दुख से मैं तुम से कहता भी नहीं कि तुम दुख से वैराग्य की तरफ जाना; नहीं। वह कोई ठीक रास्ता नहीं है।
अगर तुम दुख से वैराग्य की तरफ गए तो तुम कभी मोक्ष के आकांक्षी न बनोगे; ज्यादा से ज्यादा स्वर्ग के। क्योंकि दुखी आदमी सुख मांगता है, आनंद नहीं। आनंद का उसे पता ही नहीं। सुख का ही पता नहीं, आनंद तो बड़ी दूर की बात है। और दुखी आदमी को जो यहां नहीं मिला है, वह परलोक में मांगता है। और दुखी आदमी को जो अपनी कोशिश से नहीं मिला है, वह परमात्मा से मांगता है। लेकिन दुखी आदमी विरागी नहीं हो सकता। मैंने किसी दुखी आदमी को कभी विरागी होते नहीं देखा। और अगर हो जाए, तो वह झूठा वैराग्य होगा।
तुम्हें अपने संन्यासियों में, अगर तुम इस मुल्क में भ्रमण करो तो तुम्हें सौ में से निन्यानबे प्रतिशत ऐसे संन्यासी मिलेंगे, जो दुख के कारण संन्यासी हो गए हैं। दुख के कारण जो संन्यास आता है, उस संन्यास में भी दुख की छाया पड़ी रहती है और सुख की आकांक्षा बनी रहती है। इसीलिए दुख से तुम मुक्त न हो पाओगे और वैराग्य का कोई जन्म दुख से न होगा।
सुख से वैराग्य का जन्म होता है। क्यों?

क्योंकि जब सुख मिल जाता है, तब भी तुम पाते हो कि दुख तो मिटा ही नहीं। सुख भी मिल गया और दुख तो बरकरार है। जो मिलना था, वह मिल गया; मिला तो कुछ भी नहीं। भीतर तो सब खाली है। धन मिल गया और भीतर की निर्धनता न मिटी। जैसी सुंदर पत्नी चाहिए थी मिल गई, लेकिन कोई तृप्ति न मिली। जैसा पति चाहिए था, मिल गया, लेकिन सब सपने टूट गए। कोई सपना पूरा न हुआ।
दुखी आदमी तो आशा कर सकता है, सुखी आदमी कैसे आशा करेगा? और आशा है राग। दुखी आदमी की तो आशा बनी रहती है कि यह पत्नी मिल गई दुष्ट। दुनिया में इतनी स्त्रियां हैं, एक अभागे हम इससे उलझ गए! कोई दूसरी स्त्री मिल जाती। और स्त्रियां दिखती हैं सड़कों पर हंसते, मुस्कुराते। और लोग दिखते हैं। और लगता है, कि लोग बड़े सुखी हैं, हम ही दुखी हैं।
वह जो प्रतीति है, वह प्रतीति आशा बंधाती है, कि कोई न कोई रास्ता निकल आए, कोई सुंदर स्त्री मिल जाए। हम गरीब हैं, इसलिए दुखी हैं। अगर महल होता तो दुखी न होते। और ऐसा लगता है, महलों में जो लोग हैं, वे दुखी नहीं हैं। क्योंकि अपनी असली शक्ल कोई भी नहीं दिखाता। बाहर लोग शक्लें ओढ़ कर आते हैं। भीतर दुखी होते हैं, बाहर हंसते हुए निकलते हैं। पति-पत्नी लड़ रहे हों और मेहमान घर में आ जाए, दोनों मुस्कुरा कर बात करने लगते हैं। क्यों इस मेहमान को धोखा दे रहे हो? इसके वैराग्य होने की थोड़ी संभावना थी, वह भी मिटा दी। यह सोचेगा, कैसे सुख में जी रहे हैं। स्वर्ग उतरा है इस घर में। एक हम ही दुखी हैं कि कलह चलती है। और यही दशा तुम्हारे मित्र की है। जब वह तुम्हारे घर पहुंचता है, तुम भी मुस्कुराने लगते हो। बाहर बड़ा धोखा है। धनी यहां सुखी होने का धोखा दे रहा है। तो गरीब की आशा बंधी है। पढ़ा-लिखा, गैर-पढ़े-लिखे को धोखा दे रहा है, कि हम बड़े सुखी हैं।
कोई सुखी नहीं है। यहां दो तरह के दुखी लोग हैं। एक वे लोग हैं दुखी, जिनके पास कुछ नहीं है--गरीब दुखी। और एक यहां वे लोग हैं जिनके पास सब है और दुखी हैं--अमीर दुखी। दो तरह के दुखी लोग हैं।
लेकिन गरीब के दुख से छुटकारा बहुत कठिन है। कठिन इसलिए है कि तुम आशा
को कैसे मिटाओगे? गरीबों के कारण ही तो तुम्हारे स्वर्ग पैदा हुए हैं-- झूठे! वे आशाएं हैं गरीबों की। वहां कल्पवृक्ष हैं जिनके नीचे बैठ कर सब कामनाएं पूरी हो जाती हैं। ये कामी पुरुषों ने ही बनाए होंगे कल्पवृक्ष। विरागी का कल्पवृक्ष से क्या संबंध है?
तीन शब्द हैं हमारे पास: नरक, स्वर्ग और मोक्ष। नरक का सभी अनुभव करते हैं। नरक कहीं है नहीं; तुम जहां हो, वहीं है। जिस दिन तुम यह समझ लोगे, तुम उससे भागना छोड़ दोगे। क्योंकि वह तुम्हारे होने में छिपा है। वह तुम्हारे होने का ढंग है। वह कोई ऐसा स्थान नहीं कि इधर से दूसरी जगह चले गए ट्रेन में बैठ कर। उससे कोई फर्क न पड़ेगा। वह तुम्हारे होने का ढंग है। तुम जहां हो, वहीं नरक में रहोगे। गरीब हो, तो गरीब का नरक होगा। अमीर हो तो अमीर का नरक होगा; मगर नरक होगा। क्योंकि तुम्हारे होने की व्यवस्था नारकीय है। तुम्हारे पास कला है नरक बनाने की। जब तक वह कला न छूट जाएगी, तब तक नरक होगा।
इसलिए जो भी आदमी जहां है, वहीं नरक अनुभव करता है। मैंने अपने जीवन में लाखों लोगों को निकटता से देखा है। उनके जीवन की उलझन को समझने की कोशिश की है। मैंने किसी आदमी को सुखी नहीं देखा। सुखी आदमी मिला ही नहीं। जैसे सुखी आदमी है ही नहीं! क्या मामला है? सब तरह के लोग मैंने देखे।
एक आदमी आता है, वह कहता है, बच्चा नहीं है इसलिए मैं दुखी हूं। और दूसरा आदमी, वह गया नहीं और आता है और कहता है, बच्चों की वजह से बड़ा दुखी हूं।
एक आदमी कहता है कि बड़ी चिंता है धन की, व्यवस्था की; सो ही नहीं पाता।
इससे तो गरीब बेहतर। और दूसरा आदमी कहता है, हम मरे जा रहे हैं, गरीबी में।
सब दुखी हैं। हर तरह के लोग। तो नरक कुछ होने का ढंग है। एक कला है, जो तुमको अगर आती है तो तुम जहां भी रहोगे, वहीं नरक बना लोगे। और नरक में सभी लोग हों, तो स्वर्ग की आकांक्षा पैदा होती है।

नरक स्थिति है, स्वर्ग कल्पना है। नरक वास्तविकता है--तुम जहां हो वहीं। कहीं पाताल में नरक नहीं है। पाताल में तो अमरीका है। और अमरीका में भी लोग सोचते हैं, पाताल में नरक है। तुम पाताल में हो। जमीन गोल है। स्वर्ग आकांक्षा है और मोक्ष क्रांति है।
जिस दिन तुम अपने भीतर नरक की व्यवस्था को तोड़ दोगे, उस दिन स्वर्ग नहीं मिलेगा। स्वर्ग तो नरक का ही प्रक्षेपण था। वह तो नरक में ही जीनेवाले आदमी की आकांक्षा थी। जिस दिन भीतर का नरक टूट जाता है, उस दिन स्वर्ग भी खो जाता है। उस दिन मोक्ष बचता है। उस दिन तुम मुक्त हो।
मैंने सुना है ख्रुश्चेव मरा, तो वह सीधा स्वर्ग पहुंच गया। सेंट पीटर, जो ईसाइयों के स्वर्ग के द्वार पर पहरा देते हैं, वे जरा चिंतित हुए कि इस ख्रुश्चेव को भीतर लेना कि नहीं! तो उन्होंने कहाः आप जरा प्रतीक्षालय में बैठें; मैं पूछ कर आऊं। भगवान को उन्होंने पूछा कि ख्रुश्चेव आ गया है। कम्युनिस्ट को भीतर लेना कि नहीं? नास्तिक है। भगवान ने कहाः अब जो भी आ गया है; आए हुए को लौटाना ठीक नहीं। सिर्फ एक शर्त उससे कर लेना कि यहां कम्युनिज्म का प्रचार न करे। और किसी को समझाए-बुझाए न। और यहां कोई जरूरत भी नहीं है। क्योंकि स्वर्ग में तो सभी कुछ है। यहां तो सभी अमीर हैं। सभी एक-दूसरे से ज्यादा अमीर हैं। कल्पवृक्ष ही कल्पवृक्ष लगे हैं। किसी की कोई कामना अतृप्त नहीं है। तो यहां कोई सर्वहारा है ही नहीं, कोई गरीब है ही नहीं। यहां तो सभी सुखी हैं और अभिजात हैं। इसलिए यहां कोई जरूरत भी नहीं है। उसको कहना, यहां कोई जरूरत भी नहीं है। और तुम यह भर न करना; तो हम इस शर्त पर तुम्हें भीतर ले लेते हैं। और एक वर्ष के बाद हम जांच करेंगे। अगर सब ठीक पाया तो रुक सकते हो, अन्यथा जाना पड़ेगा।
ख्रुश्चेव राजी हो गया। एक साल के बाद सेंट पीटर को बुलाया भगवान ने
और कहा कि क्या खबर है ख्रुश्चेव के संबंध में? तो सेंट पीटर ने भगवान से कहाः कामरेड, सब ठीक है।
उसने भड़का दिया सेंट पीटर तक को!
अब ख्रुश्चेव यानी होने का एक ढंग। कम्युनिस्ट यानी होने का एक ढंग। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता; कम्युनिस्ट अगर स्वर्ग में जाएगा तो वहां भी क्रांति की चर्चा चलाएगा।
और अगर कोई संन्यस्त नरक में जाएगा तो वहां भी संतोष अनुभव करेगा। भक्त नरक में भी अहोभाव पाएगा, क्रांतिकारी स्वर्ग में भी क्रांति के उपाय खोज लेगा।
तुम वही देखते हो, जो तुम हो। तुम अगर दुखी हो, तो तुम स्वर्ग से मुक्त नहीं हो सकते। स्वर्ग तुम्हारा पीछा करेगा। इसलिए मैं तुमसे कहता हूं, दुख के कारण तुम यह मत सोचना कि संन्यास पैदा होगा, वैराग्य पैदा होगा। नहीं, वह अपेक्षा मत करो। दुख को समझने की कोशिश करो। सिर्फ दुख से कोई संन्यास पैदा नहीं हो जाएगा। उससे तो केवल आकांक्षा पैदा होगी। दुख को समझने की कोशिश करो, दुख क्यों है।
और सभी धर्मगुरुओं ने तुम्हें व्यर्थ की बहुत सी बातें सिखा दी हैं।
वे कहते हैं, दुख इसलिए है कि संसार है। संसार का स्वरूप दुख है।
यह सब व्यर्थ की बात है। तुम्हारे होने के ढंग में दुख है। संसार से कुछ दुख का कोई लेना-देना नहीं है। यहीं इसी पृथ्वी पर सुखी होने की संभावना है। यहीं बुद्ध शांत हो जाते हैं, यहीं मीरा नाचती है अहोभाव से। यहीं तुम बैठे दुखी हो!
दूसरे पर दोष डालने की मन की बड़ी वृति है। और उसी वृति का यह सिद्धांत
है, जो कहता है, संसार दुख-स्वरूप है। यहां तो, माया में दुखी होना ही पड़ेगा।
मैं तुमसे कहता हूं कोई जरूरत नहीं। तुम्हारे होने के ढंग बदलते ही यहीं सुख शुरू हो जाता है। सुख ही नहीं, आनंद की वर्षा शुरू हो जाती है। दुख को समझो; दुख से भागो मत। वह जो तुम पूछते हो कि दुख से वैराग्य नहीं पैदा हो रहा; तुम यही पूछ रहे हो कि दुख से हम भाग क्यों नहीं रहे?

दुख से भाग कर जाओगे कहां? तुम जहां जाओगे, तुम्हारा दुख तुम्हारे भीतर है, तुम्हारे साथ है। जैसे मकड़ी जाला बुनती है; वह उसके भीतर से निकलता है। चारों तरफ फैला देती है, फिर अगर उसको डेरा बदलना हो तो वह अपने जाले को फिर से लील जाती है। और दूसरी जगह पहुंच जाती है। वहां जाकर फिर जाले को फैला देती है।
तुम अगर जहां हो, वहां से भागोगे तो तुम अपने जाले को लील जाओगे। फिर तुम हिमालय चले जाओ, वहां तुम जाकर अपने जाले को फिर फैला दोगे।
तुम ही हो, जिससे उठना है। भागना नहीं है कहीं। परिस्थिति में नहीं है दुख; तुम्हारे होने के ढंग, तुम्हारे जीवन के दृष्टिकोण, तुम्हारे दर्शन में, तुम्हारी आधारशिला में दुख है। इसलिए मैं दुख से भागने को नहीं कहता, दुख से जागने को कहता हूं। जागकर समझो दुख को कि दुख क्यों है?
तब तुम बड़े चकित होओगे। जितनी तुम्हारी सुख की मांग है, उतना ही ज्यादा दुख है। जितनी सुख की मांग कम हो जाती है, उतना दुख कम हो जाता है। जिसकी कोई सुख की मांग नहीं, उसका सारा दुख समाप्त हो जाता है। उसी क्षण एक विस्फोट होता है। नरक, स्वर्ग दोनों खो जाते हैं। तुम अचानक पाते हो कि तुम मुक्त हो: जंजीरें गिर गईं। न तो लोहे की जंजीरें हाथ पर रहीं, न सोने की जंजीरें हाथ पर रहीं।
इसलिए यह मत सोचो कि दुख से अपने आप कोई वैराग्य पैदा हो जाएगा। दुख
के प्रति जागो; दुख क्यों है? और दूसरे को जिम्मेवार मत ठहराना। वही भूल तुम जन्मों-जन्मों से कर रहे हो। उसी भूल के कारण तुम अब तक जाग नहीं सके। जब दूसरा जिम्मेवार है, जागने की जरूरत ही नहीं है।
जिम्मेवार तुम हो, सदा तुम हो। कोई तुम्हें गाली दे और क्रोध तुम्हें आए, तो भी जिम्मेवार तुम हो, गाली देने वाला नहीं। क्योंकि ऐसे लोग हैं, जिनको गाली दो और क्रोध न आए। तो गाली में कुछ रस न रहा, अर्थ न रहा। तुम भी अगर थोड़ी समझ से भर जाओगे तो कोई तुम्हें गाली देगा और तुम्हें क्रोध न आएगा। और यह भी हो सकता है कि कोई तुम्हें गाली दे और तुम्हें हंसी आए कि कैसा पागल है!
तुम्हारी दृष्टि पर सब निर्भर है। तुमसे छीना जाए और तुम्हें पीड़ा न हो। तुम्हारे हाथ से खो जाए और तुम्हें अभाव न खले। यह शरीर मरने के किनारे आ जाए और तुम्हारे भीतर की जीवन-ज्योति में जरा सा कंपन न उठे, यह संभव है।
कोई बाहर दुख नहीं है, भीतर है। तुम अपने दुख को, अपने नरक को अपने साथ लिए चल रहे हो। उसके प्रति जागो।
दुख से भाग कर जो वैराग्य लेगा, वह स्वर्ग के लिए वैराग्य लेगा, सुख के लिए वैराग्य लेगा। जो उसे यहां नहीं मिला, वह मंदिर में बैठ कर प्रार्थना करेगा। परमात्मा, परलोक में मिल जाए! इसलिए तुम्हारा परलोक बड़ा काम से भरा है, वासना से भरा है। वहां अप्सराएं हैं सुंदर। जिन अभिनेत्रियों को तुम यहां नहीं पा सके, उनसे बहुत ज्यादा सुंदर अभिनेत्रियां वहां हैं। अप्सराएं यानी वेश्याएं। नाम बड़ा अच्छा है, वह स्वर्ग का नाम है। अर्थ उसका वेश्या है। क्योंकि वह किसी एक से बंधी नहीं हैं, पतिव्रता का नियम नहीं हैं वहां। वेश्याएं हैं, और सोलह साल पर उनकी उम्र रुक गई है! उससे आगे बढ़ती ही नहीं।
तुम्हारी कामना है, स्त्री सोलह साल पर रुक जाए। उसी कामना को तुमने स्वर्ग में बना लिया है। वहां वृक्षों के नीचे बैठ कर तुम जो वासना करते हो, तत्क्षण पूरी हो जाती है। यहां तुम बहुत भटक लिए हो। वासना करते हो, वर्षों लग जाते हैं पूरा होने में। और जब तक पूरी होने के करीब आती है, तब तक तुम्हारी प्यास ही मिट गई होती है, या तुम ही मिटने के करीब पहुंच गए होते हो। कोई सार नहीं दिखता।
इसलिए वहां तत्क्षण! समय नहीं खोता। कल्पवृक्ष के नीचे तुमने चाहा और हुआ। इन दोनों के बीच में पल नहीं खोता। इधर तुम्हारे मन में विचार उठा, उधर पूरा हुआ।
मैंने सुना है कि एक आदमी भूल से स्वर्ग में भटक गया। पहुंच गया कहीं भटक कर। एक कल्पवृक्ष के नीचे विश्राम करने लेट गया। आंख खुली तो उसे बड़ी

भूख लगी थी। उसने ऐसे ही, जैसा तुम सोचते हो, सोचा कि अगर कहीं भोजन मिल जाता... तत्क्षण थालियां चारों तरफ लग गईं। वह इतना भूखा था कि उस समय उसने विचार भी नहीं किया, ये कैसे लग गईं? कहां से आ गईं?
उसका पेट भर गया, तब उसने सोचा, पानी? पानी आ गया स्वादिष्ट, सुस्वादु। खूब खा गया था, खूब पानी पी लिया था तो उसने कहा, बस, अब बिस्तर की कमी है। बिस्तर आ गया!
बिस्तर पर लेट रहा था, तब उसे ख्याल आया कि यह हो क्या रहा है? ऐसे तो
हम पहले भी सोचते रहे, लेकिन कभी ऐसा हुआ नहीं। यहां कोई भूत-प्रेत तो नहीं है? कि चारों तरफ भूत-प्रेत खड़े हो गए--कल्पवृक्ष!
वह घबड़ाया। उसने कहाः मारे गए! वह मारा गया। भूत-प्रेत खा गए उसको वहीं।
कल्पवृक्ष के नीचे भी तुम ही तो रहोगे। सब भी पूरा होगा, तो भी तुम मुश्किल में पड़ोगे। जल्दी ही तुम भी "मारे गए" की अवस्था में पहुंच जाओगे। थोड़ा सोचो कि तुम कल्पवृक्ष के नीचे बैठे हो, क्या मांगोगे? कितनी देर तक तुम्हारी मांग पूरी होती रहेगी और सब ठीक चलता रहेगा? तुम्हें अपने मन का ही कहां भरोसा है? और कल्पवृक्ष के नीचे ऐसा नहीं कि तुम कहो तब कल्पवृक्ष पूरा करता है। भीतर विचार उठा, कि पूरा हुआ।
तुम कल्पवृक्ष से जरा दूर ही दूर रहना। अगर कहीं मिल जाए तो एकदम भाग खड़े होना। क्योंकि तुम्हारे मन में क्या उठ जाएगा, कुछ कहा नहीं जा सकता। क्या-क्या उठता रहता है, तुम्हें पता ही है। कुछ भी उलटा-सीधा! तुम्हारा मन तो विक्षिप्त है। कल्पवृक्ष के नीचे बैठ कर तुम पागल हो जाओगे।
नहीं, दुख से भागोगे तो परलोक में भी तुम सुख ही खोजोगे। दुख से मत भागो, जागो। और जैसे तुम दुख से जागोगे, तुम पाओगे कि दुख का सार क्या है? सुख की आकांक्षा दुख का सार है। सुख की कामना दुख का बीज है। सुख की मांग दुख की शुरुआत है।
अगर सच में दुख से बच जाना है, कहीं जाने की जरूरत नहीं है। न कोई पूजा,
न कोई प्रार्थना, न कोई योग, न कोई तप। सिर्फ वह जो सुख की आकांक्षा है, उसे छोड़ दो। वह जैसे-जैसे छूटती जाएगी, वैसे-वैसे तुम पाओगे कि तुम सुखी होते जाते हो। एक ऐसी घड़ी आती है आंतरिक संतुलन की, जहां सुख की आकांक्षा पूरी गिर जाती है। वहीं दुख समाप्त हो जाता है। वे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। तब तुम मुक्त हो। उस मुक्त को ही मैं संन्यस्त कहता हूं। उस मुक्त को
ही मैं वीतराग कहता हूं।
दुख से बच कर जो वैराग्य पैदा होता है, वह राग के विपरीत है। वह राग का
ही उलटा रूप है, शीर्षासन है। दुख को समझ कर, जान कर जो वैराग्य उत्पन्न होता है वह वीतरागता है। वह दोनों के पार है। न तो वह राग है, और न विराग है।

आज इतना ही।

मेरा मुझमें कुछ नहीं
पांचवां प्रवचन

आई ज्ञान की आंधी

संतों भाई आई ज्ञान की आंधी रे।
भ्रम की टाटी सबै उड़ानी, माया रहै न बांधी।।
हिति-चत की द्वै थूनी गिरानी, मोह बलींदा तूटा।
त्रिस्ना छानि परी घर ऊपरि, कुबुधि का भांडा फूटा।।
जोग जुगति करि संतौ बांधी निरचू चुवै न पानी।
कूड़ कपट काया का निकस्या, हरि की गति जब जानी।।
आंधी पीछे जो जल बूढ़ा, प्रेम हरी जन मीना।
कहै कबीर भान के प्रकटे उदित भया तम खीना।।

और ज्ञान में बड़ा फर्क है। एक तो ज्ञान है पंडित का और एक ज्ञान है प्रज्ञावान का। इन दोनों का भेद साफ न हो जाए तो अज्ञान के पार उठना कठिन है।
और भेद बारीक है। भेद बहुत सूक्ष्म और नाजुक है। दोनों एक जैसे दिखाई पड़ते हैं। जुड़वां भाई जैसे मालूम होते हैं, लेकिन दोनों न केवल भिन्न हैं, बल्कि विपरीत भी हैं। दोनों का गुणधर्म शत्रुता का है।
अज्ञान से भी ज्यादा दूरी प्रज्ञावान के ज्ञान की, पंडित के ज्ञान से है। एक बार अज्ञान के पार हो जाना आसान है, पंडित के ज्ञान के पार होना बहुत कठिन है।
इसे थोड़ा समझें।
पांडित्य का ज्ञान ऐसा है, जैसे कोई संग्रह करे। फिर चाहे वह संग्रह
धन का हो, चाहे हीरे-जवाहरातों का हो, और चाहे ज्ञान की जानकारी का हो, सूचनाओं का हो। पंडित संग्रह करता है और पंडित स्वयं उस संग्रह से अछूता रहता है। वस्तुतः पंडित उस संग्रह का मालिक रहता है।
जिस दूसरे ज्ञान की बात मैं कर रहा हूं, प्रज्ञावान का ज्ञान, वहां प्रज्ञावान अपने ज्ञान का मालिक नहीं होता, ज्ञान ही प्रज्ञावान का मालिक होता है। और प्रज्ञावान ज्ञान को संगृहीत नहीं करता है, उसकी तो आंधी आती है, जो सब उड़ा ले जाती है। असली ज्ञान एक तूफान है। असली ज्ञान एक आत्मक्रांति है। असली ज्ञान एक अराजक अवस्था है।
तुम बचोगे ही न, असली ज्ञान की आंधी आएगी तो। जिस ज्ञान में तुम बच जाते हो, जान लेना वह ज्ञान धोखे का है। जो तुम्हारे अहंकार को छूता ही नहीं वरन और भी बढ़ाता है, वह ज्ञान नहीं है। वह ज्ञान का झूठा सिक्का है। वह तुम्हें ज्ञान का धोखा दे रहा है और बड़ा खतरनाक है। उससे तो अज्ञान भी बेहतर है। कम से कम अज्ञान अहंकार को तो नहीं बढ़ाता। अज्ञान कम से कम मनुष्य को विनम्र तो रखता है। अज्ञान कम से कम मनुष्य को यथार्थ तो रखता है, झूठा तो नहीं बनाता। अज्ञान का कोई पाखंड तो नहीं है।
पंडित यानी पाखंड। वह पाखंड की जीती-जागती प्रतिमा है। भीतर तो अज्ञान है, बाहर उसने ज्ञान और शास्त्रों की दीवाल खड़ी कर रखी है। भीतर तो दीया जला नहीं है, लेकिन अपने घर के चारों तरफ उसने वेद-वचन इकट्ठे कर रखे हैं। वेद-वचन खोद दिए हैं दीवालों पर। स्वयं उसने तो कोई भी लकीर नहीं खींची है। वह स्वयं तो अछूता रह गया है। वह तो वैसा ही है, जैसा तब था, जब कुछ भी न जानता था। उसमें रंचमात्र भेद नहीं पड़ा। उसके जीवन की गुणवत्ता में कोई अंतर नहीं आया, कोई आंधी नहीं घटी, कोई तूफान नहीं आया, जिसमें पुराना मकान गिर गया हो और अचानक उसने पाया हो कि वह खुले आकाश के नीचे है। जिसमें पुरानी सारी धारणाएं टूट गई हों। और अचानक उसने पाया हो कि चित्त खो गया। जिसमें पुराने सारे विचार बह गए हों ऐसी कोई बाढ़ नहीं आई कि वह नग्न, शून्य और खाली रह गया हो।
पंडित का ज्ञान बड़ा सुरक्षा से भरा है। तुम वही रहते हो, जो थे। तुम अपने को बचाते हुए ज्ञान को इकट्ठा करते चले जाते हो। ज्ञान तुम्हारी मुट्ठी में होता है। तुम उसके मालिक होते हो। ज्ञान तुम्हें नहीं मिटा

पाता, वरन तुम ज्ञान का उपयोग करते हो, शोषण करते हो। तुम ज्ञान का धंधा कर सकते हो।
लेकिन वह ज्ञान तुम्हें परमात्मा के पास न ले जाएगा। उस ज्ञान से "हरि
की गति" का कोई पता न चलेगा। वह ज्ञान ऐसे ही है जैसे राह चलते आदमी के ऊपर धूल जम जाती है, और वह स्नान न करे, और धूल की पर्त-पर्त जमती चली जाए। पंडित का ज्ञान ऐसा ही है। वह उस आदमी का ज्ञान है, जो चला तो बहुत, लेकिन जिसने कभी ध्यान का स्नान न किया; जो कभी नहाया न। जिसने यात्रा तो जन्मों- जन्मों में की, बहुत अनुभवों से गुजरा, सब कूड़ा-करकट इकट्ठा कर लिया, लेकिन कभी स्नान न किया।
तो बड़ा बोझ पंडित के ऊपर इकट्ठा हो जाता है। तुम अगर पंडित को चलते भी देखो, तो तुम समझ पाओगे कि उसके सिर पर पहाड़ रखे हैं, दबा जा रहा है।
ज्ञान दबाएगा किसी को? ज्ञान तो मुक्त करता है। ज्ञान बोझ बनेगा किसी का? तो फिर निर्बोझ कौन करेगा? ज्ञान चिंता पैदा करेगा, तनाव पैदा करेगा? ज्ञान को भी ढोना पड़ेगा मजबूरी में, कर्तव्यवश? तो फिर प्रेम का जन्म कहां होगा? प्रेम की स्फुरणा कहां होगी? फिर सहजता का झरना कहां फूटेगा? पंडित असहज आदमी है। वह कभी-कभी अपने ज्ञान के अनुसार चलने की भी कोशिश करता है। लेकिन वह कोशिश करनी पड़ती है, वह सहज नहीं है। चेष्टा करनी पड़ती है, जबरदस्ती करनी पड़ती है। अपने को चलाने का आग्रह करना पड़ता है, अनुशासन थोपना पड़ता है।
फिर भी अनुशासन टूट-टूट जाता है। वह टटोलता है अंधे आदमी की तरह। वह आंखवाले की यात्रा नहीं है, जिसे दिखाई पड़ता है कि दरवाजा कहां है। पंडित अगर कोशिश करके शीलवान भी हो जाए, तो उसका शील भी प्रफुल्ल नहीं होता, हंसता हुआ नहीं होता, नाचता हुआ नहीं होता। उसके शील में भी दंश होता है शिकायत का। जैसे वह कह रहा है परमात्मा से कि देखो कितना चरित्रवान हूं! कितने नियम से चल रहा हूं और गैर-चरित्रवान मजा ले रहे हैं; और मैं दुख में पड़ा हूं।
ध्यान रखना, वह सदा कहेगा कि पापी सुखी हैं और मुझ जैसा पुण्यात्मा और पंडित व्यक्ति दुख पा रहा है। यह कैसा न्याय है! उसकी प्रार्थनाएं शिकायतों से भरी होंगी। उसकी प्रार्थनाओं में पीड़ा होगी, धन्यवाद नहीं होगा। जितना ही कोई अपने को दबाएगा और जबरदस्ती करेगा, उतना ही परमात्मा से दूर होता चला जाता है।
हरि की गति तो सहजता है। इसलिए कबीर बार-बार कहते हैंः साधो सहज समाधि भली। सहज समाधि का अर्थ उसी ज्ञान से है, जहां जानने के पीछे आचरण अपने आप आता है। इसे तुम ठीक से याद रख लेना।
और जब मैं कहता हूं, ठीक से याद रख लेना, तो दो तरह से याद रख सकते हो। क्योंकि ज्ञान दो तरह के हैं। तुम इसे अपनी स्मृति में सम्हाल कर रख सकते हो, जैसे कोई परीक्षा देनी हो; जहां ठीक-ठीक यही शब्द दोहराने पड़ें। जैसा विश्वविद्यालयों में बच्चे परीक्षा देते हैं। तब तुम्हारी स्मृति में यह संजोया रहेगा कि मैंने कहा था; ऐसा-ऐसा कहा था। तब तुम लकीर के फकीर रहोगे। शब्द-शब्द दोहरा दोगे, लेकिन वह शब्द मुर्दा होंगे; आएंगे तुम्हारे ओंठों से लेकिन उनका जन्म तुम्हारे हृदय में न होगा। तुम्हारे स्मृति के यंत्र से सीधे तुम्हारे ओंठों को पार करके आ जाएंगे। तुम्हारे हृदय को खबर भी न मिलेगी।
सहज-समाधि का अर्थ है, जहां आचरण ज्ञान का अपने आप अनुसरण करता है, कराना नहीं पड़ता।
तो एक तो अहिंसा है पंडित की, कि वह थोपता है, नियम लेता है। जमीन फूंक-फूंक कर पैर रखेगा कि चींटी न मर जाए। रात भोजन न करेगा, पानी छान कर पीएगा। सब ठीक कर रहा है, कुछ भी गलत नहीं है इसमें, लेकिन कहीं गहरे में कुछ गलती हो रही है।
वह गलती यह है कि यह, वह कर रहा है, यह उससे हो नहीं रहा। इसमें योजना है। इसमें भविष्य का विचार है। इसमें पाप-पुण्य का लेखा-जोखा है, गणित है। यह वह कर रहा है। चींटी के प्रति कोई प्रेम नहीं उदय हुआ है। सिर्फ शास्त्र को पढ़ कर चालाकी पैदा हुई है कि अगर चींटी मरेगी तो तुम्हें इसका

फल पाना पड़ेगा। चींटी को दुख दोगे तो तुम्हें दुख भोगना पड़ेगा। दुख वह भोगना नहीं चाहता। चींटी से कुछ लेना-देना नहीं है। चींटी मरे, न मरे; मुझसे न मर जाए। क्योंकि मेरा फिर पाप, और मेरा भविष्य का जीवन संकट में पड़ता है। यह उसका हिसाब है।
अगर कोई शास्त्र बताता हो कि मारो चींटी। जितनी ज्यादा चींटियों मारोगे, उतना ही जल्दी मोक्ष मिलेगा। तो यही आदमी खोज-खोज कर चींटियां मारने लगेगा। अगर शास्त्र सिद्ध कर दे कि अनछना पानी पीना ही पुण्य है--और इसमें कोई अड़चन नहीं है। यह सिद्ध किया जा सकता है। तर्क तो वेश्या है। मैं जिस गांव में पैदा हुआ, मेरे पड़ोस में एक जैन परिवार है। परंपरागत, रूढ़ि-ग्रस्त, पुराने ढंग के लोग हैं। उस घर की जो गृहिणी है, वह सामने ही कुएं पर रोज पानी भरती। तो जैसा जैन करते हैं, वह पानी ऐसे भरती फिर पानी को छानती, फिर कपड़े में जो कुछ भी बचा रहता--कुछ अगर बचा रहता-- कूड़ा-करकट--कुछ भी, अदृश्य जीव--जिनका कि जैन हिसाब लगाते हैं; उन सब को उलटा कर वह कुएं में झड़ा देती। क्योंकि कुएं से निकाला है प्राणियों को, वे कुएं के बाहर मर न जाएं।
मैंने उससे एक दिन कहा, ऐसे ही मजाक में कहा, यह तो ठीक है। लेकिन इतना फासला कुएं का, वे जो कीड़े-मकोड़े तू गिरा रही है वापस, जो किसी को दिखाई भी नहीं पड़ते, वे सब मर जाएंगे। इतने छोटे जीव हैं! कुएं के ऊपर से वापस उनको फेंकोगे नीचे, वे रास्ते में मर जाएंगे। चोट खाकर मर जाएंगे। वह तो घबड़ा गई। उसने कहा, तो मैं तो यह जन्म भर से कर रही हूं; तो अब तक तो न मालूम कितना पाप हुआ होगा!
अभी तक पुण्य था! पुण्य ही सोच कर कर रही थी। अब वह पाप हो गया। अब वह घबड़ा गई, वह मुझसे पूछने लगी, तो फिर क्या करना? वह जो छान लिया पानी, फिर जो बच गया छना हुआ हिस्सा, उसको क्या करना? छानी में जो बच गया, उसका क्या करना?
मैंने उसको कहाः वे तो छानने में ही मर जाएंगे, जो आंख से नहीं दिखाई पड़ते। तो उसने कहाः क्या बिना ही छाने पानी पीना?
उनसे तो कोई प्रयोजन नहीं है--जीवाणुओं से। किसको प्रयोजन है? उनसे कुछ लेना-देना नहीं है। फिकर अपनी है, अपने अहंकार की है, अपने सुख-दुख की है।
तो जो व्यक्ति अहिंसा को साधता है, वह पांडित्य की अहिंसा है। वह ब्रह्मचर्य को भी साध सकता है। लेकिन उसने ब्रह्मचर्य की सहजता को जाना नहीं। वह उपवास भी कर सकता है, लेकिन उपवास का आनंद उसे कभी भी न छुएगा। वह सिर्फ परेशान रहेगा, भूखा मरेगा। उसका उपवास भूखा मरना ही होगा। और उसके चेहरे पर उसका सारा विषाद लिखा हुआ तुम पाओगे।
अब यह बड़ी हैरानी की बात है कि किसी ने उपवास किया हो, और बिना नाचे कर
ले तो समझना कि उपवास बेकार था। क्योंकि जो वस्तुतः सहजता से उत्पन्न होगा उपवास, वह शरीर, मन को, तन को ऐसा ताजा कर देता है, ऐसा स्वस्थ कर देता है कि तुम बिना नाचे रह न पाओगे। तुम्हारे पैरों में पंख लग जाएंगे। तुम्हारे अंतर्तम में घूंघर बजने लगेंगे। तुम नाचोगे।
लेकिन तुम जैन साधुओं को नाचते देखते हो? तुम उन्हें मुर्दे की तरह बैठे हुए देखते हो--मरे हुए। यह मृत्यु उपवास से नहीं आ रही है। यह ज्ञान के पीछे आचरण को चलाने से सदा आती है। ज्ञान के पीछे आचरण अपने से आना चाहिए, तो ही ज्ञान ज्ञान है। वह कसौटी है असली ज्ञान की।
अगर तुम्हें कोई बात समझ आ गई--"समझ आ गई" याद रखना, तो क्या तुम उससे विपरीत कर सकोगे? तुम्हें समझ आ गया कि आग में हाथ डालने से हाथ जल जाता है, तो क्या अब तुम्हें जाकर मंदिर में कसम लेनी पड़ेगी व्रत लेना पड़ेगा कि आज से कसम खाता हूं भगवान को साक्षी रख कर कि अब कभी आग में हाथ न डालूंगा? अगर तुम ऐसी कसम लोगे, तो तुम मूढ़ समझे जाओगे। लोग हंसेंगे। और वह कहेंगे तो इसका तो अर्थ यही हुआ कि न तो तुम्हें पता है कि आग जलाती है; न तुम्हें इसका कोई अनुभव हुआ है। यह तुमने कहीं पढ़ लिया होगा, कि आग जलाती है, इसलिए तुम कसम ले रहे हो।

व्रत तो पंडित लेते हैं, ज्ञानी नहीं लेता। ज्ञानी के जीवन में व्रत फलित होते हैं। जैसे वृक्षों में फूल लगते हैं, लगाने नहीं पड़ते, ऐसे ज्ञानी के जीवन में व्रत लगते हैं।
जब तुम्हें दिखाई पड़ता है, तब तुम उसके अनुसार चलते ही हो। उससे अन्यथा कोई उपाय नहीं है। फिर कुछ किया ही नहीं जा सकता। जब दरवाजा दिखाई पड़ता है, तो तुम उससे निकलते हो। तुम दीवाल से कैसे निकलने की कोशिश करोगे? क्या तुम कसम लोगे कि आज से मैं बस दरवाजे से ही निकलूंगा, दीवाल से कभी भी न निकलूंगा?
जहां समझ है, जहां बोध है, जहां वास्तविक ज्ञान है, वहां आचरण ऐसे ही आता, जैसे तुम्हारे पीछे तुम्हारी छाया आती है। उसको लाना थोड़े ही पड़ता है बांध-बांध कर! पीछे लौट-लौट कर देखना थोड़े ही पड़ता है कि छाया आ रही कि नहीं आ रही। कहीं चूक, भटक तो नहीं गई! कहीं कोई चुरा तो नहीं ले गया। कहीं संबंध तो नहीं टूट गया! भीड़-भाड़ बहुत थी, कहीं खो तो नहीं गई!
छाया तुम्हारे पीछे आती है। आचरण छाया है वास्तविक ज्ञान का। लेकिन झूठे ज्ञान का आचरण जबर्दस्ती है, आग्रह है, आरोपण है।
असली ज्ञान तो आंधी की तरह आता है और तुम्हें मिटा जाता है। तुम तुम्हारी पूरी हिंसा में, तुम तुम्हारे पूरे अज्ञान में, तुम तुम्हारे पूरे अहंकार में डूब जाते हो, मिट जाते हो। आंधी सब मिटा जाती है।
इसलिए पहली बात ख्याल रख लो कि वास्तविक ज्ञान आंधी है। उसमें तुम सुरक्षा मत खोजना। वह भयंकर झंझावात है। वह तो तुम्हें मिटाएगा। वह तुम्हें बचाने नहीं आया है।
इसलिए तो लोग शास्त्रों की तलाश करते हैं। वहां से ऐसा ज्ञान खोज लेते हैं, जो तुम्हें मिटाए ही न; वरन तुम्हारा आभूषण बन जाए। तुम्हें और सजाए। तुम जैसे हो, वैसे ही तुम्हारी जड़ों को मजबूत कर दे। तुम्हारे घर को और थोड़े सहारे और बल्लियां लगा दे। तुम्हारा छप्पर, जो वैसे ही जरा-जीर्ण हुआ जा रहा था, उसको थोड़ा एक बरसात के योग्य और बना दे। और तुम्हारा घर जो अपने ही बोझ से गिरा जा रहा था, उसको थोड़ा और बचा ले, थोड़े दिन और खींच ले। मैं तुमसे कहता हूं कि पाप ही काफी है तुम्हारे जीवन के घर को गिरा देने को। अगर ज्ञान का सहारा न मिले, तो हर पापी संत हो जाए। लेकिन ज्ञान का सहारा मिल जाता है। और पापी को जब पांडित्य का सहारा मिल जाता है, तो संतत्व बहुत दूर हो जाता है। तब तो तुम्हें सीमेंट मिल गई, जिससे तुम ठीक से सुरक्षा कर लो अपने घर की।
कबीर इस सूत्र में बड़ी अनूठी बातें कह रहे हैं।
पहली अनूठी बात तो यही है कि ज्ञान आंधी है, तूफान है। उसमें तुम बच न सकोगे। ज्ञान को निमंत्रण देना बड़ा दुस्साहस का काम है। वह निमंत्रण है अपनी मृत्यु को, अहंकार की मृत्यु को। तुम जैसे हो, उसके मिट जाने को।
तुम्हारा नाममात्र भी न बचेगा। तुम्हारी रेखा भी न बचेगी। तुम ऐसे खो जाओगे जैसी रेत पर खींची गई रेखाएं आंधी के बाद खोजे भी नहीं मिलतीं।
और तुमने हस्ताक्षर कर रखे हैं रेत पर। सजा रखा है। बड़ी आशा कर रहे हो
कि इतिहास में बचोगे। लोग सदियों तक तुम्हारा नाम याद रखेंगे।
और जब ज्ञान की आंधी आती है, सब हस्ताक्षर पुछ जाते हैं। पता भी नहीं चलता, कहां तुम्हारे हस्ताक्षर थे! कहां तुमने सजाया था अपना घर!
तुम बचोगे परमात्मा की भांति; तुम्हारी भांति तुम न बचोगे। तुम बचोगे अनंत की भांति, असीम की भांति। सीमा में तुम न बचोगे। तुम जैसे हो, वैसे न बचोगे, तुम जैसे होने को हो, वैसे बचोगे। तुम्हारा भविष्य बचेगा, तुम्हारा अतीत न बचेगा।
यह आंधी का तत्व ख्याल में ले लेना।
मेरे पास लोग आते हैं। दो तरह के लोग आते हैं। एक, वे जो मेरे पास आते हैं, कि उन्हें मैं कुछ सहारा दूं कि वे जैसे भी हैं, उसमें थोड़ी मजबूती, और थोड़ी शक्ति आ जाए। ये लोग गलत लोग हैं। और मेरे पास तो बिल्कुल गलत आदमी के पास आ गए। इन्हें कहीं और जाना चाहिए। मेरे पास तो उसी आदमी का साथ बन सकता है, जो मिटने को आया हो। जिसने तय ही कर लिया हो कि चाहे कोई भी कीमत हो, अब दांव पर पूरा ही लगा देना है। अब दांव पर कुछ बचाना नहीं है।

क्योंकि जरा सा भी तुमने बचाया कि पूरा बच जाएगा। जुआरी चाहिए, व्यवसायी नहीं। व्यवसायी पंडित हो जाते हैं। जुआरी ही ज्ञान को उपलब्ध होते हैं। जुआरी का मतलब यह है कि जो बिना फिकर सब कुछ लगा देता है। इस पार या उस पार। होशियारी से नहीं चलता, चालाकी से नहीं चलता, गणित से नहीं चलता। एक दुस्साहसी अभियान है। खतरा मोल लेने को तैयार होता है।
संतों भाई आई ज्ञान की आंधी रे।
कबीर कहते हैं, ज्ञान की आंधी आ गई है।
भ्रम की टाटी सबै उड़ानी।
वे जो बना रखे थे बहुत से जाल भ्रम के, सपने सजा रखे थे, बड़े इंद्रधनुष फैलाए थे।
भ्रम की टाटी सबै उड़ानी। वह सब उड़ गई। वह कोई परदा बचा नहीं। वे सब दीवालें गिर गईं।
माया रहै न बाधीं।
और अब कोशिश भी करें कि माया रह जाए, तो रहने का उपाय नहीं दिखता।
संतों भाई आई ज्ञान की आंधी रे।
एक तो तुम्हारी माया है कि तुम हटाओ तो हटती नहीं। और कबीर कहते हैं
कि ऐसी भी घड़ी आती है आंधी की, जब तुम माया को बांधो तो बंधती नहीं। अभी तुम हटाओ, हटती नहीं। अभी तुम माया से भागो, भगती नहीं; सदा तुम्हारे साथ है। क्योंकि माया यानी तुम ही हो। तुम्हारे सारे अज्ञान का केंद्र है माया। तुम्हारे होने के गलत ढंग की बुनियाद है माया। तुम्हारे सारे सपनों, कामनाओं, तृष्णाओं की संग्रहीभूत स्थिति है माया। वह तुम्हारे भीतर भ्रांति का जोड़ है, सार-निचोड़ है। वह तुम्हारे गलत होने का ढंग है। अभी तुम उससे भाग कर कहां जाओगे? अभी तो तुम जहां भी जाओगे, माया तुम्हारे साथ होगी। तुम जो भी करोगे, माया उस पर ही सवार हो जाएगी। तुम शास्त्र पढ़ोगे, माया शास्त्र पर ही सवार हो जाएगी। तुम त्याग करोगे, माया त्याग पर ही सवार हो जाएगी... तुम जो भी करोगे!
तुम्हारे भीतर जब तक माया है, तब तक वह सभी को आच्छादित कर देगी। महल होगा तुम्हारे पास तो माया महल को पकड़ लेगी; झोपड़ी होगी तो, झोपड़ी को पकड़ लेगी। कोई फर्क नहीं पड़ता। बड़ा साम्राज्य हो तो भी माया जीती है; छोटी सी लंगोटी हो पास में, तो भी माया जीती है। कोई भेद नहीं पड़ता। माया के लिए इससे कोई अंतर नहीं पड़ता कि छोटी संपत्ति है कि बड़ी। कुछ भी हो पकड़ने को। समझो कि मुट्ठी है तुम्हारी, इसमें तुम कोहिनूर पकड़ो या कंकड़ पकड़ो, इससे क्या फर्क पड़ता है? मुट्ठी दोनों हालत में बंधी रहेगी। तुमने कोहिनूर पकड़ा है या कंकड़ पकड़ा है, इससे क्या भेद पड़ता है? मुट्ठी बंधी रहेगी। माया को पकड़ने को चाहिए कुछ। माया यानी पकड़। जो भी हो, उसी को पकड़ लेगी। लंगोटी भी काफी है, कंकड़ भी काफी है, पत्थर भी काफी हैं। बस, कुछ पकड़ने को चाहिए। तुम जहां भी जाओगे, अगर माया भीतर है, तुम जो भी करोगे उसी को पकड़ लेगी।
इसके पहले कि तुम कुछ करने जाओ, ज्ञान की आंधी को निमंत्रण देना जरूरी है, जो तुम्हें निखार जाए; जो तुम्हें धो जाए; जो तुम्हें साफ कर जाए; जो तुम्हें स्नान करा दे। और स्नान कोई साधारण जल का स्नान नहीं है। इसे अच्छा होगा हम कहें, अग्नि-स्नान। यह तुम्हें साफ ही नहीं करेगा, जलाएगा भी। क्योंकि जलाने से ही तुम शुद्ध हो सकोगे। तुम्हारा स्वर्ण अग्नि से गुजर कर ही निखर सकेगा।
और जब एक उलटी दशा हो जाती है। कबीर कहते हैंः माया रहै न बांधी। अब मैं चाहूं भी कि माया को बांधू, तो वह बंधती नहीं। अब मैं चाहूं कि माया मेरे साथ रहे, तो रहती नहीं। दूर-दूर चलती है।
यह ऐसे ही है, जैसे घर में अंधेरा होता है, फिर तुम दीया जला लो; तो फिर अंधेरे को तुम घर में बांध कर रख सकोगे? असंभव! अंधेरा दूर-दूर भागेगा।
तुम दीया लेकर जहां-जहां जाओगे, अंधेरा वहीं-वहीं से दूर-दूर भागेगा। दीया न हो तो अंधेरा साम्राज्य बना कर जीता है।
जब तक भीतर का भान न हो--उसी को ज्ञान कह रहे हैं कबीर।
संतों आई ज्ञान की आंधी रे।

और आंधी है वह। सब उखाड़ देती है।
भ्रम की टाटी सबै उड़ानी, माय रहै न बांधी।
हिति-चत की द्वै थूनी गिरानी मोह बलींदा तूटा।
जिस खंभे पर सब सहारा लगा था घर का--आसक्ति का खंभा। "थूनी"ः जिस पर गांव में लोग घर के सारे छप्पर को सम्हाल कर रखते हैं। "थूनी" शब्द बड़ा महत्वपूर्ण है। ग्रामीण शब्द है। शहर में तो होने का कोई कारण भी नहीं।
जिस खंभे पर सारा झोपड़ा टिका होता है, उस खंभे के ऊपर दो हिस्से होते हैं।
दो हिस्सों की थूनी पर ही, द्वैत पर ही सारा घर टिकता है। थूनी अर्थातद्वैत।
और कबीर कहते हैंः हिति-चत की द्वै थूनी गिरानी। वह जो दोहरे मुखवाली थूनी थी, जिस पर सारा घर टिका था, वह गिर गई।
दो बातें ख्याल रखनी जरूरी हैं कि द्वैत पर ही सारा घर टिका है। जब तक तुम्हें संसार में दो दिखाई पड़ते हैं, तब तक ज्ञान की आंधी नहीं आई। तब तक तुम जिंदा रहोगे। जब तक दो हैं, तब तक "मैं" जिंदा रहेगा। क्योंकि "तू" जिंदा रहेगा, तो "मैं" भी जिंदा रहेगा। दो में से एक भी गिर जाए, तो न तो "तू" बचता है, न "मैं" बचता है। सब बंद हो गया। व्यवसाय समाप्त हो गया।
वह दोहरे मुंहवाले खंभे पर खड़ा है सारा का सारा घर। और उस खंभे का नाम कबीर कह रहे हैं आसक्ति। आसक्ति के दो मुंह हैं सब तरफ। एक तरफ उसका नाम राग है, एक तरफ उसका नाम विराग है। एक तरफ उसका नाम प्रेम है, एक तरफ उसका नाम द्वेष है। एक तरफ उसका नाम, जो भी तुम्हारे जीवन में हो, चुन लो, तुम तत्क्षण पाओगे कि उसका दूसरा विपरीत हिस्सा भी तुम्हारे साथ जुड़ा है।
जब तक तुम प्रेम करोगे, तब तक तुम घृणा भी करोगे। और जब तक तुम्हें सौंदर्य दिखाई पड़ेगा, तब तक तुम्हें कुरूपता भी दिखाई पड़ेगी। और जब तक तुम्हें कोई चीज शुभ मालूम होगी, तब तक अशुभ भी मालूम होगी। और जब तक तुम भरोसा करोगे, तब तक तुम संदेह भी करोगे। दोनों साथ ही होंगे। द्वैत साथ-साथ चलेगा। और इस द्वैत पर ही सारा का सारा घर टिका है तुम्हारे जीवन का। हिति-चत की द्वै थूनी गिरानी मोह बलींदा तूटा।
और उस थूनी के ऊपर जो मोह का बांस रखा था, थूनी के गिर जाने से मोह का बांस टूट गया।
त्रिस्ना छानि परी घर ऊपरि
वह जो तृष्णा का छप्पर था, फैलाव था, वह गिर पड़ा।
कुबुधि का भांडा फूटा।
और उसी क्षण--क्योंकि जब तृष्णा का छप्पर गिर जाए तो कुबुद्धि के बचने
के लिए कोई जगह नहीं बचती। "कुबुधि" जीती है तृष्णा की छाया में। तृष्णा ही "कुबुधि" का आधार है। तृष्णा के कारण ही तुम हजार तरह के अज्ञान से भरे हुए कृत्य करने को तैयार हो जाते हो। जानते हुए भी, समझते हुए भी, कि करना गलत है; लेकिन तृष्णा करवा लेती है।
समझो कि राह से तुम निकल रहे हो, हजार रुपए पड़े हैं। तुम जानते हो, उठाना गलत है। अंतःकरण पुकारे चला जाता है, अपने नहीं हैं। लेकिन कुबुधि चारों तरफ देखती है कि कोई देख भी नहीं रहा; उठा लेने में हर्ज क्या है? तृष्णा का विस्तार होता है कि कई दिन से सोच रखा था, कुछ चीजें खरीद कर घर लानी थीं, एक रेडिओ खरीदना था, कि टेलीविजन खरीदना था; सब सपने एकदम साकार होने लगते हैं। वह हजार रुपयों में न मालूम कितनी तृष्णा की तृप्ति छिपी मालूम होती है।
अंतःकरण की आवाज धीमी होती जाती है। अंतःकरण कहता रहता है, मत उठाओ। चोरी पाप है। लेकिन तृष्णा का छप्पर फैलने लगता है, बड़ा होने लगता है। उन हजार रुपयों में हजार संभावनाएं छिपी हैं। न मालूम कितने-कितने दिन से, न मालूम कितनी-कितनी वासनाएं अधूरी पड़ी हैं, वे सब पूरी हो सकती हैं। रास्ता खुल सकता है। हजार रुपये से धंधा कर सकते हो। हजार से दस हजार हो सकते हैं। दस हजार से दस करोड़ हो सकते हैं। सब संभावनाओं के द्वार हजार रुपए से खुल जाते हैं।
अब यह छोटी सी आवाज अंतःकरण की--चोरी! चोरी! और फिर संसार में कौन चोरी नहीं कर रहा है? सब चोर हैं। कौन है, जो ईमानदार है?

तृष्णा जाल बुनती है कुबुद्धि का। भीतर अंतःकरण की आवाज धीमी-धीमी- धीमी होती हुई खो जाती है। तृष्णा का बाजार खड़ा हो जाता है। आवाज तो तब भी गूंजती रहती है, लेकिन सुनाई पड़ना मुश्किल हो जाता है। आवाज इतनी धीमी है, कि सुनने के लिए बड़ी शांति चाहिए। और तृष्णा उतनी शांति नहीं देती।
कोई देख भी नहीं रहा है, कोई पकड़ने की संभावना भी नहीं दिखाई पड़ती, उठा
ही लो।
फिर तुम कब उठा लेते हो तुम्हें पता भी नहीं चलता। तुम उठा कर भागने लगे हो, तुम छिपने के उपाय में लग गए हो, पता भी नहीं चलता। तुम तो घर पहुंच कर ही सांस लेते हो, तभी तुम्हें ख्याल आता है कि तुमने क्या कर लिया! कुबुद्धि का अर्थ हैः एक बेहोश अवस्था। जब तुम क्या कर रहे हो उसका भी तुम्हें ठीक-ठीक पता नहीं चलता। तुम क्यों कर रहे हो उसका भी पता नहीं चलता। कुबुद्धि का अर्थ हैः एक तरह का नशा, जिसमें सब कुछ संभव है, क्योंकि तुम बेहोश हो। तुम्हें कोई भान नहीं है।
कबीर कहते हैंः त्रिस्ना छानि परी घर ऊपरि
वह जो छाई है तृष्णा घर के ऊपर छप्पर की भांति, वह गिर पड़ी।
कुबुधि का भांडा फूटा।
अब कुबुद्धि के रहने का कोई उपाय न रहा। वह घड़ा ही फूट गया।
जोग जुगति करि संतौ बांधी, निरचू चुवै न पानी।
और कबीर कहते हैं, अब हमने एक दूसरा ही घर बनाया। दूसरा घर बनाना ही पड़ा। आंधी ऐसी आ गई ज्ञान की, कि पुराना घर गिर गया। थूनी टूट गई, खंभे गिर गए, छप्पर जमीन पर आ रहा है। सब नष्ट हो गया। पुराना गया, अतीत विदा हुआ, और आंधी ने इस तरह तोड़ डाला सब कि अब तो नया घर बनाना पड़ा।
यही तो नया जन्म है। इसी को हम द्विज कहते हैं। वही ब्राह्मण है, जिसके जीवन में आंधी आ जाए; और आंधी जिसके पुराने घर को गिरा जाए और नया जन्म हो; जिसका ईसाई रिसरेक्शन कहते हैं।
और ईसाइयों को बड़ी तकलीफ रही है समझाने में; वे कैसे समझाएं। वे कहते हैं, जीसस की मृत्यु हुई सूली पर और फिर तीन दिन बाद वे पुनरुज्जीवित हो गए। यह पुनरुज्जीवन का सिद्धांत ईसाई समझा नहीं पाए दो हजार सालों में। उनको खुद ही शक होता है, कि यह हो कैसे सकता है? जब फांसी लग गई, सूली लग गई, आदमी मर गया, खत्म हो गया, पुनरुज्जीवन संभव कैसे है? मुर्दा कैसे उठ सकता है?
लेकिन वे भूल ही गए, कि रिसरेक्शन की बात, पुनरुज्जीव की बात एक गहरा प्रतीक है, एक संकेत है। उसका जीसस के वास्तविक शरीर से उठ कर चलने का कोई संबंध नहीं है।
जीसस की सूली भी प्रतीक है और उनका पुनरुजीवन भी। वह आंधी की खबर है।
जब आंधी आती है तो पुराने को तो सूली लग जाती है। वह तो मरियम का बेटा जीसस था, वह तो मर गया। और अब परमात्मा के बेटे जीसस का जन्म हुआ। जीसस की मृत्यु हुई, क्राइस्ट का जन्म हुआ। वह द्विज है। उसी दिन जीसस ब्राह्मण हो गए। फांसी लगी इधर, उधर नये का जन्म हुआ। पुराना गया, नया आया। दोनों के बीच में एक अंतराल है।
तो कबीर कहते हैं, जब आंधी आ गई, पुराना सब गिर गया; नया घर बनाना पड़ा।
जोग जुगति करि संतौ बांधी, निरचू चुवै न पानी।
और अब एक दूसरा ही घर बनाया, जिसमें पानी के चूने की भी संभावना नहीं।
बड़ी जोग और जुगति से बनाया है। कबीर के ये शब्द बड़े ग्राम्य हैं, पर बड़े अर्थपूर्ण।
जुगत--जुगत का अर्थ होता हैः डिवाइस। जुगत का अर्थ होता हैः बड़े होशपूर्वक की गई साधना। बड़ी सजगता से, सावधानी से, सावचेतता से जीया गया जीवन।
जोग का अर्थ होता है: जोड़। योग का अर्थ होता है: जोड़। और परम अनुभूति
तो जोड़ की है; जहां दो जुड़ जाते हैं। जहां दो समाप्त होते हैं और एक बचता है। जहां मैं और तू मिल जाते हैं। जहां पदार्थ और परमात्मा मिल जाता है।
जहां दृश्य और अदृश्य का मिलन हो जाता है, वहां योग।

और जुगत... उस योग की तरफ जाने के लिए साधक को जो-जो करना पड़ता है वह बड़ी सावधानी से करना पड़ता है। क्योंकि जरा सी भी चूक--और तुम वापस लौट आओगे पुराने घर में। जरा सी चूक... और तुम फिर पुराना घर बनाने में लग जाओगे। जरा सी चूक... और नये ढंग से फिर पुरानी दुनिया वापस लौट आएगी।
जीवन एक सतत सावधानी है। उस सावधानी का नाम है जुगत।
जोग जुगति करि संतौ बांधी...
और अब एक नया घर बनाया है, जिसको बड़े योग से--जिसे दो का सहारा ही नहीं दिया। जिसके लिए दो की थूनी नहीं लगाई; जिस पर दो मुंह वाला खंभा नहीं बांधा; जिस पर तृष्णा का छप्पर नहीं रखा। अब इसमें से पानी की एक बूंद भी नहीं चू सकती।
यह थोड़ा सोचने जैसा है कि संसार के घर को तुम कितना ही मजबूत बनाओ, उसमें से दुख तो चूता ही रहता है। कितना ही बनाओ सुंदर घर, स्वर्ग नहीं हो पाता। नरक चूता ही रहता है। कितना ही मजबूत छप्पर हो तृष्णा का, क्या फर्क पड़ता है? तृष्णा के नीचे आदमी असुरक्षित ही बना रहता है, पीड़ित ही बना रहता, दुखी ही बना रहता। कभी ऐसी घड़ी नहीं आती कि निश्चिंत हो जाए। चिंता बनी ही रहती है। मजबूत से मजबूत तृष्णा के छप्पर के नीचे भी चिंता का अंत नहीं होता; पानी चूता ही रहता है।
असल में तृष्णा में छेद है, इसलिए तुम तृष्णा का छप्पर बना नहीं सकते। तृष्णा का स्वभाव सछिद्र है।
बुद्ध के जीवन में उल्लेख है। वे कुएं पर, एक गांव से निकलते हुए एक कुएं पर पानी पीने के लिए खड़े हैं। उनका भिक्षु, उनका शिष्य आनंद भी उनके पास खड़ा है। एक आदमी पानी भर रहा है--पागल रहा होगा। पागलों की कोई कमी भी नहीं है। वे ही ज्यादा हैं। बुद्धिमान तो कहीं खोजे से कोई मिलता है।
कोई पागल पानी भर रहा होगा। बुद्ध प्रतीक्षा कर रहे हैं कि वह पानी भर ले, तो वे पानी पी लें और अपनी राह पर आगे बढ़ जाएं। बढ़ा शोरगुल मचाता है वह पागल। उसकी बालटी बड़ा शोरगुल मचाती है। उसमें छेद ही छेद हैं। तो जब वह नीचे कुएं में डालता है तो बालटी बिल्कुल भर जाती है और जब खींचता है तो ऊपर-ऊपर तक आते बिल्कुल खाली हो जाती है। उसमें छेद ही छेद हैं और पूरे कुएं में बड़ा शोरगुल मचता है। भारी काम चल रहा हो ऐसा मालूम पड़ता है और हाथ कुछ भी नहीं आता।
बुद्ध थोड़ी देर खड़े रहे, फिर उन्होंने आनंद से कहा कि हम कहीं और चलें। इस आदमी के पास तो तृष्णा की बालटी है।
तृष्णा में छेद ही छेद हैं। भरते हुए मालूम पड़ते हो जिंदगी भर, हाथ कुछ नहीं आता। तुम्हारे करोड़पति से करोड़पति भिखमंगे की तरह मरते हैं।
तुम्हारे सिकंदर, तुम्हारे नेपोलियन सब रोते हुए विदा होते हैं। जिंदगी भर भरते हैं, कुएं में बड़ा शोरगुल मचाते हैं, दूसरों को भरने भी नहीं देते। खुद ही अड़े रहते हैं। और जब वे भरते हैं, तब आवाज भी ऐसी लगती है, पता नहीं कि पूरा कुआं से बाहर आ रहा है; कि पूरा सागर ही बाहर आ रहा है।
लेकिन जब आती है, तो खाली बालटी वापस लौट आती है। बालटी में बड़े छेद हैं। बुद्ध ने आनंद से कहा, आनंद हम कहीं और चलें। यह आदमी पागल है, यह तृष्णा की बालटी में पानी भर रहा है।
बुद्ध जैसे जागरूक पुरुषों का तो प्रत्येक वचन, और प्रत्येक घड़ी एक उदबोधन है। शायद बुद्ध उस कुएं पर इसीलिए रुके हों कि आनंद को कुछ कहना चाहते थे।
तुम भी छिद्रवाली बालटी से भर रहे हो पानी। अछिद्र बालटी चाहिए, तब जीवन तृप्त होता है। अछिद्र बालटी तभी हो पाती है, जब जीवन में कोई तृष्णा न हो।
अब यह बड़ी उलटी बात है, बड़ी विरोधाभासी। जब तक तृष्णा हो, तब तक तृप्ति नहीं; और जब तृष्णा नहीं होती तब तृप्ति ही तृप्ति रह जाती है। तुम तृष्णा से तृप्ति की तरफ जाने की कोशिश कर रहे हो; वह असंभव है। जो भी तृप्त हुए हैं, वे तृष्णा को छोड़ कर तृप्त हुए हैं। और तुम चाहते हो किसी तरह तृष्णातुर चित्त तृप्त हो जाए!

यह तुम छिद्र-भरी बालटी से पानी भरने की कोशिश कर रहे हो। तुम्हारी प्यास कभी न बुझेगी।
कबीर कहते हैं कि जब तृष्णा का छप्पर गिर गया और कुबुद्धि का भांडा फूट गया, तब फिर हमने एक नया घर बनाया संतो। और वह घर हमने बनाया जोग-जुगति से। पहले तो हमने दो पर रखा था सहारा; अब हमने एक पर रखा सहारा। और पहले तो हमने बेहोशी में बनाया था घर; जैसे नींद में रखी हो दीवालों की ईंटें; वह गिरने ही वाला था। कहीं बेहोशी में कोई घर बने हैं! अब हमने होश से बनाया घर, जोग से, जुगति से। और अब एक बूंद पानी भी नहीं चूता। अब हम चादर तान कर सो सकते हैं संतो। अब अछिद्र है हमारा जीवन।
कूड़-कपट काया का निकस्या,
हरि की गति तब जानी।
शरीर का सारा कूड़ा-करकट निकल गया। वह उस घर में ही जुड़ा था। घर यानी शरीर अब इस घर की उपमा का एक दूसरा पहलू सामने आता है। घर यानी शरीर, घर यानी जिसमें तुम रह रहे हो।
अभी जिस घर में तुम रह रहे हो, वह तृष्णा से बना है। अभी जिस घर में तुम
रह रहे हो, वह द्वैत से बना है। अभी जिस घर में तुम रह रहे हो, उसमें छेद ही छेद हैं।
अगर तुम कबीर के वचनों को ठीक से समझो, तो कबीर बार-बार कहते हैं कि इस
नौ छेदवाले घर में मत रहो। क्योंकि शरीर में जो इंद्रियां हैं, वे नौ छेद हैं। कबीर कहते हैं, ये सारे छेद बंद कर लो, तो तुम वहां पहुंच जाओगे, जहां पहुंचने की तुम आकांक्षा कर रहे हो। अछिद्र हो जाओ। आंख बंद कर लो तो भीतर दिखाई पड़ना शुरू होता है। कान बंद कर लो, तो भीतर का नाद अनुभव में आता है। संभोग बंद हो जाए, तो वही ऊर्जा समाधि बनने लगती है।
सब छिद्र बाहर ले जाते हैं। छिद्र यानी बाहर जाने का द्वार। और जब सभी छिद्र शांत होते हैं, निष्क्रिय होते हैं और तुम अपने भीतर ही रह जाते हो तभी--तभी उससे मिलन होता है, जिससे मिले बिना तृप्ति न होगी, संतोष न होगा। जिससे मिले बिना अहोभाव न आएगा, कि पहुंच गए, मंजिल पूरी हुई, विश्राम का क्षण आ गया। अब रुक सकते हैं, सदा को रुक सकते हैं। अब शाश्वत की छाया मिल गई। अब सनातन घर मिल गया। अब कोई और छोटे-मोटे घर बनाने की जरूरत न रही। अब ऐसा घर मिल गया, जो कभी मिटेगा नहीं। अब अमृत उपलब्ध हुआ है।
यह सारे घर का जो प्रतीक है, गौर से समझो, तो शरीर का प्रतीक है। इसे तुम बनाते हो तृष्णा से। एक आदमी मरा; जैसे ही वह मरता है, वैसे ही उसकी आत्मा तड़फने लगती है नये घर के लिए, नये मकान के लिए, नये शरीर के लिए। दौड़-धूप शुरू हो जाती है।
इसलिए हिंदू जलाते हैं शरीर को। क्योंकि जब तक शरीर जल न जाए, तब तक आत्मा शरीर के आस-पास भटकती है। पुराने घर का मोह थोड़ा सा पकड़े रखता है। तुम्हारा पुराना घर भी गिर जाए तो भी नया घर बनाने तुम एकदम से न जाओगे। तुम पहले कोशिश करोगे, कि थोड़ा इंतजाम हो जाए और इसी में थोड़ी सी सुविधा हो जाए, थोड़ा खंभा सम्हाल दें, थोड़ा सहारा लगा दें। किसी तरह इसी में गुजारा कर लें। नया बनाना तो बहुत मुश्किल होगा, बड़ा कठिन होगा।
जैसे ही शरीर मरता है, वैसे ही आत्मा शरीर के आस-पास वर्तुलाकार घूमने लगती है। कोशिश करती है फिर से प्रवेश की। इसी शरीर में प्रविष्ट हो जाए। पुराने से परिचय होता है, पहचान होती है। नये में कहां जाएंगे, कहां खोजेंगे? मिलेगा, नहीं मिलेगा?
इसलिए हिंदुओं ने इस बात को बहुत सदियों पूर्व समझ लिया कि शरीर को बचाना ठीक नहीं है। इसलिए हिंदुओं ने कब्रों में शरीर को नहीं रखा। क्योंकि उससे आत्मा की यात्रा में निरर्थक बाधा पड़ती है। जब तक शरीर बचा रहेगा थोड़ा बहुत, तब तक आत्मा वहां चक्कर लगाती रहेगी।
इसलिए हिंदुओं के मरघट में तुम उतनी प्रेतात्माएं न पाओगे, जितनी मुसलमानों या ईसाइयों के मरघट में पाओगे। अगर तुम्हें प्रेतात्माओं में थोड़ा रस हो, और तुमने कभी थोड़े प्रयोग किए हों--किसी ने भी प्रेतात्माओं के संबंध में, तो तुम चकित होओगे; हिंदू मरघट करीब-करीब सूना है। कभी मुश्किल से कोई प्रेतात्मा हिंदू मरघट पर मिल सकती है। लेकिन मुसलमानों के मरघट

पर तुम्हें प्रेतात्माएं ही प्रेतात्माएं मिल जाएंगी। शायद यही एक कारण इस बात का भी है, कि ईसाई और मुसलमान दोनों ने यह स्वीकार कर लिया, कि एक ही जन्म है। क्योंकि मरने के बाद वर्षों तक आत्मा भटकती रहती है कब्र के आस-पास।
हिंदुओं को तत्क्षण यह स्मरण हो गया कि जन्मों की अनंतशृंखला है। क्योंकि यहां शरीर उन्होंने जलाया कि आत्मा तत्क्षण नये जन्म में प्रवेश कर जाती है। अगर मुसलमान फिर से पैदा होता है, तो उसके एक जन्म में और दूसरे जन्म के बीच में काफी लंबा फासला होता है। वर्षों का फासला हो सकता है। इसलिए मुसलमान को पिछले जन्म की याद आना मुश्किल है।
इसलिए यह चमत्कारी बात है, और वैज्ञानिक इस पर बड़े हैरान होते हैं कि जितने लोगों को पिछले जन्म की याद आती है, वे अधिकतर हिंदू घरों में ही क्यों पैदा होते हैं? मुसलमान घर में पैदा क्यों नहीं होते? कभी एकाध घटना घटी है। ईसाई घर में कभी एकाध घटना घटी है। लेकिन हिंदुस्तान में आए दिन घटना घटती है। क्या कारण है?
कारण है। क्योंकि जितना लंबा समय हो जाएगा, उतनी स्मृति धुंधली हो जाएगी पिछले जन्म की। जैसे आज से दस साल पहले अगर मैं तुमसे पूछूं, कि आज से दस साल पहले उन्नीस सौ पैंसठ, एक जनवरी को क्या हुआ? एक जनवरी उन्नीस सौ पैंसठ में हुई, यह पक्का है; तुम भी थे, यह भी पक्का है। लेकिन क्या तुम याद कर पाओगे एक जनवरी उन्नीस सौ पैंसठ?
तुम कहोगे कि एक जनवरी हुई यह भी ठीक है। मैं भी था यह भी ठीक है। कुछ न कुछ हुआ ही होगा यह भी ठीक है। दिन ऐसे ही खाली थोड़े ही चला जाएगा! ज्ञानी का दिन भला खाली चला जाए, अज्ञानी का कहीं खाली जा सकता है? कुछ न कुछ जरूर हुआ होगा। कोई झगड़ा-झांसा, उपद्रव, प्रेम, क्रोध, घृणा--मगर क्या याद आता है? कुछ भी याद नहीं आता। खाली मालूम पड़ता है एक जनवरी उन्नीस सौ पैंसठ, जैसे हुआ ही नहीं।
जितना समय व्यतीत होता चला जाता है, उतनी नई स्मृतियों की पर्ते बनती चली जाती हैं, पुरानी स्मृति दब जाती है। तो अगर कोई व्यक्ति मरे आज, और आज ही नया जन्म ले ले तो शायद संभावना है, कि उसे पिछले जन्म की थोड़ी याद बनी रहे। क्योंकि फासला बिल्कुल नहीं है। स्मृति कोई बीच में खड़ी ही नहीं है।
कोई दीवाल ही नहीं है।
लेकिन आज मरे, और पचास साल बाद पैदा हो तो स्मृति मुश्किल हो जाएगी। पचास साल! क्योंकि भूत-प्रेत भी अनुभव से गुजरते हैं। उनकी भी स्मृतियां हैं; वे बीच में खड़ी हो जाएंगी। एक दीवाल बन जाएगी मजबूत।
इसलिए ईसाई, मुसलमान और यहूदी; ये तीनों कौमें जो मुर्दों को जलाती नहीं, गड़ाती हैं; तीनों मानती हैं कि कोई पुनर्जन्म नहीं है, बस एक ही जन्म है। उनके एक जन्म के सिद्धांत के पीछे गहरे से गहरा कारण यही है कि कोई भी याद नहीं कर पाता पिछले जन्मों को।
हिंदुओं ने हजारों सालों में लाखों लोगों को जन्म दिया है, जिनकी स्मृति बिल्कुल प्रगाढ़ है। और उसका कुल कारण इतना है कि जैसे ही हम मुर्दे को जला देते हैं--घर नष्ट हो गया बिल्कुल। खंडहर भी नहीं बचा कि तुम उसके आस-पास चक्कर काटो। वह राख ही हो गया। अब वहां रहने का कोई कारण ही नहीं। भागो और कोई नया छप्पर खोजो।
आत्मा भागती है; नये गर्भ में प्रवेश करने के लिए उत्सुक होती है। वह
भी तृष्णा से शुरुआत होती है। इसलिए तो हम कहते हैं, जो तृष्णा के पार हो गया, उसका पुनर्जन्म नहीं होता। क्योंकि पुनर्जन्म का कोई कारण न रहा। सब घर कामना से बनाए जाते हैं। शरीर कामना से बनाया जाता है। कामना ही आधार है शरीर का। जब कोई कामना ही न रही, पाने को कुछ न रहा, जानने को कुछ न रहा, यात्रा पूरी हो गई, तो नये गर्भ में यात्रा नहीं होती।
तो कबीर कहते हैंः
कूड़ कपट काया का निकस्या...
सब कूड़ा-करकट शरीर का जल गया। वह जो पुराना घर गिरा, उसी में वह सब समाप्त हो गया।
हरि की गति जब जानी...

और जब काया शुद्ध होती है, और जब सब कूड़ा-करकट जल जाता है, शुद्ध कुंदन बचता है, शुद्ध सोना बचता है।
हरि की गति तब जानी...
और तभी पता चलती है कि हरि की गति क्या है? हरि का रहस्य क्या है? परमात्मा का राज क्या है?
जब तुम बिल्कुल मिट जाते हो, तुम्हारा घर जलकर राख हो जाता है, आंधी आती है और तुम्हें सब उखाड़ डालती है, तुम्हारा कुछ भी नहीं बचता, तभी तुम्हें हरि का रहस्य पता चलना शुरू होता है। जब तक तुम हो, तब तक हरि नहीं।
कबीर ने कहा हैः जब तक मैं हूं, तब तक हरि नाहीं, "जब हरि तब मैं नाहीं।"
और जब हरि हैं, तब फिर मैं नहीं।
हरि का और तुम्हारा मिलना कभी होगा नहीं। तुम मिलोगे उसी दिन जिस दिन तुम न रहोगे। तुम्हारा खाली रूप ही परमात्मा से मिलेगा। तुम्हारी शून्यता ही उसके द्वार पर दस्तक देगी, तुम नहीं। तुम्हारी अनुपस्थिति ही प्रवेश करेगी उसके भवन में, तुम नहीं। तुम्हारा न होना ही उसके होने के लिए उपाय है। तुम इतने ज्यादा हो! तुम्हारे इतने ज्यादा होने के कारण ही वह तुम्हारे भीतर प्रवेश नहीं कर पाता। तुम इतने भरे हुए हो कि जगह ही नहीं है। थोड़ी जगह चाहिए, स्थान चाहिए।
और जब विराट को बुलाना हो तो थोड़ी जगह से काम न चलेगा। फिर तो विराट जगह चाहिए। आकाश जैसी जगह चाहिए।
कूड़ कपट काया का निकस्या, हरि की गति जब जानी।
इसके दो अर्थ हो सकते हैं। और दोनों अर्थ महत्वपूर्ण हैं।
एक अर्थ तो यह है कि जब सब कूड़ा-करकट निकल गया तब हरि की गति का पता चला।
दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है जब हरि की गति का पता चला, तभी सब कूड़ा- करकट निकला। और दूसरा अर्थ पहले से गहरा है।
मगर दोनों संयुक्त हैं। वे ऐसे ही संयुक्त हैं, जैसे मुर्गी और अंडा संयुक्त हैं। दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। यहां शरीर का कूड़ा-करकट निकल जाता है, तृष्णा टूटती है, माया-मोह का जाल टूटता है, कुबुद्धि का भांडा फूटता है, वहां हरि की गति अनुभव में आने लगती है। उधर हरि की गति अनुभव में आती है और यहां जो भी बचा-खुचा है, वह भी विदा हो जाता है।
ये दोनों साथ-साथ घटते हैं। असल में हम जब कहने चलते हैं, तब दो हिस्से
हो जाते हैं। घटना में एक साथ ही घटता है, युगपत घटता है। जैसे जब तुम दीया जलाते हो तो कोई अगर तुमसे पूछे कि जब तुम दिया जलाते हो तब दीया जलाने के बाद अंधकार जाता है बाहर कमरे के, या अंधकार के बाहर चले जाने के बाद दीया जलता है?
तुम जरा मुश्किल में पड़ जाओगे। क्योंकि अगर तुम कहो कि अंधकार पहले चला जाता है, तब दीया जलता है, तो उसका अर्थ हुआ कि दीये के जलने की कोई जरूरत ही न रही। अंधकार जब बाहर ही चला गया, तो दीया बुझा भी रहे तो भी प्रकाश होगा। अगर तुम यह कहो कि जब दीया जल जाता है, तब अंधकार बाहर जाता है, तब भी मुश्किल है। इसका मतलब यह हुआ, कि दीया भी जल गया और अंधकार भी भीतर रहा। थोड़ी देर ही सही। तो फिर दीया भी अंधकार को मिटा नहीं पाता। घटना ऐसी है कि दीये का जलना और अंधकार का जाना एक ही घटना के दो पहलू हैं। एक साथ घटता है। युगपत। जरा भी फासला नहीं है। इंच भर का फासला भी-- मुश्किल खड़ी हो जाएगी। फिर पहेली हल न हो पाएगी। अगर अंधेरा पहले चला जाए तो दीये की कोई जरूरत नहीं। अगर दीया जले और अंधेरा एक क्षण भी भीतर रह जाए, तो दीया फिजूल, नपुंसक! उसका कोई मूल्य ही नहीं।
कब जाता है अंधेरा? कब आता है प्रकाश?
--एक साथ।
अगर और भी ठीक से समझना हो, तो यह कहना भी उचित नहीं है कि ये दो घटनाएं हैं। दीये का जलना और अंधेरे का जाना एक ही बात को कहने के दो ढंग हैं।
चाहो, कहो अंधेरा चला गया; चाहो, कहो दीया जल गया; एक ही बात है। ये दो बातें

नहीं हैं। लेकिन भाषा में दो हो जाती हैं। क्योंकि भाषा द्वैत पर खड़ी है। वह जो भाषा की थूनी है, वह दो पर खड़ी है। भाषा का मतलब ही है, दो के बीच का संबंध। तुम अगर अकेले रह जाओ जंगल में, तो तुम भाषा बोलोगे? क्या करोगे? अगर तुम अकेले होते पृथ्वी पर तो कोई भाषा पैदा होती? किसलिए पैदा होती? भाषा तो तब पैदा होती है, जब दूसरा हो। दूसरे के लिए भाषा है। दूसरे से बोलते हो। और अगर तुम कभी अकेले में भी बोलते हो, तो भी तुम दूसरे की कल्पना कर लेते हो, तभी बोलते हो; नहीं तो नहीं बोल सकते। अकेले में कभी- कभी लोग बोलते हैं। एकांत में बैठे हैं, कोई नहीं है, थोड़ी बात करते हैं। तो शायद उनकी पत्नी मायके गई हो, उससे बात कर रहे हैं। या मित्र से बात कर रहे हो; या रिहर्सल कर रहे हो, कल किसी से बात करनी है उसको।
लेकिन दूसरा सदा मौजूद है; चाहे कल्पना में ही क्यों न हो। दो के बिना भाषा नहीं है। सब भाषा द्वैत है। इसलिए भाषा जब भी किसी चीज को प्रकट करती है, तभी अद्वैत टूट जाता है।
और जीवन अद्वैत है। यहां प्रकाश का जलना और अंधेरे का जाना एक साथ घटता है, एक साथ घटता है वह भी भाषा की गलती है। वे दो नहीं हैं, इसलिए कैसे कहें कि एक साथ घटता है? वह एक ही है। दो की तरह मालूम पड़ता है।
कूड़ कपट काया का निकस्या, हरि की गति जब जानी।
आंधी पीछे जो जल बूढ़ा, प्रेम हरी जन मीना।
कहै कबीर भान के प्रकटे, उदित भया तम खीना।।
आंधी के पीछे जो जल की वर्षा हुई...
ज्ञान सब कुछ नहीं है। ज्ञान तो सिर्फ आंधी है। पंडित के लिए ज्ञान सब कुछ हो जाता है। लेकिन असली ज्ञान तो सिर्फ शुरुआत है, सिर्फ प्रारंभ है।
आंधी आ गई, आंधी थोड़े ही सब कुछ है! वह तो आने वाली जल-वृष्टि की सूचना है। वह तो सिर्फ खबर है कि खाली करो जगह; कि तैयार हो जाओ--कि बनो शून्य, और बादल बरसने को है।
तो ज्ञान तो आंधी है, और अमृत आनंद की वर्षा।
आंधी पीछे जो जल बूढ़ा, प्रेम हरी जन मीना
और जो हरि के प्रेम में मतवाले हैं, आंधी के पीछे वे नाचते हैं। और जो हरि के प्रेम में मतवाले नहीं, वे आंधी के पीछे बैठ कर रोते हैं। क्योंकि उनका घर गिर गया। उनका सब खो गया। वे बरबाद हो गए। उनका दिवाला निकल गया। जब भी नासमझ का अहंकार टूटता है, तो वह रोता है और जब ज्ञानी का अहंकार टूटता है, तो वह नाचता है। क्योंकि वह कहता है कि यही तो एक उपद्रव था, जो समाप्त हुआ। जब अज्ञानी का शरीर छूटता है तो वह चीखता-चिल्लाता है। ज्ञानी का शरीर छूटता है तो वह परमात्मा को धन्यवाद कहता है, कि थोड़ी सी बाधा थी, वह भी मिट गई।
कबीर ने कहा हैः कब मरिहों कब भेंटिहों पूरन परमानंद--
कब मिटूंगा, कब मिलूंगा पूर्ण परमानंद से?
ज्ञानी के लिए मृत्यु भी परमात्मा का द्वार है। अज्ञानी घबड़ाता है।
आंधी पीछे जो जल बूढ़ा, प्रेम हरी जन मीना।
वे जो हरि के प्रेम में दीवाने हैं, वे तो भीग गए। वे तो अमृत से भीग गए। वे तो आर्द्र हो गए। उनके तो रोएं-रोएं में अमृत भर गया। वे तो झील की तरह भर गए। खाली थे, तरंगे लेने लगा परमात्मा उनमें।
कहै कबीर भान के प्रकटे, उदित भया तम खीना।
और जब भान उगा, भीतर का सूरज उगा, तब अंधकार क्षीण हो गया। सदा के लिए क्षीण हो गया।
बाहर का सूरज उगता है, अंधकार क्षीण होता है--सदा के लिए नहीं। फिर रात
आ जाती है। दीया जलाओ, अंधकार बाहर जाता है, कब तक? थोड़ी देर में तेल चुक जाएगा, बाती बुझ जाएगी, अंधकार फिर भीतर आ जाएगा।
बाहर का प्रकाश क्षणिक है और अंधकार शाश्वत है। यह बड़े मजे की बात है।
अंधकार को करने के लिए कुछ भी नहीं करना पड़ता। बिना दीये के चलता है, बिना तेल के जलता है। दीये को जलाओ--तेल लाओ, बाती लाओ, हजार उपद्रव हैं। फिर भी क्षण भर जलता है, फिर बुझ जाता है।

बाहर अंधकार शाश्वत है, प्रकाश क्षणिक है। भीतर इससे ठीक उलटी स्थिति है; अंधकार क्षणिक है, प्रकाश शाश्वत है। एक बार मिटा लो, सदा के लिए मिट जाता है। अगर भीतर का प्रकाश भी तेल और बाती पर निर्भर होता, तो फिर आत्मा को पा-पा कर खोना पड़ता। परमात्मा से मिल-मिल कर टूटना पड़ता। पहुंच-पहुंच कर मार्ग खो जाता है। मंजिल आ-आ कर भटक जाती। बहुत उपद्रव हो जाता।
वह जो भीतर का प्रकाश है, वह जलता है बिन बाती बिन तेल। एक बार उसकी प्रतीति हो जाए--वह जल ही रहा है। अभी भी तुम्हारे भीतर जल रहा है। वह कभी बुझता ही नहीं। उसे जलाना नहीं है, सिर्फ आंख मोड़नी है। सिर्फ नजर डालनी है। सिर्फ पहचानना है।
कहै कबीर भान के प्रकटे--
और जब भीतर का भान, भीतर का सूरज प्रकट होता है;
उदित भया तम खीना--
और तम सदा के लिए क्षीण हो गया।
ज्ञान की यह आंधी--इसके दो हिस्से हैं। पहले तो तुम्हें मिटाती है, फिर तुम्हें आर्द्र कर देती है, भिगाती है। पहले तुम्हें कूटती है, पीटती है, नष्ट करती है। अगर तुम राजी हुए टूटने को, मिटने को, खाली होने को तो फिर तुम्हें भरती है।
जो खाली होने से ही डर गया, उसके जीवन में दूसरा चरण नहीं घट पाता। तो पांडित्य पैदा हो सकता है। पांडित्य बड़ा सुरक्षापूर्ण है। उसमें न कोई आंधी है, न तूफान है, न कोई खतरा है। शास्त्र लिए बैठे रहो; अध्ययन करते रहो। तुम अछूते बने रहोगे।
ज्ञानियों ने सदा कहा है कि वीतराग पुरुष संसार में ऐसे जीता है, जैसे कमल पानी में। कमल को पानी छूता नहीं, ऐसे ही पंडित ज्ञान में जीता है; ज्ञान उसे छूता नहीं--कमलवत। जीता है ज्ञान में, चारों तरफ वेद, उपनिषद, कुरान, बाइबिल का ढेर लगाए बैठा रहता है। जीता है वहीं, लेकिन कमलवत। छूता नहीं ज्ञान उसे। और अगर ज्ञान न छुएगा तो कैसे तुम्हारा अज्ञान मिटेगा? पंडित का ज्ञान अज्ञान को ढांक लेता है, मिटाता नहीं। और ढंका हुआ अज्ञान उघड़े अज्ञान से ज्यादा खतरनाक है। वह ऐसे ही है, जैसे किसी ने अपने फोड़े को ढांक लिया हो। पहले तो ढांका हो कि दूसरों को पता न चले; फिर धीरे- धीरे खुद भी भूल गया हो। तो फिर फोड़ा बढ़ते-बढ़ते भीतर नासूर बनेगा और कैंसर बनेगा। फोड़े का इलाज चाहिए; ढांकने से कुछ भी न होगा। अज्ञान को ढांको मत, ढांकने से तुम्हारी आत्मा और अंधकार से भर जाएगी। अज्ञान को उघाड़ो, प्रकट करो। उसे काटना है। और उसे काटने का उपाय यही है कि तुम ज्ञान की आंधी को निमंत्रण दो।
वह निमंत्रण ध्यान से संभव होता है। जैसे-जैसे तुम शांत होते हो, निर्विचार होते हो, ध्यान में उतरते हो, तुम आंधी को बुला रहे हो।
शायद तुम्हें पता हो; बाहर के जगत में जो आंधी घटती है--कैसे घटती है, तुम्हें मालूम है? अभी दो दिन पहले जोर की आंधी आई; हिला गई वृक्षों को, गिरा गई वृक्षों को। वह कैसे आती है? बाहर आंधी कैसे घटती है? कौन उसे बुलाता है?
उसको बुलाने की एक प्रक्रिया है। और किसी दिन विज्ञान के हाथ में यह बात आ जाएगी। जानकारी तो हाथ आ गई है; किसी दिन विज्ञान कर भी सकेगा। रूस में वे कुछ प्रयोग करते भी हैं।
आंधी के आने का ढंग यह है, कि जहां भी जोर की गर्मी पड़ती है, सूरज जहां जोर से तपता है, वहां की हवा विरल हो जाती है, सूखी हो जाती है। सूखी होने के कारण गर्म होने के कारण, फैल जाती है। जब हवा फैल जाती है तो वहां पैदा हो जाते हैं। चारों तरफ की हवा भरी होती है और कुछ जगह हवा के पैदा हो जाते हैं। उन्हीं के कारण दूर से हवा खींच ली जाती है। जैसे तुम बर्तन में पानी भर लो नदी से, तो पैदा हो जाता है। चारों तरफ का पानी दौड़ कर उस को भर देता है।
सूरज गर्मी पैदा करता है। जहां-जहां बहुत गर्मी हो जाती है, वहां हवा विरल हो जाती है, पैदा हो जाते हैं हवा में। उन हवाओं के को भरने के लिए पास की हवाएं जोर से दौड़ती हैं। वह दौड़ ही आंधी है। इसलिए जितनी भयंकर गर्मी

पड़ेगी, उतनी भयंकर आंधी आने वाली है। इसलिए लोग कहते हैं, जब बहुत गर्मी पड़ती है, वे कहते हैं, अब वर्षा होगी। क्योंकि बहुत गर्मी का मतलब है आंधी आएगी; आंधी का मतलब, साथ में बादल उड़े चले आ एंगे।
ठीक वही भीतर का सूत्र भी है। इसलिए हमने भीतर की साधना को तपश्चर्या कहा है। तप का अर्थ होता है, गर्मी। तप का अर्थ होता है, उत्तप्त भीतर की अवस्था।
ध्यान तुम्हारे भीतर एक निश्चित ताप पैदा करेगा। तुम्हारी ऊर्जा उत्तप्त होगी। तुम्हारे भीतर की अग्नि जलेगी। तुम यज्ञ बन जाओगे।
तुम्हारे भीतर सब उत्तप्त होकर खाली होने लगेगा, शून्य होने लगेगा। और जैसे ही भीतर शून्य निर्मित होता है, परमात्मा की आंधी भागती चली आती है।
और जब आंधी आती है, तब साथ में अमृत के बादल भी आते हैं।
संतों भाई आई ज्ञान की आंधी रे।
भ्रम की टाटी सबै उड़ानी, माया रहै न बांधी।।
हिति-चत की द्वै थूनी गिरानी, मोह बलींदा तूटा।
त्रिस्ना छानि परी घर ऊपरि, कुबुधि का भांडा फूटा।।
जोग जुगति करि संतौ बांधी, निरचू चुवै न पानी।
कूड़ कपट काया का निकस्या, हरि की गति जब जानी।।
आंधी पीछे जो जल बूढ़ा, प्रेम हरी जन मीना।
कहै कबीर भान के प्रकटे, उदित भया तम खीना।।

आज इतना ही।

मेरा मुझमें कुछ नहीं
छठवां प्रवचन

सुरति का दीया

पहला प्रश्नः सुना है, कभी-कभी ज्ञानी साथ-साथ रोता है और हंसता है।
वह क्या देख कर रोता है और क्या देख कर हंसता है?

कभी-कभी नहीं, सदा ही ज्ञानी साथ-साथ रोता और हंसता है। हंसता है अपने
को देख कर, रोता है तुम्हें देख कर। हंसता है यह देख कर, कि जीवन की संपदा कितनी सरलता से उपलब्ध है। रोता है यह देख कर कि करोड़ों-करोड़ों लोग व्यर्थ ही निर्धन बने हैं। हंसता है यह देख कर कि सम्राट होना बिल्कुल सुगम था और रोता है यह देख कर कि फिर क्यों अरबों लोग भिखारी बने हैं?
जिसे तुम पाकर ही पैदा हुए हो, जिसे तुमने कभी खोया नहीं, जिसे तुम चाहो तो भी खो न सकोगे, जिसे खोने का उपाय ही नहीं है, उसे तुमने खो दिया है यह देख कर रोता है।
यह देख कर हंसता है कि जो मुझे मिल गया है, उससे मिलाने के लिए कुछ भी करने की कभी कोई जरूरत न थी। कहीं जाने की, किसी यात्रा की कोई जरूरत न थी। यह देख कर हंसता है कि सभी मेरे भीतर था और मैं कैसे चूकता रहा!
और अचानक एक क्षण में आती है आंधी और सब कूड़ा-करकट उड़ जाता है। और भीतर परमात्मा विराजमान है। तुम उसके मंदिर हो।
तो जब भी भीतर देखता है, मुस्कुराता है; जब भी बाहर देखता है, उसकी आंखें आंसुओं से भर जाती हैं।
और ऐसा एक ज्ञानी के साथ नहीं होता, सभी ज्ञानियों के साथ होता है--और होगा ही। इससे अन्यथा होने का उपाय नहीं है।
इतना सरल है और इतना कठिन हो गया है!
कबीर कहते हैं कि मुझे हंसी आती है कि मछली पानी में क्यों प्यासी है? चारों तरफ पानी ही पानी है, बाहर भीतर पानी ही पानी है; मछली पानी में ही पैदा होती है, पानी में ही जीती है, पानी में ही लीन हो जाती है; फिर भी प्यासी! तो कबीर कहते हैंः "मुझे आवै हांसी"; मुझे बड़ी हंसी आती है।
आदमी परमात्मा में ही पैदा होता है, जैसे परमात्मा सागर हो तुम्हारे चारों तरफ--और चारों तरफ ही नहीं, भीतर भी। वही हो भीतर, वही हो बाहर और फिर भी तुम अतृप्त रह जाओ। अहर्निश उसका नाद बज रहा हो और तुम्हें धुन भी न सुनाई पड़े, एक कण भी तुम्हारे कानों में न आए। चारों ओर उसी के फूल खिलते हों और तुम्हें कोई सुगंध न मिले। सब तरफ उसी की रोशनी हो और तुम अंधे ही बने रहो और अपने अंधेरे में ही जी लो।
इस उलझन को देख कर ज्ञानी हंसता भी है, रोता भी है। तुम पर उसे दया भी आती है और तुम्हारी अत्यंत हास्यास्पद स्थिति देख कर वह हैरान भी होता है।
और इसलिए अक्सर ज्ञानी पागल मालूम होगा। क्योंकि तुम उस आदमी को भी समझ सकते हो, जो रोता हो--दुखी होगा। तुम उस आदमी को भी समझ सकते हो, जो हंसता है--सुखी होगा। वह आदमी तुम्हारी समझ के बाहर हो जाता है, जो हंसता भी है, रोता भी है साथ-साथ!
अलग-अलग तुम समझ लेते हो। तुम भी हंसे हो, तुम भी रोए हो। हंसे हो, जब प्रसन्न थे; एक मनो-दशा थी। रोए हो, जब दुखी थे; एक दूसरी मनोदशा थी। कभी दिन था, कभी रात थी; कभी सुख था, की दुख था; कभी खिले थे, कभी मुरझा गए थे। उन दोनों स्थितियों को तुम जानते हो; लेकिन दोनों साथ-साथ तो तुमने या तो पागल में देखी हैं, या ज्ञानी में देखी हैं।
पागलखाने में जाओ तो तुम्हें पागल कभी-कभी, हंसते-रोते, साथ-साथ मिल जाएंगे। और ज्ञानी में फिर यही घटना घटती है।
तो ज्ञानी पागल जैसा लगता है। इसलिए बहुत बार ज्ञानियों से हम वंचित
ही रह गए हैं। क्योंकि बेबूझ मालूम पड़ती है, वह जो कहता है, पहेलियां मालूम होती हैं। वह जो कहता है, उससे कुछ सुलझता नहीं, और उलझता मालूम पड़ता है।

उसे देख कर ऐसा नहीं लगता है कि कोई समाधान मिल जाएगा। ऐसा लगता है कि तुम वैसे ही उलझे थे, इसे देख कर और उलझ जाओगे।
हंसता और रोता है साथ-साथ, इसका गहरा अर्थ है। इसका अर्थ है कि जिनको तुमने अब तक विपरीत की तरह जाना है, ज्ञानी उन्हें एक की तरह जानता है। उपनिषद कहते हैंः "एकं सत विप्रा बहुधा वदंति।" एक ही सत्य है; जानने वालों ने उसे बहुत ढंग से कहा। एक ही अवस्था है जीवन की, अभिव्यक्ति बहुत तरह से हो सकती है।
वही रोता है, वही हंसता है; वह एक ही है--एकं सत। वह सत्य एक ही है, जो हंसता है और रोता है। जो दुखी होता है, जो सुखी होता है, वह एक ही है। लेकिन तुम कभी उसे देख नहीं पाए। या तो तुमने उसे दुखी देखा, जब दुखी देखा, तब तुम सुख को भूल गए। और जब तुमने उसे सुखी देखा, तब तुम दुख को भूल गए। इसलिए तुम्हारे जीवन में अधूरापन है। तुम उसे अखंड न देख पाए, कि वही हंसता है, वही रोता है। और अगर तुम यह देख पाओ कि वही हंसता है, वही रोता है, तो तुम दोनों के पार हो गए। हंसना एक भाव-दशा रह गई, रोना भी एक भाव-दशा रह गई, तुम साक्षी हो गए। तुम जाग गए।
तो ज्ञानी जागता है। उस जागने में सभी अवस्थाएं सम्मिलित हो जाती हैं
एक साथ। तुम खंड-खंड हो, ज्ञानी अखंड है। इसलिए ज्ञानी के सुख में भी तुम दुख की छाया पाओगे। और ज्ञानी के दुख में भी तुम सुख का रंग देखोगे। बुद्ध की प्रतिमा को गौर से देखो या महावीर की प्रतिमा को गौर से देखो, तो तुम्हें एक बात बड़ी हैरानी की लगेगी। जितना तुम गौर से देखोगे... तुमने शायद गौर से न देखी होगी। जैन भी नहीं देखते। मंदिर में जाकर पूजा के फूल चढ़ा कर भाग खड़े होते हैं। फुरसत कहां है महावीर की तरफ देखने की? सुविधा कहां है? एक काम है, कृत्य है, निपटा देना है। जब महावीर के सामने हाथ जोड़ कर खड़े होते हैं, तब भी बाजार में होते हैं। तब भी मन कहीं और होता है। हो सकता है वेश्या के द्वार पर दस्तक दे रहा हो, तिजोड़ी के रुपये गिन रहा हो। मन कहीं और होता है। कौन देखेगा महावीर को?
अगर गौर से देखोगे, तो तुम देखोगे दोनों बातें एक साथ--कि महावीर की प्रतिमा में एक अखंड आनंद की भाव-दशा मालूम होती है। लेकिन वह आनंद उथला नहीं है। वह छिछला नहीं है। जैसा सड़क पर हंसते हुए लोगों का आनंद है, होटल में बैठे हुए मजाक करते लोगों का आनंद है, वैसा छिछला नहीं है। बड़ा गहरा है। जैसा बड़ी गहरी नदी बहती है, जिसमें आवाज भी नहीं होती। छिछली नदी बहती है, कंकड़-पत्थरों पर बड़ा शोरगुल करती है।
तो महावीर के आनंद में से खिलखिलाहट नहीं दिखाई पड़ेगी। एक बड़ी गहरी दशा है। और उस गहराई में अगर तुम उतरोगे तो पाओगे, एक बड़ी गहरी उदासी भी है। एक आनंद है, पर उदासी संयुक्त है। उदासी ही आनंद को गहराई देती है। एक सुख है, लेकिन दुख की छाया साथ है।
क्या मतलब है इसका? इसका मतलब यह है कि जो व्यक्ति भी पार हो गया, उसमें दोनों लीन हो जाते हैं; उसमें द्वैत लीन हो जाता है। वह एक को नहीं चुनता दो के बीच से; वह दोनों को ही एक साथ स्वीकार कर लेता है। इस स्वीकार में ही वह दोनों से भिन्न हो जाता है। वह दोनों से भिन्न हो जाना ही आत्मवान हो जाना है।
तो ज्ञानी हंस सकता है, रो सकता है एक साथ। या पागल हंस सकता है, रो सकता है एक साथ। ज्ञानियों और पागलों में थोड़ा सा साम्य है। ज्ञानियों और बच्चों में थोड़ा सा साम्य है। ज्ञानियों में और पशुओं में थोड़ा सा साम्य है। वह साम्य समझ लेना चाहिए।
जब ज्ञानी अपने ज्ञान की परम अवस्था में पहुंचता है, तो अज्ञानियों जैसा हो जाता है। क्योंकि अब उसे यह भी ख्याल नहीं रहता कि मैं जानता हूं। क्योंकि यह "मैं जानता हूं", यह भी अज्ञान का हिस्सा है। यह भी अहंकार है।
यह भी अज्ञानी की प्रतीति है कि मैं जानता हूं। यह भी अकड़ है। यह अकड़ भी खो जाती है। जो वस्तुतः जान लेता है उसकी यह अकड़ भी चली जाती है कि मैं जानता हूं।

कौन जानने वाला? किसको जानेगा? एक ही है। वही जाना जाता है, वही जानने वाला है। कौन किसको जानेगा? बात ही खो गई। धीरे-धीरे वह यह भूल ही जाता है कि मैं जानता हूं।
तब उसकी अवस्था में एक साम्य हो जाता है छोटे बच्चों जैसा, जो कुछ भी नहीं जानते। साम्य है, वैषम्य भी है। साम्य इतना है कि बच्चा भी नहीं जानता, ज्ञानी भी नहीं जानता। वैषम्य इतना है, कि बच्चे को अभी जानना पड़ेगा; ज्ञानी जान चुका। बच्चा अभी यात्रा के पहले है, ज्ञानी यात्रा के बाद। दोनों विश्राम कर रहे हैं। एक की यात्रा शुरू नहीं हुई, इसलिए विश्राम कर रहा है। एक की यात्रा पूर्ण हो गई, इसलिए विश्राम कर रहा है। दोनों यात्रा में नहीं हैं, इतना साम्य है। लेकिन बड़ा वैषम्य है।
पशुओं और ज्ञानियों में तुम्हें साम्य दिखेगा। बुद्ध की आंखों में कभी गौर से झांको और अपनी गाय की आंखों में झांको। तुम पाओगे, एक साम्य है। एक सरलता है, जो दोनों में एक जैसी है। न तो गाय की आंखों में चिंता तैरती, न बुद्ध की आंखों में। गाय की आंखें ऐसी हैं, जैसी गहरी झील। वैसी ही आंखें बुद्ध की भी हैं। वही नीलिमा, वही खुला आकाश गाय की आंखों में है, जो बुद्ध की आंखों में है। एक साम्य है ज्ञानियों में और पशुओं में, क्योंकि पशु अभी विकृत नहीं हुए--होंगे। ज्ञानी विकृति के पार उठ गया। पशु अभी पाप में नहीं पड़े, ज्ञानी पाप से उठ गया। पशु आज नहीं कल भ्रष्ट होंगे, ज्ञानी भ्रष्ट हो चुका; अब भ्रष्ट होने को जान चुका और सम्हल गया। साम्य है, वैषम्य है।
ऐसे ही पागलों और ज्ञानियों में साम्य और वैषम्य है। पागल बुद्धि से नीचे गिर गया, ज्ञानी बुद्धि के पार चला गया। तुम्हारे पास थोड़ी बुद्धि है, ज्ञानी के पास पूर्ण हो गई, पागल के पास पूरी नष्ट हो गई। तुम मध्य में अटके हो। पागल नीचे गिर गया, उसकी बुद्धि खो गई। अब वह सोच नहीं सकता, विचार नहीं सकता। ज्ञानी की बुद्धि पूर्ण हो गई। अब उसे सोचने की जरूरत न रही, विचारने की जरूरत न रही। नहीं कि सोच नहीं सकता; सोचने का प्रयोजन ही न रहा। विचार की कोई बात ही न रही। जान लिया जानने योग्य। विचार को उसने उठा कर किनारे रख दिया कि तू अब रुक। हो गया तेरा काम पूरा। ज्ञानी घर लौट आया। और पागल इतना भटक गया राह के किनारे कि कहीं भी बैठ कर उसने अपना घर मान लिया।
दोनों में एक साम्य है। और कई बार तो ऐसा हो सकता है, बहुत बार हुआ है;
और अभी पश्चिम में मनस्विद इस संदेह से भर गए हैं, कि पश्चिम के पागलखानों में कुछ ज्ञानी भी बंद हैं। पश्चिम के कुछ बड़े महत्वपूर्ण मनोचिकित्सक इस बात को एहसास कर रहे हैं कि पागलखानों में बंद सभी लोग पागल नहीं हैं। उनमें कुछ लोग तो बड़े गहरे अनुभव के लोग हैं और ऐसा लगता है, कि हम से ऊपर चले गए हैं। लेकिन हमें वे पागल जैसे लगते हैं; उनको भी उठा कर पागलखानों में बंद कर दिया है।
तुम थोड़ा सोचो, अगर रामकृष्ण परमहंस योरोप या अमरीका में पैदा हुए होते तो पागलखाने में होते; या किसी अस्पताल में उनकी चिकित्सा चल रही होती। इसके अतिरिक्त कुछ हो नहीं सकता था। क्योंकि जब रामकृष्ण समाधिस्थ होते थे, तो उस समाधि की अवस्था में ऐसा ही लगता था, जैसे एपिलेप्टिक फिट आ गया, जैसे मिर्गी आ गई। मिर्गी में और समाधि की कुछ अवस्थाओं में साम्य है। क्योंकि मिर्गी में भी आदमी का मस्तिष्क जराजीर्ण हो जाता है। और शरीर की विद्युत मस्तिष्क में दौड़ती है और मस्तिष्क एक तरह के विद्युत के शाक में डांवाडोल होकर गिर पड़ता है। मुंह से फसूकर गिरने लगता है। आदमी बेहोश हो जाता है।
समाधि में भी वैसी घटना घटती है कि आदमी इतने भीतर, इतने भीतर उतर जाता है कि शरीर से संबंध टूट जाता है। शरीर बड़े फासले पर हो जाता है। आदमी इतने भीतर हो जाता है कि शरीर को जितनी ऊर्जा मिलनी चाहिए स्वयं से, वह नहीं मिल पाती। शरीर तड़फने लगता है। जैसे मछली तड़फने लगे बिना पानी के, ऐसा जीवन की ऊर्जा न मिलने से शरीर तड़फने लगता है। मिर्गी जैसा मालूम होने लगता है।

रामकृष्ण के मुंह से फसूकर गिरने लगता था छह-छह घंटे। और कभी-कभी तो छह-छह दिन तक वे बेहोश पड़े रहते थे। कुछ लोगों ने पश्चिम में तो लिखा भी है कि हमें संदेह है, कि यह आदमी ज्ञानी है। यह तो इपिलेप्टिक फिट है। इसका तो इलाज होना चाहिए।
अगर मीरा को दुर्भाग्य से पश्चिम में पैदा होना पड़ता, तो वह भी किसी मनोवैज्ञानिक की कोच पर लेटी इलाज करवा रही होती। क्योंकि मनोवैज्ञानिक, मीरा जो कह रही है, जो हाव-भाव प्रकट कर रही है, उससे कुछ और ही समझता। क्योंकि कुछ साम्य है। वह साम्य वैसे ही है, जैसे कभी कोई पागल प्रेमी अपनी प्रेयसी के लिए दीवाना हो जाता है, होश खो देता है। या कोई प्रेयसी अपने प्रेमी के लिए पागल हो जाती है, होश खो देती है, लोक-लाज छोड़ देती है। वही घटना मीरा को घट गई थी। प्रेमी कहीं अज्ञात में था। वह हमें दिखाई नहीं पड़ता था। लेकिन जो मीरा दिखाई पड़ती थी, उस पर जो घटना घट रही थी, वह घटना वही थी जो अत्यंत कामाविष्ट अवस्था में घटती है। पश्चिम के लोग और पश्चिम के मनोवैज्ञानिक तो कहते, यह तो कामविकार है, सेक्स पर्वर्शन है। और फिर अगर मीरा के पद उनकी समझ में आ जाते तो वे कहते, पक्की हो गई बात। क्योंकि वह कहती, हे कृष्ण! तेरे लिए मैंने सेज सजाई है, फूल बिछाए हैं। मैं जाग कर तेरी राह देखती हूं, तू कब आएगा?
ये प्रतीक तो प्रेम के हैं, काम के हैं। मीरा कहती हैः तेरे लिए मैंने
सब लोक-लाज खो दी है। तेरे बिना मुझे अब कुछ और रस नहीं आता। तू ही दिखाई पड़ता है। तू ही मेरा प्राण है, तू ही मेरी श्वास है। और मीरा नाचती है। मनोवैज्ञानिक कहेगा कि कामविकार है। इसकी कामवासना तृप्त नहीं हो पाई। उसी कामवासना के आधार पर इसका मन विकृत हो गया है। ये गीत, यह रहस्य--न तो रहस्य है इसमें, न गीत है कुछ। यह सीधा दबा हुआ काम हैः सप्रेस्ड सेक्स। एक साम्य है। साम्य से भ्रांति में मत पड़ जाना। साम्य के साथ ही साथ वैषम्य भी है। जब कोई व्यक्ति कामातुर होता है, तो तुम उसमें पीड़ा देख सकते हो, दुख देख सकते हो, आनंद नहीं। वहां वैषम्य है। जब कोई स्त्री कामपीड़ित होती है, तो उसका चेहरा कुरूप हो जाता है, सुंदर नहीं। और मीरा जैसा सुंदर चेहरा हमने कभी देखा नहीं। जब कोई स्त्री कामपीड़ित होती है और उसका काम तृप्त नहीं होता, तो वह विक्षिप्त हो जाती है। लेकिन मीरा जैसा होश हमने नहीं देखा। और मीरा के जीवन में जो शांति की सुगंध है, वह तो कामवासना से कैसे उठेगी? जो आनंद का अहोभाव है--उसके चारों तरफ जैसे मंदिर चल रहा है, एक पवित्रता है। एक अलौकिक शुद्धि, एक अलौकिक कुंआरापन है। लेकिन उसके प्रतीक तो वही हैं।
कठिनाई यह है कि इस जगत में ही तो संत पैदा होता है, परम ज्ञानी पैदा होता है। उसमें तुमसे बहुत सी बातें मिलती-जुलती दिखाई पड़ेंगी। लेकिन उनसे तुम भूल में मत पड़ जाना। अगर तुम्हें कभी भी साम्य दिखाई पड़े, तो तुम तत्क्षण खोजना कि वैषम्य कहां है? और उस साम्य के नीचे छिपा हुआ तुम वैषम्य पाओगे।
पागल भी रोते हैं, हंसते हैं साथ-साथ; ज्ञानी भी रोता है, हंसता है साथ-साथ। पर दोनों की जीवन की गुणवत्ता अलग है। दोनों के जीवन का ढंग अलग है। ज्ञानी सुलझा हुआ है, पागल बिल्कुल उलझा हुआ है। पागल को सुलझाने के लिए दूसरों की जरूरत है। ज्ञानी दूसरों के उलझाव को सुलझा देता है। ज्ञानी को समाधान उपलब्ध हो गया है।
और तुम अगर उसके निकट बैठोगे और समझने की कोशिश करोगे, तो उसका समाधान तुम्हारी समझ में आना शुरू हो जाए भीतर सब तूफान शांत हो गया है। एक शून्य आविर्भाव हुआ है। प्रभु का मंदिर भीतर निर्मित हुआ है।
भीतर वह देखता है तो हंसता है। तुम्हारी तरफ देखता है तो रोता है।
उसकी करुणा रोती है, उसका ज्ञान हंसता है।
और बुद्ध ने कहा है, ज्ञानी के दो ही लक्षण हैं--प्रज्ञा और करुणा।
प्रज्ञा का अर्थ हैः स्वयं को जानना, आत्म-ज्ञान। और करुणा का अर्थ हैः दूसरे के लिए चिंता, फिकर। उसकी करुणा रोती है, उसकी प्रज्ञा हंसती है। और उसमें सब संयुक्त हो जाता है। वह अखंड है। उसके भीतर पुराने खंड नहीं रहे।

इसलिए ज्ञानी को समझना बड़ी अड़चन की बात है। इसलिए केवल वे ही ज्ञानी
को समझ पाते हैं, जो बड़ी श्रद्धा, बड़े प्रेम और बड़ी आस्था से उसके करीब आते हैं। जिनके मन में संदेह है, वे कैसे समझ पाएंगे? संदेह ने समझने का द्वार ही बंद कर दिया।
दुनिया में दूसरे को समझने का एक ही उपाय है और वह प्रेम है। वस्तुओं
को समझना हो तो विज्ञान सहयोगी हो सकता है। व्यक्तियों को समझना हो, तो प्रेम, तो काव्य, तो संगीत। अगर वस्तुओं को समझना हो, तो बिना प्रेम के भी समझ सकते हो। वैज्ञानिक को वस्तु को समझने के लिए कोई प्रेम की जरूरत नहीं है। जिन्होंने अणु खोजा, उनके लिए कोई प्रेम की जरूरत नहीं है। अणु खोजा जा सकता है।
लेकिन जिन्होंने जीवन के परम रहस्य खोले हैं, उन्हें समझने का उपाय
तो एक ही है, कि तुम्हारा हृदय उन्हें समझने की चेष्टा करे। वस्तुएं मस्तिष्क से समझी जाती हैं, व्यक्ति हृदय से। और ज्ञानी तो व्यक्तित्व की परम गरिमा है। वह तो गौरी शंकर है, वह तो आखिरी शिखर है। उसे समझने के लिए तो तुम्हें बहुत हृदयपूर्वक होकर आना पड़े, तो ही उसे समझ सकते हो। अगर तुम संदेह से, आलोचना से भरे हुए गए, तो समझना मुश्किल है।
मुल्ला नसरुद्दीन के पड़ोस में एक नये व्यक्ति आकर बसे। उसके तो देखने
का ढंग ही आलोचना है। सभी पड़ोसियों की वह निंदा मुझसे कर चुका है। नये पड़ोसी आए तो मैंने सोचा, देखें, क्या कहता है! तो उससे मैंने पूछा कि नये पड़ोसी आ गए, क्या खबर है उनके संबंध में? क्या सोचते हो?
उसने कहाः ग्यारह भाई हैं। पहला भाई राजनेता है और दूसरा उससे भी गया बीता। तीसरा भाई विश्वविद्यालय में प्रोफेसर है और चौथा उस से भी गधा। पांचवां मनोवैज्ञानिक है, छठवां भी पागल। सातवां दुकानदार है, आठवां भी चोर। नौवां कवि है और दसवां भी लफंगा। और ग्यारहवां अपने बाप-जैसा ही बाल ब्रह्मचारी है।
एक देखने का ढंग है, जहां चीजें बुरी से बुरी, और बुरी से बुरी दिखाई पड़ती हैं। एक चश्मा है संदेह का, निंदा का, घृणा का, वैमनस्य का, दुर्भाव का, वहां हर चीज अपने बुरे से बुरे रूप में दिखाई पड़ती है।
एक सदभाव की वृति है...
झेन फकीर हुआ रिंझाई। एक गांव में मेहमान था। एक आदमी से उसने कहा कि मैंने सुना है, तुम्हारे गांव में एक संगीतज्ञ है। एक बांसुरीवादक है, उसके स्वर बड़े अनूठे हैं। कहते हैं कि ऐसे स्वर कभी कृष्ण के थे या यूनान में हुए आर्फ्यूअस के।
उस आदमी ने कहाः छोड़ो बकवास! वह आदमी क्या बांसुरी बजाएगा? वह निपट बेईमान और चोर है।
दूसरे आदमी से भी उसके बाद... वह आदमी बैठा ही था, कि दूसरा आदमी आया। रिंझाई ने उससे भी कहा कि मैंने सुना है, तुम्हारे गांव में एक चोर है, बेईमान है, बहुत बुरा आदमी है।
उस आदमी ने कहाः मैं समझ गया, तुम किसकी बात कर रहे हो। लेकिन मैं तुमसे कहता हूं कि वह चोर हो नहीं सकता, वह बेईमान हो नहीं सकता। एक बार उसकी बांसुरी सुन लो, तुम भी विश्वास कर लोगे कि वह चोर हो नहीं सकता; अफवाह है। वह इतनी सुंदर बांसुरी बजाता है, चोर हो कैसे सकता है?
एक ही आदमी! वह दोनों हो सकता है। चोर भी हो, बेईमान भी हो, बांसुरी भी बजाता हो, कोई अड़चन नहीं है। बांसुरी चोरी में कोई बाधा नहीं डालती। चोरी की कोई अड़चन नहीं है बांसुरी में। उससे कोई प्रयोजन भी नहीं है।
लेकिन ये दो आदमी हैं। एक आदमी इसलिए नहीं मान सकता कि वह अच्छा बांसुरीवादक है, क्योंकि चोर है। और एक आदमी इसलिए नहीं मान सकता कि वह चोर हो सकता है, क्योंकि वह अच्छा बांसुरीवादक है।
ये आस्तिक और नास्तिक की दृष्टियां हैं। ये श्रद्धा और संदेह की दृष्टियां हैं।
ज्ञानी को समझना हो, तो बड़े भाव और बड़े प्रेम से ही समझा जा सकता है। अन्यथा वह पागल मालूम पड़ेगा। रामकृष्ण के पास जाओ, तो संदेह लेकर मत जाना; अन्यथा लगेगा कि ये मिर्गी के मरीज हैं। मीरा के पास जाओ, तो फ्रायड की

बुद्धि लेकर मत जाना; अन्यथा लगेगा कि ये मीरा मानसिक रोग से ग्रस्त है। महावीर के पास जाओ, तो मनोविश्लेषण करने मत जाना; नहीं तो लगेगा यह आदमी नग्न खड़ा है, एक्झिबीशनिस्ट है। पुलिस को खबर करो। यह आदमी अपने को नंगा दिखाने में उत्सुक है।
एक बीमारी होती है, मनोवैज्ञानिक उसको एक्झिबीशनिज्म कहते हैं कि कुछ लोग बीमार होते हैं। उनको मजा आता है इसमें कि वे अपना नग्न रूप तुम्हें दिखा दें। एकांत में, सड़क पर चलते हुए कोई न देखेंगे, वहां वे जल्दी से अपना पाजामा गिरा देंगे, ताकि तुम उन्हें नग्न देख लो। वह रोग है।
महावीर नग्न खड़े हैं। पाजामा ही नहीं गिराते, बिल्कुल ही सब गिरा कर खड़े हैं--जरूर रुग्ण हैं। कहीं कोई गड़बड़ है।
महावीर के पास मनोवैज्ञानिक की तरह मत जाना। क्योंकि तुम तब जा ही न सकोगे। ये इतनी महिमा-मंडित स्थितियां हैं, कि इनके पास तुम्हें जाना हो, तो तुम्हें पर्वत-शिखर की यात्रा करनी होगी। और अपनी बुद्धि के सारे बोझ नीचे रख देने होंगे। अन्यथा तुम पर्वत-शिखरों तक जा न सकोगे। फिर तुम जो निर्णय लेकर लौट आओगे, वे तुम्हारे अपने ही निर्णय होंगे। उनका महावीर से कोई संबंध न होगा।
ज्ञान इस जगत में सबसे बड़ी पहेली है, अगर तुम्हारी जगह से देखा जाए। असंभव घटता है ज्ञानी में। जो नहीं घटना चाहिए, वह घटता है। तुम्हें भरोसा नहीं आता, ऐसी घटना घटती है। क्योंकि ज्ञानी का अर्थ है, जिसके भीतर परमात्मा घटा। वह असंभव क्रांति है। वह असंभव क्रांति है। उस पर भरोसा आता नहीं। यह हो कैसे सकता है कि किसी में परमात्मा घट जाए?
तुम्हारा मन इनकार करता है। लेकिन उस इनकार से तुम्हीं खोओगे कुछ, ज्ञानी का कुछ भी नहीं खोता है। उस इनकार से तुम ही बंद हो जाओगे। उस इनकार से तुम्हारा ज्ञानी से संबंध निर्मित नहीं हो पाएगा। और उस संबंध के निर्मित होने में तुम्हारी भी क्रांति की संभावना छिपी थी। जो असंभव ज्ञानी के भीतर घटा है, वह तुम्हारे भीतर भी घट सकता है। बीज रूप से तुम भी वही हो। "तत्वमसि श्वेतकेतु"--उपनिषद कहते हैं, "तू भी वही है श्वेतकेतु।" लेकिन यह होना तभी संभव है, जब तुम्हें कोई महिमा-मंडित व्यक्ति पर भरोसा आ जाए। वह भरोसा ही तुम्हारे भीतर के बीज को तोड़ेगा, अंकुरित करेगा, तुम भी खुले आकाश में उठोगे। कभी संभावना है, कि तुम्हारे भी फूल खिल सकें।

दूसरा प्रश्नः क्या हम सब की मनःस्थितियों को देख कर भी आप कबीर की भांति कह सकते हैं, "साधो सहज समाधि भली?"

कबीर ने तुम्हारी मनःस्थिति देख कर ही कहा था। तुम्हारे जैसे ही लोग कबीर के पास इकट्ठे थे। अलग तरह के लोग लाओगे कहां से?
दो ही तरह के लोग हैं। ज्ञानी हैं, अज्ञानी हैं। और जब भी कभी कोई ज्ञानी का दीया जलता है, तो जो दीये की खोज में हैं, रोशनी की खोज में हैं; वे इकट्ठे हो जाते हैं। तुम ही बुद्ध के पास थे, तुम ही महावीर के, तुम ही कबीर के। तुम्हारे जैसे ही लोग!
तुम से ही कहा था "साधो सहज समाधि भली;" किसी और से नहीं। अगर किसी और
से कहा होता तो मैं तुम्हें समझाता ही नहीं, फायदा ही क्या? अगर किसी और को कहा था, तो तुमको समझाने की क्या जरूरत है? तुमसे ही कहा था। उस बार तुम चूक गए; सोचता हूं, शायद इस बार समझ जाओ!
और क्यों कहा था, "साधो सहज समाधि भली?"
क्योंकि तुम सब के मन में यह ख्याल है कि समाधि बड़ी कठिन बात है। कठिन
ही नहीं, असंभव! और यह ख्याल तुमने ही पैदा कर लिया है। कोई ज्ञानी नहीं कहता कि समाधि कठिन बात है। यह तुमने ही पैदा कर लिया है। यह तुम्हारी तरकीब है।
तुम्हें जो काम नहीं करना, उसको तुम असंभव कहते हो। जिससे तुम्हें बचना है, उसे तुम कठिन कहते हो। जिस तरफ तुम्हें जाना ही नहीं, उस तरफ तुम

कहते हो, यह होने वाला ही नहीं; यह बहुत मुश्किल है। यह अपने वश के बाहर है।
जो वश के भीतर है, वही हम करें।
यह तो वश के बाहर है--मोक्ष, निर्वाण, आनंद। सुख तो मिल नहीं रहा हमें, आनंद कैसे मिलेगा? यह तो असंभव है। हम तो सुख खोज लें। यह परम-धन मिलेगा, नहीं मिलेगा! सांसारिक धन ही नहीं मिल पा रहा है; पहले तो हम इसे खोज लें। क्षुद्र पर ही हाथ नहीं आ रहे, विराट पर कैसे आएंगे? क्षुद्र का ही द्वार नहीं खुल रहा, चाबी नहीं लग रही, विराट का द्वार कैसे हम से खुलेगा?
कठिन है। असंभव है। ऐसे तुम स्थगित कर देते हो। इस तरकीब से तुम टाल देते हो। तुम ध्यान रखना इस बात का कि जब तुम किसी चीज को कठिन कह देते हो, तो तुम्हारे प्रयोजन क्या हैं? क्यों तुम कठिन कहते हो? वस्तुतः कठिन है या तुम बचना चाहते हो? या तुम कहते हो अभी समय मेरा नहीं आया, अभी मुझे करना नहीं है, इसलिए कठिन कहते हो?
मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, शांति चाहिए। उनसे मैं कहता हूं, थोड़ा ध्यान करो। वे कहते हैं, समय नहीं है।
अशांति के लिए समय है, और शांति के लिए समय नहीं! और शांति चाहिए, मुफ्त चाहिए। कोई दे दो। प्रसाद में कहीं बटती हो, मिल जाए।
इन्हीं लोगों को मैं सिनेमा में बैठे देखूं, इन्हीं लोगों को होटल में बैठे देखूं; ये ही ताश खेलते हैं। इनको ही तुम घर में बैठे देखो, उसी अखबार को तीसरी बार पढ़ रहे हैं! सुबह दो बार पढ़ चुके हैं। अब कुछ काम नहीं है, उसी को फिर पढ़ रहे हैं। इनसे तुम कभी मिलो घर पर तो इनसे पूछो कि क्या कर रहे हैं? तो कहते हैं क्या करें, समय नहीं कटता।
और जब इनसे कहो ध्यान करो, तो ये ही सज्जन, जो समय नहीं कटता, जो ताश खेल-खेल कर समय काट रहे हैं, सिनेमा देख-देख कर समय काटते हैं, हजार तरह की मूर्खताएं कर के समय काटते हैं; अचानक उनके मुंह से एकदम निकलता है, समय नहीं है।
और ऐसा नहीं कि वे सोच कर कह रहे हों। यह हो ही कैसे सकता है, कि समय न हो? क्योंकि समय तो सभी के पास बराबर है। चौबीस घंटे से ज्यादा न तो बुद्ध के पास है, न तुम्हारे पास है, न कम है। अगर चौबीस घंटे में ही कोई बुद्धत्व को उपलब्ध हो गया तो तुम भी चौबीस घंटे में ही उपलब्ध हो सकते हो। और तुम यह आशा मत रखो कि तुम्हें कोई पच्चीसवां अतिरिक्त घंटा दिया जाएगा, तब तुम बुद्धत्व को उपलब्ध होओगे।
चौबीस ही घंटे हैं। और तुम सोचते हो, कि क्या कर रहे हो तुम? आठ घंटे
कम से कम सोते हो। अगर ध्यान में सच में ही उत्सुकता है, और जगह से न काट सको, नींद में से एक घंटा काट सकते हो। नहीं, लेकिन नींद में से कैसे काटोगे?
छह घंटे दफ्तर में रहते होओगे, पांच घंटे। दो-चार घंटे खाना-पीना, दफ्तर आने-जाने में लग जाते हैं। बाकी समय का क्या कर रहे हो? आठ घंटे सो लेते हो, आठ घंटे समझो दफ्तर में लगा देते हो, चार घंटे खाना-पीना स्नान में लग जाते हैं; बाकी चार घंटे बचते हैं। चार घंटे भी मैं नहीं कहता। कहता हूं, एक घंटा काफी है।
एक घंटा भी तुम्हारे पास नहीं है? तो फिर कौन फिल्म देख रहा है? सिनेमा घरों के बाहर जो क्यू लगे हैं, उनमें कौन खड़ा है? तुम को ही खड़ा देखता हूं। ताश कौन खेल रहा है? अखबार कौन पढ़ रहा है? रेडिओ कौन सुन रहा है? टेलिविजन कौन देख रहा है? होटलों में बैठ कर गपशप कौन कर रहा है? क्लब किसने बनाए हैं? कौन लायंस क्लब में बैठा है? कौन रोटरी क्लब में जाकर फिजूल की बातें कर रहा है? पूना क्लब में तुम्हीं बैठे मिलते हो। यह सब किसके लिए चल रहा है रागरंग?
और जब भी तुमसे मैं पूछता हूं, तो तुम कहते हो समय नहीं है। तुम्हें होश भी नहीं है, तुम क्या कर रहे हो। तुम टाल रहे हो। तुम बात यह कह रहे हो कि समय है ही नहीं; इसलिए करने का कोई सवाल न रहा। जिम्मेवारी समाप्त हो गई।
अशांति पैदा करने के लिए तुम्हारे पास चौबीस घंटे हैं। शांति पैदा करने के लिए तुम्हारे पास एक घंटा नहीं है। परमात्मा को लोग कहते हैं बहुत

कठिन है। तुमने ही कहानियां गढ़ ली हैं। तुम ही कहते हो कि जन्मों-जन्मों का पाप जब कटेगा, तब परमात्मा मिलेगा।
किस नासमझ ने तुमसे कहा है? तुम ही अपने शास्त्र बना लेते हो। तुम बड़े कुशल हो! अगर जन्मों-जन्मों का पाप कटने में उतना ही समय लगेगा, जितने में तुमने पाप किया, तब तो परमात्मा कभी भी नहीं मिलेगा। जन्मों-जन्मों से तुम पाप कर रहे हो, जन्मों-जन्मों तक काटने में लगेगा; अगर इसको हम मध्य-बिंदु समझ लें, तो अतीत एक अनंतता है। क्योंकि कभी कोई जगत का प्रारंभ तो हुआ नहीं। तुम सदा से ही हो और पाप कर रहे हो। और आधा समय तो तुमने पाप में बिता दिया, अब आधा तुम काटने में बिताओगे, परमात्मा मिलेगा कैसे? कब मिलेगा? और जब तुम अपने पाप काट रहे हो, तब भी तुम पाप करना बंद कर दोगे क्या?
इस बीच भी तो पाप जारी रहेंगे, कर्म तो लगते ही रहेंगे। कुछ तो करोगे! उनका कर्म-बंध होता रहेगा। तब तो छुटकारा कभी नहीं दिखाई पड़ता।
नहीं, ये तुमने ही सिद्धांत गढ़ लिए हैं अपने को समझाने के लिए। वास्तविक अवस्था बिल्कुल अन्य है। जैसे अंधेरे में दीया जलता है और हजारों साल का अंधेरा क्षण भर में मिट जाता है, वैसे ही हजारों साल के पाप ध्यान के दीये के जलते ही मिट जाते हैं।
क्योंकि तुमने जो पाप किए हैं, वे तुमने मूर्च्छा में किए हैं। उनका तुम पर कोई दायित्व भी नहीं है। बेहोशी में किए हैं, नशे में किए हैं। शराब पीए थे और कर लिए। कोई अदालत भी तुम पर मुकदमा नहीं चला सकती; परमात्मा तो तुमको कैसे नरक में डालेगा?
मैंने सुना है, अकबर निकलता था एक रास्ते से; और एक आदमी ने अपने छप्पर
पर खड़े होकर उसे गालियां देनी शुरू कर दीं। आदमी पकड़ लिया गया, जेलखाने में डाल दिया गया। दूसरे दिन अकबर के सामने लाया गया। अकबर ने पूछा कि क्या हुआ? क्यों तू गालियां बक रहा था? और किसलिए तूने यह उपद्रव किया? उस आदमी ने कहा कि क्षमा करें; मैंने गाली बकी ही नहीं। अकबर ने कहाः मैं खुद मौजूद था, किसी गवाह की कोई जरूरत नहीं। तू गाली बक रहा था।
उसने कहाः मैं फिर आप से कहता हूं, गाली आपने सुनी होगी, किसी ने बकी होगी, लेकिन मैंने नहीं बकी, क्योंकि मैं शराब पीए था, मुझे होश ही न था। क्या करोगे इस आदमी को? अकबर ने कहाः अगर होश ही न था तो छोड़ दो। आगे
से थोड़ा होश रखने का ख्याल रख।
गाली देने के लिए जिम्मेवारी खत्म हो गई। होश ही न हो... छोटे बच्चों
को अदालत भी दंड नहीं देती क्योंकि उन्हें होश नहीं है। शराबी को अदालत भी छोड़ देती है, क्योंकि क्या करोगे? पागल को कोई अदालत दंड नहीं देती। वह हत्या भी कर दे, तो भी उसको क्या दंड दिया जा सकता है? उसे पता ही नहीं, वह क्या कर रहा है।
तुमने जन्मों-जन्मों में जो किया है, उसका तुम्हें पता है? या तो तुम बच्चे हो, या शराब में हो, या पागल हो। नींद में तुमने किया है। सपना था तुम्हारा अतीत। उसी सपने को हम माया कहते हैं। माया का अर्थ ही यह है, कि जिसमें तुमने जो भी किया है, वह सपने के बराबर है। उसका कोई मूल्य नहीं है। तब तक जागे नहीं हो, तब तक मूल्य है। रात सपना देखते हो; जब तक जागे नहीं, तब तक सपने में मूल्य है। तुमने एक आदमी की हत्या कर दी है और तुम घबड़ा गए और भाग रहे हो और बच रहे और छिप रहे हो पहाड़ों में और तब सपना टूट गया! अब तुम क्या करोगे? छिपोगे, डरोगे, कि पुलिस कहीं पकड़ न ले? तुम सिर्फ हंसोगे; तुम कहोगे, सपना टूट गया। सपने में हत्या की थी, सपने में ही भाग रहा था।
माया का केवल अर्थ इतना है कि सोए हुए तुमने सारे कृत्य किए हैं। सोए हुए ही तुम उनसे बचने की कोशिश कर रहे हो।
और सारी साधना का सूत्र एक है कि तुम जाग जाओ। जागते ही, सोए हुए तुमने
जो किया है, वह व्यर्थ हो जाता है। वह सपने से ज्यादा नहीं है।
लेकिन तुम्हारी तरकीबें हैं। तुम कहते हो कि जब तक अनंत जन्मों के पाप न कटेंगे, तब तक कैसे ज्ञान होगा? ज्ञान कहीं तत्क्षण हो सकता है?
और मैं तुमसे कहता हूं, ज्ञान जब भी होता है, तत्क्षण होता है। ज्ञान कोई क्रमिक प्रक्रिया नहीं है कि धीरे-धीरे, धीरे-धीरे, धीरे-धीरे होता

है। तुम जब सुबह जागते हो तो धीरे-धीरे जागते हो? एक क्षण पहले नींद थी और एक क्षण बाद होश है। दोनों के बीच में कोई ऐसी जगह होती है, जब तुम कह सको कि आधा होश है, आधा होश नहीं है? क्योंकि अगर आधा होश भी है तो नींद टूट गई। अगर तुम कहो कि जरा सा होश है, बाकी नींद है; तो भी नींद टूट गई। क्योंकि जिसको इतना भी पता है, कि जरा सा होश है, वह जाग गया।
ऐसी ही घटना घटती है अंतस के लोक में। तुम जाग जाते हो क्षण में।
लेकिन तुम कहते हो--असंभव, कठिन, मुश्किल! तुम कहते हो मैं पापी; मुझसे कैसे होगा? मैंने बड़े बुरे कर्म किए हैं, मैं कैसे परमात्मा को पा सकता हूं?
सभी ने कर्म किए हैं और सभी ने बुरे कर्म किए हैं। क्योंकि बेहोशी में कोई अच्छे कर्म कर ही कैसे सकता है? पाप से परमात्मा को पाने में कोई बाधा नहीं है। जब तक तुमने परमात्मा को नहीं पाया है, तब तक पाप जारी रहेगा। परमात्मा से पाप में बाधा पड़ती है, पाप से परमात्मा में बाधा नहीं पड़ती। और अगर पाप से परमात्मा में बाधा पड़ जाए तो पाप बड़ा हो गया है, परमात्मा छोटा हो गया। पाने-योग्य भी न रहा। दो कौड़ी का हो गया। फेंक दो उसे कचरे-घर में।
जब प्रकाश आता है, तो अंधेरे में बाधा पड़ती है। अंधेरे से प्रकाश में बाधा नहीं पड़ती। दीया जला, अंधेरे में बाधा पड़ जाती है। लेकिन क्या तुम अंधेरा ला सकते हो बाहर से टोकरियों में भरकर और दीये पर पटक सकते हो, कि दीया बुझ जाए अंधेरे से? तुम अंधेरा कैसे टोकरियों में लाओगे? तुम दीये के पास अंधेरे को न ला सकोगे। कोई उपाय नहीं है।
तुम्हारे ध्यान के पास कभी पाप नहीं आता। और ध्यान बाधा बनता है पाप में, पाप बाधा नहीं बनता ध्यान में। लेकिन तुम बड़े होशियार हो। तुम अपने को बचाने की कोशिश में लगे हो।
इसलिए तुम कहते हो कि बड़ा कठिन है। फिर कठिन है, तो बड़े कठिन मार्ग तुम निर्मित करते हो। जहां एक कदम रख कर पहुंचा जा सकता है, वहां तुम हजारों मील की यात्रा करके पहुंचते हो। वह भी पोस्टपोन करने का, स्थगित करने का उपाय है। तुम कहते हो पूजा करेंगे, प्रार्थना करेंगे, यज्ञ करेंगे, क्रियाकांड करेंगे, तब कहीं पहुंचेंगे।
इससे कुछ संबंध नहीं पहुंचने का। यह तुम करते रहो। इससे कुछ लेना- देना नहीं पहुंचने का। यह तुम जन्मों-जन्मों तक करते ही रहे हो। इसलिए कबीर जैसे लोग, जिन्होंने जान लिया, वो कहते हैं, साधो सहज समाधि भली। व्यर्थ ही असहज मत बनो। व्यर्थ ही शीर्षासन करके खड़े मत हो जाओ; इससे कुछ हल नहीं है। व्यर्थ के उपक्रम मत करो।
बड़ी सीधी है बात, सीधा है सत्य। होना भी चाहिए। असत्य तिरछा है, आड़ा टेढ़ा है सत्य तो सीधा और सरल है। सत्य तो बिल्कुल निकट है, असत्य दूर है।
सत्य में तो कोई उलझन नहीं है। सिर्फ तुम्हारा मन भर उलझा हो, तो उलझन दिखाई पड़ती है। मन सुलझ जाए, सत्य बिल्कुल साफ है। सदा से सुलझा हुआ है। कभी उलझा न था।
तो कबीर कहते हैंः "साधो सहज समाधि भली।" सहज समाधि का अर्थ हैः तुम उठो, बैठो, चलो, जीओ; यही तुम्हारी जीवन-साधना बन जाए। इससे अन्यथा कुछ करने की जरूरत नहीं। तुम उठो तो होश से, चलो तो होश से, बैठो तो होश से। तुम बाजार में रहो भला, लेकिन स्मरण परमात्मा का बना रहे बस! मंदिर जाने से कुछ हल नहीं है। क्योंकि मंदिर भी जाकर क्या होगा अगर स्मरण बाजार का बना रहा? और वैसा ही बना रहता है। कोई फर्क नहीं पड़ता।
मैंने एक सूफी कहानी सुनी है, कि एक आदमी बहुत भक्त था एक सूफी फकीर का। लेकिन उसकी पत्नी बड़ी अधार्मिक थी। न तो कभी धर्म-चर्चा सुनती, न संतों के दर्शन को जाती, न मंदिर, पूजा, प्रार्थना, मस्जिद इससे कुछ लेना- देना था। पति बहुत चिंतित था कि किसी तरह पत्नी भी धार्मिक हो जाए। तो उसने अपने गुरु को कहा, कि मैं तो थक चुका। अब आप ही एक दिन घर आएं; शायद आप ही उसे जगा सकें।
गुरु हंसा; लेकिन निमंत्रण दिया था तो वह दूसरे दिन सुबह आया। सुबह-सुबह पत्नी बुहारी लगा रही थी और पति अपने ध्यान-गृह में बैठ कर ध्यान कर

रहा था। उस सूफी फकीर ने कहा कि तुम्हारे पति ने मुझे निमंत्रण दिया था, तो मैं आ गया सुबह-सुबह। मैं तुमसे पूछता हूं कि तुम ध्यान में क्यों उत्सुक नहीं हो? वह पत्नी हंसने लगी। उसने कहाः आप समझ कर भी पूछ रहे हैं। मैं आपसे कहती हूं कि मेरे पति को थोड़ा ध्यान में लगाओ।
सूफी हंसने लगा। उसने कहा कि तू मुझे बता, तेरे पति अभी कहां हैं? उस पत्नी ने कहा कि मेरे पति इस समय बाजार में हैं। और एक जूते की दुकान पर जूता खरीद रहे हैं। और चमार से उनका झगड़ा हो गया है और मारपीट की नौबत आ गई है।
पति सुन रहा था अपने ध्यान कक्ष में बैठा हुआ कि यह तो बिल्कुल सरासर... मैं ध्यान कक्ष में बैठा हूं। सुबह-सुबह अभी दुकान खुली भी नहीं, बाजार भी नहीं खुला और यह पत्नी सरासर झूठ बोल रही है!
वह भागा हुआ बाहर आया। उसने कहाः मैं घर में मौजूद हूं। गुरु से कहाः देख लें इसको--यह क्या अवस्था मेरी कर रखी है! यह कह रही है, कि बाजार... बाजार अभी खुला नहीं, चमारों की दुकानें अभी बंद हैं। और मैं यहां ध्यान कर रहा हूं और यह कह रही है चमार की दुकान पर...
उस फकीर ने कहा कि तुम आंखें बंद करो और ठीक से देखो क्योंकि मैं भी मानता हूं, तुम्हारी पत्नी ठीक है।
तब तो वह घबड़ाया। उसने आंख बंद की और उसने गौर किया तो उसने पाया कि पत्नी ठीक कह रही है। जूते फट गए हैं और वह कल रात से सोच रहा है कि बाजार खरीदने जाना है। तो ऐसे बैठा था ध्यान करने, माला फेर रहा था, लेकिन वह माला हाथ में ही फिर रही थी। भीतर कल्पना में वह बाजार पहुंच गया था और चमार की दुकान पर जूते खरीद रहा था। मोल-भाव हो रहा था और झगड़ा बढ़ गया। वह बहुत ज्यादा दाम मांग रहा था और वह कम बता रहा था, और फजीहत हो गई ज्यादा और एक दूसरे के गर्दन को पकड़ लिया। और जब इस पत्नी ने बताया फकीर को, तब वह गर्दन को पकड़े ही था; मार-पीट होने के करीब थी।
तुम अपने मंदिर में बैठ कर भी चमार की दुकान पर हो सकते हो। तुम चमार
की दुकान में होकर भी मंदिर में हो सकते हो। इसलिए मंदिर में होने का सवाल नहीं है; सवाल तुम्हारे चित्त के गुण का है, तुम्हारे स्मरण का है। तुम कहां हो यह सवाल नहीं है; तुम क्या हो, वही सवाल है।
तुम दुकान पर बैठो, लेकिन स्मरण परमात्मा का रहे। तुम रास्ते पर चलो, लेकिन स्मरण परमात्मा का रहे। तुम भोजन करो, लेकिन स्मरण परमात्मा का रहे। तुम बिस्तर पर सोओ, लेकिन स्मरण परमात्मा का रहे। परमात्मा का स्मरण धीरे-धीरे रोएं-रोएं में समा जाए।
और अगर परमात्मा को मानना कठिन हो, जो कि बहुत लोगों के लिए कठिन है।
वह भी तुमने कठिन बना रखा है मानना। क्योंकि मानेंगे तो फिर खोजना पड़ेगा। मानेंगे तो फिर बदलना पड़ेगा। इसलिए अधिक लोग नास्तिक हैं। नास्तिकता का कुल इतना ही अर्थ है कि हम मानते ही नहीं, इसलिए झंझट ही नहीं खोज की। फिर जो हम कर रहे हैं, ठीक है। उससे अन्यथा कुछ हो ही नहीं सकता।
तुम मानते भी नहीं हो। मानने की कोई जरूरत भी नहीं है। नास्तिक हो अगर तुम, तो परमात्मा का स्मरण मत करो, अपना स्मरण करो। असली सवाल स्मरण है-- किसका, यह भी सवाल नहीं है। राम का, रहीम का, कृष्ण का, बुद्ध का--यह भी सवाल नहीं। अपना ही करो।
अंग्रेज कवि हुआ, टेनिसन। और उसने अपने संस्मरण में एक बड़ी अनूठी बात लिखी है। उसने लिखा है कि मैं छोटा बच्चा था और मुझे घर में जल्दी सोने भेज दिया जाता। घर के लोग तो देर तक जागते, लेकिन बच्चे को जल्दी भेज देते। मुझे नींद न आती और कोई उपाय न था और अंधेरे में मुझे डर भी लगता। अंधेरा कर देते कमरे में और दरवाजा बंद कर देते और कहते कि सो जाओ। और सोना पड़ता। और नींद न आती और अंधेरे में भूत-प्रेत दिखाई पड़ते और डर भी लगता।
तो मैं आंख बंद करके, कि क्या करूं--पिता नास्तिक थे इसलिए कोई प्रार्थना कभी सिखाई नहीं थी। परमात्मा का कोई नाम नहीं सिखाया, तो क्या करूं? तो मैं अपना ही नाम दोहराता: टेनिसन-टेनिसन-टेनिसन। उससे थोड़ी हिम्मत बढ़ती, थोड़ी गर्मी आती और टेनिसन, टेनिसन, टेनिसन दोहराते-दोहराते मैं सो जाता।

धीरे-धीरे यह अभ्यास हो गया। और जब भी चिंता पकड़ती, कोई तनाव होता तो टेनिसन कहता है, बस तीन बार भीतर आंख बंद करके मुझे इतना ही कहना पड़ताः टेनिसन, टेनिसन, टेनिसन; और सब शांत हो जाता। मंत्र हो गया अपना ही नाम। और टेनिसन ने लिखा है कि मैं इससे बड़े गहरे ध्यान में उतरने लगा। यह
तो मुझे बहुत बाद में पता चला कि इसे लोग ध्यान कहते हैं।
अपने ही नाम का स्मरण भी तुम्हें परमात्मा तक पहुंचा सकता है। यह सवाल नहीं है, क्योंकि सभी नाम उसके हैं। तुम्हारा नाम भी उसी का है। टेनिसन भी उसी का नाम है। अल्लाह उसी का नाम है, राम उसी का नाम है। कोई दशरथ के बेटे ने ठेका लिया है? तुम भी किसी दशरथ के बेटे हो। तुम्हारा नाम भी उसी का नाम है।
तुम अपना ही नाम भी अगर दोहराओ, तो भी परिणाम वही होगा। क्योंकि असली सवाल बोधपूर्वक भीतर स्मरण को जगाने का है। अगर टेनिसन, टेनिसन, टेनिसन या राम, राम, राम कुछ भी तुम दोहराते हो, उस के दोहराने के क्षण में ही भीतर एक शांत अवस्था बनने लगती है। और उसको दोहराते-दोहराते तुम्हें यह दिखाई पड़ने लगता है कि दोहराने वाला अलग है और जो दोहराया जा रहा है, वह अलग है। तुम धीरे-धीरे साक्षीभाव को उत्पन्न होने लगते हो।
स्मरण साक्षीभाव की सीढ़ियां हैं। जितना स्मरण गहरा होता है, उतने तुम साक्षी-भाव से भर जाते हो। इसे तुम करके देखो। अगर न हो परमात्मा पर भरोसा, कोई चिंता नहीं, तुम अपना ही स्मरण करो।
बुद्ध ने यही कहा है, कि न कोई परमात्मा है, न कोई आकाश में बैठा हुआ नियंता है। तो साधक क्या करें? तो बुद्ध ने कहा है, होश से चले, होश से बैठे, होश से उठे।
बुद्ध का एक भिक्षु आनंद पूछने लगा; वह एक यात्रा पर जा रहा था और उसने पूछा कि भगवान, कुछ मुझे पूछना है। स्त्रियों के संबंध में मन में अभी भी कामवासना उठती है; तो स्त्रियां मिल जाएं तो उनसे कैसा व्यवहार करना?
तो बुद्ध ने कहाः स्त्रियां अगर मिल जाएं तो बचकर चलना। दूर से निकल जाना।
आनंद ने कहाः और अगर ऐसी स्थिति आ जाए कि बचकर न निकल सकें?
तो बुद्ध ने कहाः आंख नीची झुका कर निकल जाना।
आनंद ने कहाः और यह भी हो सकता है कि ऐसी स्थिति आ जाए कि आंख भी झुकाना संभव न हो। समझो कि कोई स्त्री गिर पड़ी हो और उसे उठाना पड़े। या कोई स्त्री कुएं में गिर पड़ी हो और जाकर उसको सहारा देना पड़े; या कोई स्त्री बीमार हो; ऐसी स्थिति आ जाए कि आंख बचा कर भी चलना मुश्किल हो जाए?
तो बुद्ध ने कहाः छूना मत।
और आनंद ने कहाः अगर ऐसी अवस्था आ जाए कि छूना भी पड़े?
तो बुद्ध ने कहा कि जो मैं इन सारी बातों से कह रहा हूं, उसका सार कहे देता हूं: छूना, देखना, जो करना हो करना--होश रखना।
इन सारी बातों में मतलब वही है। स्त्री से बच कर निकल जाना, तो भी होश रखना पड़ेगा। स्त्री को बिना देखे निकल जाना, तो भी होश रखना पड़ेगा। बेहोशी में तो आंख स्त्री की तरफ अपने आप चली जाती है। बेहोशी में तो पैर स्त्री की तरफ चलने लगते हैं, विपरीत नहीं जाते। बेहोशी में तो भीड़ में स्त्री को धक्का लगाने के लिए शरीर तत्पर हो जाता है। बच कर निकलना तो दूर, अगर स्त्री बच कर निकलना चाहे तो भी उसको बच कर निकलने देना मुश्किल हो जाता है। बेहोशी में तो स्त्री को छूने का मन होता है।
तो बुद्ध ने कहाः फिर मैं तुझे सार की बात कहे देता हूं। ये तो गौण बातें थीं। लेकिन उन सब गौण बातों में वही धागा अनुस्यूत था। जैसे माला के मनकों में धागा अनुस्यूत होता है। मनके दिखाई पड़ते हैं, धागा दिखाई नहीं पड़ता--वह है होश।
कबीर उसको ही सुरति कहते हैं। और जिस व्यक्ति का होश सध जाए, फिर उसे कोई असहज क्रम नहीं करना पड़ता उलटा-सीधा। कबीर कहते हैं, न तो मैं नाक बंद करता, न आंख बंद करता, न उलटी-सीधी श्वास लेता, न प्राणायाम करता, न उलटा सिर पर खड़ा होता, न शीर्षासन करता; कुछ भी नहीं करता; सिर्फ होश को सम्हाल

कर रखता हूं। सिर्फ सुरति को बनाए रखता हूं। बस, सुरित का दीया भीतर जलता रहता है। और जीवन पवित्र हो जाता है।
सुरति का दीया भीतर जलते-जलते एक ऐसी घड़ी आती है, जब निष्कंप हो जाता है। उस घड़ी का नाम समाधि।
शुरू-शुरू में सुरति का दीया कंपता है। पुरानी वासनाओं के झोंके आएंगे, पुरानी आदतों के झोंके आएंगे, पुराने संस्कार के झोंके आएंगे। बहुत बार दीया झुकेगा, कंपेगा, लौ कंपित होगी, जीवन भीतर चंचल रहेगा, भान कभी रहेगा, कभी छूटेगा, कभी होश सम्हलेगा, कभी नहीं भी सम्हलेगा, कभी गिरोगे, कभी उठोगे, शुरू में स्वाभाविक है।
तो सुरति की दो स्थितियां हैं। जब भीतर की चेतना कंपती रहती है, उस स्थिति का नाम ध्यान। और जब भीतर की चेतना अकंप हो जाती है, उस स्थिति का नाम समाधि। और कबीर कहते हैं, सहज ही सध जाती है; तुम व्यर्थ के उपद्रव क्यों कर रहे हो?
और यही मैं तुमसे भी कहता हूं। क्योंकि कबीर को भी सुननेवाले तुम ही थे, तुम ही हो। लेकिन तुम तरकीबें निकाल लेते हो। कबीर से बच जाते हो, बुद्ध से बच जाते हो, कृष्ण से बच जाते हो, तुम बचे चले जाते हो।
बुद्ध ने जो स्त्री से बचने को कहा, वही तुम बुद्धों के साथ व्यवहार
कर रहे हो! पहले तो बुद्ध दिखाई पड़े तो बच कर निकल जाना! अगर मजबूरी आ जाए और देखना ही पड़े, पास से निकलना पड़े तो आंख झुका कर निकल जाना! अगर फिर भी मजबूरी खड़ी हो जाए और आंख भी न झुका पाओ तो छूना मत! अगर छू भी लो, तो होश रखना कि यह आदमी बुद्ध है, अछूत है, बीमारी है! यह तुम्हें मिटा डालेगा। इस भांति तुम चल रहे हो। इससे तुम चूकते गए हो। और जितना तुम चूकते हो, उतना ही तुम सोचते हो कठिन होगा, कठिन होगा, तभी तो हम चूक रहे हैं। तुम चूक रहे हो चालाकी से।
सत्य कठिन नहीं है, तुम्हारी चालाकी बड़ी जटिल है।

तीसरा प्रश्नः आपके पास आकर पीड़ा का रूप ऐसा बदल गया है कि पहले कारण पता चलता था, अब तो कारण ही कभी-कभी पता नहीं चलता है और पीड़ा बहुत घनी होती है। यह क्या है?

शुभ लक्षण है।
पीड़ा का कारण बाहर नहीं है, तुम्हारे होने का ढंग है। लेकिन साधारण आदमी की तरकीब यह है कि वह सदा बाहर कारण खोजता है। तुम दुखी हो। तुम तत्क्षण कारण खोजते हो बाहर कि कौन मुझे दुखी कर रहा है? क्या कारण है मेरे दुख का?
और बड़ा संसार है चारों तरफ। कोई न कोई कारण तुम खोज लेते हो। वह कारण झूठा है। दुखी तुम हो बिना कारण। क्योंकि तुम्हारे जीवन का ढंग मूर्च्छा से भरा है। और मूर्च्छा का अर्थ है दुख। मूर्च्छा में दुख ही फलता है और कुछ नहीं फलता। मूर्च्छा में दुख के ही फूल लगते हैं और कोई फूल नहीं लगते। दुख के कांटे लगते हैं, कहना चाहिए। जहर ही लगता है।
लेकिन कारण तुम बाहर खोजते हो। तुम दुखी हो, तो तुम कारण बाहर खोजते हो। तुम क्रोधित हो, तो तुम कारण बाहर खोजते हो, कि किसी ने अपमान किया होगा जरूर! कोई दुख दे रहा है तभी तो मैं दुखी हूं।
जैसे-जैसे तुम्हारा ध्यान सम्हलेगा, वैसे-वैसे तुम्हें दिखाई पड़ेगा कारण तो कोई भी नहीं है, तुम ही हो। तब धीरे-धीरे तुम पाओगे कि किसी के गाली देने से तुम क्रोधित नहीं होते; तुम क्रोधित होते हो, क्योंकि क्रोध तुम्हारे भीतर है। गाली तो सिर्फ निमित्त है।
गाली तो ऐसे है, जैसे किसी ने कुएं में बाल्टी डाली और पानी भरके बालटी में बाहर आ गया। अगर कुएं में पानी न होता तो बालटी पानी ला सकती थी? गाली तो बालटी है। किसी ने तुम्हारे भीतर डाली; अगर क्रोध न होता तो गाली की बालटी क्रोध को बाहर ला सकती थी? कुआं अगर खाली होता तो बालटी भटकती, थोड़ा शोरगुल करती, उठती-गिरती खाली वापस लौट आती।

और जब मैं यह कह रहा हूं, तो ऐसा होता रहा है। बुद्ध को भी तुमने गालियां दी हैं, जीसस को भी गालियां दी हैं, तुम्हारी बाल्टी खाली ही वापस लौट आई है। कोई क्रोध वहां से वापस नहीं लौटा।
गाली ज्यादा से ज्यादा निमित्त हो सकती है, लेकिन कारण नहीं है। कारण
और निमित्त का यही फर्क है। कारण तो तुम हो, गाली निमित्त है। और अगर आज कोई गाली न देता तो तुम कोई और निमित्त खोज लेते।
निमित्त तुम खोजते ही; क्योंकि तुम्हारे भीतर जो क्रोध उबल रहा था, उसे बाहर निकलने के लिए कोई सहारा चाहिए था। अगर बिना सहारे निकलेगा तो तुम पागल मालूम पड़ोगे। तुम कोई न कोई कारण खोज लेते। तुम घर आते और पत्नी के व्यवहार में तुम्हें कोई कमी दिखाई पड़ जाती, या रोटी जली हुई मालूम पड़ती। रोज भी ऐसी ही जली थी, लेकिन कल जली दिखाई न पड़ी थी। आज भीतर क्रोध उबल रहा है, तुम कोई बहाना खोज रहे हो। तुम कहीं न कहीं टूट पड़ते। तुम कारण खोज कर बहते। मवाद भीतर है। तुम जरा सा धक्का बाहर का चाहते हो। कोई दे दे तो ठीक; कोई न दे, तो तुम कल्पित कर लेते कि किसी ने धक्का दिया। क्योंकि मवाद बहना चाहेगी।
दुख तुम्हारे भीतर है, पीड़ा तुम्हारे भीतर है। तुम जैसे हो, पीड़ा की
एक गांठ हो। तुम जैसे हो, एक घाव हो, एक नासूर हो, जो सदा दुख रहा है। किसी तरह सम्हाल कर उसको चलते हो। किसी का धक्का लग जाता है।
कभी तुमने ख्याल किया? पैर में चोट लग गई है, तो फिर उस दिन, दिन भर पैर में ही चोट लगती है। तुम भी चकित होते हो कि मामला क्या है? आज दरवाजा पैर में ही क्यों लगता है? कुर्सी की टांग पैर में ही क्यों लगती है? बच्चा भी आकर उसी पैर पर क्यों खड़ा हो गया? यह सारी दुनिया पैर के पीछे क्यों पड़ी है?
कोई पीछे नहीं पड़ा है। रोज भी यही होता था, लेकिन रोज तुम्हारे पैर में दर्द न था, आज दर्द है तो चोट लगती है। बच्चा रोज उसी पैर पर खड़ा हो जाता था आकर, पता ही न चलता था। आज पता चलता है। जहां घाव होता है, वहां पीड़ा पता चलती है।
पीड़ा तुम हो। जैसे-जैसे ध्यान बनेगा, सधेगा, वैसे-वैसे कारण गिरते जाएंगे। तब बड़ी घबड़ाहट होगी। घबड़ाहट यह होगी कि मैं अपने ही कारण दुख में हूं। जब कोई कारण न दिखेगा, तभी तुम्हें मूल कारण दिखाई पड़ेगा, कि मैं ही कारण हूं, मैं ही अपना नरक हूं।
और यह बहुत बड़ा अनुभव है। इससे गुजरना ही पड़ता है। बहुत पीड़ादायी है। बड़ा संतापपूर्ण है। छेद देता है बुरी तरह प्राणों को। तड़फड़ाते हो। पीछे लौट जाने का मन होगा, कि वही दुनिया अच्छी थी, दूसरे पर दोष डाल कर जी तो लेते थे! अब तो कोई दूसरा दोषी भी न रहा। हम ही दोषी हो गए।
लेकिन अगर हिम्मत से इसको पार कर गए, तो तुम पाओगे कि जो व्यक्ति हिम्मत से इसे पार कर जाता है, पहले दूसरों पर से कारण हट जाते हैं। सब कारण स्वयं में आ जाते हैं। और जब सब कारण स्वयं में आ जाते हैं तो जीवन-क्रांति अनिवार्य हो जाती है।
अब तक तुम सोचते थे दूसरों को बदल दें। पत्नी सोचती थी, पति बदल जाए तो
सब शांति होगी। पति सोचता था, पत्नी बदल जाए, तब सब शांति होगी। बेटा सोचता था बाप बदल जाए, बाप सोचता था बेटा बदल जाए। अभी तक का तर्क यह था कि सारी दुनिया बदल जाए तो हम शांत होंगे। और यह होने वाला नहीं; इसलिए तुम शांत होने के लिए कोई उपाय ही न पाते थे।
अब सारा तर्क यह होगा कि अब मुझ को ही को बदलना है। किसी को बदलने का सवाल नहीं। संसार को नहीं बदलना है, स्वयं को बदलना है।
जिसे ऐसा दिखाई पड़ गया, वह मंदिर के बिल्कुल द्वार पर खड़ा हो गया। भाग सकता है मंदिर के द्वार से। क्योंकि पुरानी दुनिया ज्यादा राहतपूर्ण मालूम होती थी। दूसरे को दोष दे लेते थे। चित्त को राहत मिल जाती थी।
अब यह बड़ी पीड़ा मालूम होगी। पीड़ा सघन होगी। हम ही दुख हैं, इसे झेलना मुश्किल होगा। लेकिन अगर तुम झेल गए तो इसी झेलने से क्रांति पैदा होती है। जब तुम देख लेते हो, मैं ही कारण हूं। तो अब तुम्हारे हाथ में है। दुखी होना हो, तो जैसे हो वैसे ही बने रहो। दुखी न होना हो, रूपांतरित हो जाओ।

और दुनिया में कोई किसी दूसरे को नहीं बदल सकता, सिर्फ स्वयं को बदल सकता है। एक ही बदलाहट संभव है, वह तुम्हारी अपनी। किसी दूसरे को बदलने का कोई भी उपाय नहीं है। जितने जल्दी तुम समझ लो उतना अच्छा, कि कोई किसी को कभी नहीं बदल पाया है। ज्यादा से ज्यादा कोई अपने को बदल लेता है। लेकिन अपने को बदलते ही सारी दुनिया बदल जाती है। तब एक नया जन्म होता है तुम्हारा। और जैसे कल तक तुम पीड़ा के घाव थे, अब तुम भीतर एक आनंद के नृत्य हो जाते हो। और अब एक दूसरी यात्रा शुरू होती है कि हर कोई कारण बन जाता है तुम्हारे आनंद के बहने के लिए।
एक बच्चा मुस्कुराता हुआ निकल जाता है और तुम अपूर्व पुलक से भर जाते हो। एक फूल खिलता है और तुम्हारे भीतर कुछ नाचने लगता है। आकाश में तारे उगते हैं और तुम मग्न हो जाते हो। कोई वीणा बजाता है और तुम्हारे भीतर के तार छिड़ जाते हैं। झरने में कलकल का नाद होता है और तुम्हारा हृदय आकंठ भर जाता है किसी अपूर्व आनंद से। अब सब तरफ आनंद के कारण मिलने लगते हैं। जैसे कल सब तरफ दुख के कारण मिलते थे, अब सब तरफ आनंद के कारण मिलने लगते हैं।
तुम ही हो दुख, तुम ही हो नरक, तुम ही हो स्वर्ग, तुम ही हो महासुख। महावीर ने कहा है तुम ही हो शत्रु अपने और तुम ही हो मित्र। न तो तुमसे बड़ा तुम्हारा कोई शत्रु है, और न तुमसे बड़ा तुम्हारा कोई मित्र है। शत्रु हो, अगर तुम दुख को दूसरों पर खोज रहे हो। अगर मित्र बनना है अपने, तो आनंद को भीतर पैदा कर लो और तुम पाओगे, सारा जगत तुम्हारे उत्सव में सम्मिलित हो जाता है। सारा जगत उत्सव मना ही रहा है। वह तुम्हारे लिए रुका भी नहीं है। पक्षी गीत गाए चले ही जा रहे हैं। वृक्षों में हवाएं नाच रही हैं। आकाश में बादल तिर रहे हैं। झीलें परम शांति से भरी हैं। हिमालय के शिखर परम आनंद में उठे हैं।
सब तरफ आनंद है। एक तुम अपने भीतर दुख की गांठ लिए चल रहे हो। अब वह गांठ पक गई है बुरी तरह। जरा भी छू जाती है, तो बस नरक फूट पड़ता है। इस गांठ को हटा दो। यह हट सकती है, इसके हटाने का पहला उपाय तो यह है कि तुम दूसरों फर दोष देना बंद कर दो। सब बात के लिए स्वयं दोषी हो जाओ। यही है रिस्पांसिबिलिटी; यही है उत्तरदायित्व कि तुम अपने लिए स्वयं जिम्मेवार हो। कोई दूसरा जिम्मेर नहीं है।
इससे ही पहली आत्मभावना पैदा होती है। फिर नरक से गुजरना पड़ेगा। थोड़े दिन बड़ी पीड़ा होगी, जैसी कभी न थी। जैसे सुबह होने के पहले गहन अंधकार हो जाता है, ऐसे ही स्वर्ग के उठने के पहले नरक बहुत सघन हो जाता है।

आखिरी प्रश्नः तृष्णा, पीछा न छोड़े, मन कोलाहल से भरा हो और बेईमानी चोरी का साम्राज्य हो; करें तो मुश्किल, न करें तो मुश्किल, इस स्थिति में आचरण तो कोई भी अंदर से न आएगा। कृपया बताएं कि ऊंट किस करवट बैठे--विधायक या निषेधात्मक?

ऊंट का बैठना जरूरी नहीं है।
इस तरह के सारे प्रश्न यह मान कर चलते हैं कि दो ही विकल्प हैं। "ऊंट किस करवट बैठे"--यह हम मान ही लेते हैं कि ऊंट को बैठना ही पड़ेगा। करवट लेनी ही पड़ेगी, इसलिए चुनाव जरूरी है।
तर्कशास्त्र में एक तर्क की व्यवस्था है, जिसको डायलेमा कहते हैं; मेढ़ा-न्याय। उसमें इस तरह के प्रश्न होते हैं कि तुम भैंस के दो सींगों के बीच फंसे हो तो तुम कौन सा सींग चुनोगे? कुआं या खाई? मान लिया जाता है कि दो ही विकल्प हैं। और तब अड़चन खड़ी होती है, क्योंकि कोई भी सींग चुनो, दुख पाओगे। कोई भी करवट ऊंट बैठे, दुख पाएगा।
चुनाव किया कि दुख पाया।
अगर तुम्हारे भीतर कामवासना उठ रही है--उदाहरण के लिए--अब दो ही विकल्प हैं। दो ही सींग हैं भैंस के। या तो विवाह कर लो और या ब्रह्मचारी हो जाओ। विवाह करो, तो भी दुख पाओगे। जाकर विवाहित लोगों को देख लो। सभी विवाहित लोग सोचते हैं कि ब्रह्मचारी ही रह गए होते तो अच्छा था। ऐसा

विवाहित आदमी तुम्हें न मिलेगा खोजने से, जिसके मन में कई बार यह ख्याल न उठा हो कि अविवाहित ही रह गए होते तो अच्छा था।
दुख पाओगे। करवट चुन ली।
फिर ब्रह्मचारी हैं। तुम यह मत समझना कि वे सुखी हैं। वे दुखी हैं, क्योंकि कामवासना उन्हें सता रही हैं। विवाह नहीं किया, इससे क्या होता है? सपने में सताती है, मन में घूमती है, चारों तरफ से ग्रसती है। विवाहित व्यक्ति से भी ज्यादा कामातुर हो जाता है ब्रह्मचारी का मन। क्योंकि विवाहित को तो थोड़ा सा निकास है। ब्रह्मचारी को तो कोई निकास न रहा।
और कामवासना कोई ऊपर से थोपी गई चीज नहीं है कि तुमने फिल्मों में देख
कर सीख ली है, जैसे दूसरे तुम्हारे मूढ़ साधु-संन्यासी समझते रहते हैं कि लोग कामातुर हुए जा रहे हैं? तो जानवर भी फिल्म देख रहे हैं? वे काहे को कामातुर हुए जा रहे हैं? कि लोग कामुक हो गए हैं, क्योंकि गलत साहित्य पढ़ रहे हैं। वृक्ष भी कामातुर हैं; नहीं तो फूल न लगेंगे, फल न लगेंगे। पक्षी भी कामातुर हैं। वह जो कोयल बोल रही है, वह काम का गीत है। जो मोर नाच रहा है, वह काम का नृत्य है। उन्होंने कौन सी गंदी किताबें पढ़ी हैं? कौन सा अश्लील साहित्य पढ़ा है?
कामवासना नैसर्गिक है। इसलिए तुम उसे, सिर्फ निर्णय कर लेने से कि हम विवाह न करेंगे, बच नहीं सकते। इसलिए ब्रह्मचारी और भी ग्रसता है, और भी बुरी तरह फंसता है। और तुम ऐसा ब्रह्मचारी न पाओगे, जिसके मन में यह ख्याल न आता हो कि विवाह ही कर लिया होता तो अच्छा था।
यह बड़ी मुश्किल की बात है। ऊंट किसी करवट बैठे, फंसता है। और अगर तुम कहते हो कि दो ही विकल्प हैं तो मैं कहता हूं, विवाह करके ही फंसना। अगर दो ही विकल्प हैं तो मैं कहता हूं, विवाह करके ही फंसना।
अगर दो ही विकल्प हैं! यद्यपि वह मेरी मान्यता नहीं। तीसरा विकल्प मैं तुमसे कहूंगा। लेकिन अगर ऐसा हो कि दो ही विकल्प सूझते हों, तो कर के पछताना बेहतर है, बजाय न करके पछताने के।
क्यों? क्योंकि करके आदमी कुछ सीखता है। न करके कुछ भी नहीं सीखता। तो विवाहित आदमी किसी न किसी दिन ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो सकता है ऊब कर, थक कर, उपद्रव से परेशान होकर, देख कर, जीवन की स्थिति को समझ कर प्रौढ़ हो सकता है।
लेकिन जो ब्रह्मचारी रह गया है पहले से, वह कभी ब्रह्मचर्य को उपलब्ध
न हो पाएगा। उसके मन में दमित वासना अपना जाल फैलाती रहेगी। इसलिए मैं देखता हूं कि अगर आदमी ठीक से गृहस्थ रहा हो, तो पचास साल के करीब आते-आते अपने आप ही एक सहज ब्रह्मचर्य पैदा होना शुरू हो जाता है।
इसलिए हिंदुओं ने--जो कि संसार में बहुत ही ज्यादा निसर्ग के अनुकूल धर्म है। उससे ज्यादा निसर्ग के अनुकूल कोई धर्म नहीं है। महावीर और बुद्ध का धर्म निसर्ग के अनुकूल नहीं मालूम पड़ता। लेकिन हिंदू बहुत निसर्ग के अनुकूल हैं। शायद इसका कारण है कि हिंदू इतनी पुरानी जाति है, और इसने इतने अनुभव लिए हैं हजारों प्रकार के, वह उन सब का निचोड़ है।
तो हिंदू कहते हैं पच्चीस वर्ष तक, शुरू के प्रथम चरण में जीवन के विद्यार्जन करना, तब ब्रह्मचर्य को साधना। लेकिन वह ब्रह्मचर्य अस्थायी है। वह कोई जीवन का व्रत नहीं है। वह तो सिर्फ विद्या-अर्जन के लिए साधा जा रहा है; ताकि सारी ऊर्जा विद्या-अर्जन में लग जाए। वह कोई व्रत नहीं है, आत्यंतिक नहीं है। बल्कि बड़े मजे की बात है; हिंदू कहते हैं अगर वह ब्रह्मचर्य ठीक साधा गया, तो उसके बाद आने वाला जो चरण है गृहस्थ का, वह बहुत सुखपूर्ण हो जाएगा।
आज वैज्ञानिक भी इस बात से राजी हैं कि जिन लोगों ने भी अपनी वीर्य ऊर्जा को खो दिया है विवाह के पूर्व, उनका विवाह कभी भी सुखी न हो पाएगा, क्योंकि सुख की संभावना तभी थी, जब वे ऊर्जा से भरे हों, परिपूर्ण भरे हों, बाढ़ हो, तो काम का ठीक-ठीक अनुभव हो जाता। और जिस चीज का ठीक अनुभव हो जाता है, उससे मुक्ति हो सकती है। मुक्ति बिना अनुभव के होती ही नहीं।
तो पच्चीस वर्ष तक, पहले जीवन के चरण में ब्रह्मचर्य और फिर पच्चीस वर्ष ब्रह्मचर्य के बाद गृहस्थ। ऊर्जा इकट्ठी है, पच्चीस वर्ष बांध कर

रखा है। संयमित रहा है व्यक्ति। एक तेज है, एक शक्ति है। अब वह गृहस्थ में गुजरेगा। इस ऊर्जा से गुजरेगा कि अनुभव प्रगाढ़ हो जाए। हिंदू कहते हैं, पच्चीस वर्ष तक गृहस्थ।
पचास वर्ष में फिर वानप्रस्थ हो जाए। अब अनुभव हो गया। जान लिया, जो जानना था और पहचान लिया, जो पहचानना था। अब सपने नहीं सता सकते। क्योंकि सपने तभी तक सताते हैं, जब तक अनुभव न हो। देख लिया जीवन को। उसका रस पहचान लिया। और देख लिया कि रस में भी कुछ है नहीं--खाली है, ऊपर-ऊपर है, भीतर रिक्त है। इस अनुभूति से आदमी वानप्रस्थ हो जाए। वानप्रस्थ का अर्थ है, अभी जंगल न जाए, जंगल की तरफ मुंह हो जाए। अभी पहुंच न जाए जंगल एकदम से, क्योंकि हिंदू बड़े नैसर्गिक ढंग से चलना चाहते हैं। वे कहते हैं, अभी मुंह जंगल की तरफ कर ले। बैठे दुकान पर, लेकिन मुंह जंगल की तरफ। काम करे, लेकिन मुंह जंगल की तरफ।
उसका कारण है। पच्चीस वर्ष के बाद उसके अपने बच्चे अब घर लौटने के करीब होते होंगे। पच्चीस वर्ष वह खुद ब्रह्मचारी था, फिर पच्चीस वर्ष जब वह गृहस्थ रहा, उसके बच्चे पैदा हुए, बच्चे गुरुकुल गए। अब वे गुरुकुल से घर आते होंगे। अभी बाप अगर घर छोड़ कर भाग जाए तो यह बड़ा अनैसर्गिक क्रम हो जाएगा। बच्चों को कौन सम्हालेगा?
बच्चे घर लौटते होंगे। अब वे तैयार हो गए हैं, उनके विवाह करने हैं, उनको घर-गृहस्थी जमानी है, उनको जीवन में उतार देना है। तो इसलिए वानप्रस्थ हो जाए। मन तो हटा ले, शरीर भर रहने दे। मन तो पूजा में लग जाए, स्मरण में लग जाए, शरीर घर में बना रहे। मन जंगल चला जाए।
यह वानप्रस्थ शब्द बड़ा प्यारा है। मन से तो प्रस्थान हो ही गया, जंगल
जा चुके। मन तो जंगल में रमने लगा। लेकिन अभी घर रुके हैं, कर्तव्य पूरा कर देना है। बच्चे घर लौट आए, उनका विवाह हो गया।
पचहत्तर वर्ष की उम्र में आदमी संन्यासी हो जाए। क्योंकि अब तो बच्चों के वानप्रस्थ होने का वक्त आ गया। और हिंदुओं की व्यवस्था यह थी कि जब बच्चे घर आ जाएं तो फिर पिता के बच्चे पैदा नहीं होने चाहिए। वह अशोभन है।
यह मुझे भी लगता है कि यह बात अशोभन है। जब बच्चे को बच्चे पैदा होने लगें, फिर भी तुम्हें बच्चे पैदा होते जाएं--बच्चा तुम्हें कैसे आदर देगा? वह पाएगा तुम भी उसी कामवासना में पड़े हो, उसी नरक में पड़े हो, जिसमें वह पड़ा है। तुम भी वैसे ही गैर-अनुभवी हो, जैसा वह है। तुम भी बचकाने हो। तुम्हारे भी जीवन की प्रौढ़ता नहीं आई। यह सोच कर भी बच्चे की श्रद्धा नष्ट होती है, कि उसके मां और पिता अभी भी संभोग करते हैं।
जब बच्चा घर आए गुरुकुल से तब उसे पता होना चाहिए कि मां-बाप पार हो गए। गुजरे उस अवस्था से, लेकिन ऊपर उठ गए। अब वह बच्चों का खेल उनके लिए नहीं रहा। और जब बच्चों के बच्चे होने लगे और उनका गुरुकुल से आना शुरू हो जाए, तो वक्त आ गया कि अब तुम विदा हो जाओ। अब तुम्हारे यहां होने की कोई जरूरत नहीं। अब तुम्हारा लड़का पचास साल का होता होगा। अब वह सम्हाल लेगा सब पीछे आने वालों को, अब तुम हटो।
और यह अनुभव है सभी गृहस्थों का कि पचहत्तर वर्ष के बाद बूढ़े बोझिल हो जाते हैं घर पर। उनकी अब किसी से उत्सुकता नहीं रह जाती और न उनमें किसी की उत्सुकता रह जाती है। उनकी दुनिया जा चुकी। अब भी अगर वे अटके रहे तो वे उपद्रव पैदा करते हैं, झगड़ा-झंझट खड़ी करते हैं। चिढ़चिढ़े हो जाते हैं। उन्हें जंगल चले जाना चाहिए। उनके संन्यास का समय आ गया। और ये जो जंगल चले जाएंगे ये ही गुरु हो जाएंगे छोटे बच्चों के, जो अभी आने हैं पढ़ने के लिए।
हमने एक वर्तुल पूरा कर लिया। पचहत्तर वर्ष की उम्र के लोग-- जिन्होंने जीवन को पूरा जान लिया, निचोड़ लिया और पाया कि व्यर्थ है और निचोड़ कर फेंक दिया। जो संसार में गए और संसार के बाहर आ गए--अछूते, ये ही योग्य हैं गुरु होने के।

ये गुरुकुल बना लेंगे। जंगल में रहेंगे, छोटे बच्चे आते होंगे पढ़ने उनको ये जीवन का सार दे देंगे। यह हमने जीवन के दो छोरों को मिला दिया-- बूढ़ों को, जन्म और मृत्यु को; वर्तुल हमने पूरा कर दिया।
एक नैसर्गिक व्यवस्था है। और नैसर्गिक व्यवस्था हमेशा अनुभव से जाती है। अप्राकृतिक व्यवस्था अनुभव को छोड़ने का आग्रह करती है। नैसर्गिक व्यवस्था अनुभव को भोगने का आग्रह करती है।
उपनिषदों का बड़ा अदभुत वचन है--तेन त्यक्तेन भुंजीथाः। यह बड़ा क्रांतिकारी सूत्र है। यह कहता है, वे ही त्याग सकते हैं, जिन्होंने भोगा। जो भोग के पहले भाग गए, वे भोग से सदा पीड़ित रहेंगे। जिन्होंने भोग लिया, उनकी स्थिति शांत हो गई, उफशम को उफलब्ध हो गए। अब वे जा सकते हैं। अब कोई उन्हें रोकने वाला न रहा।
तो मैं तुमसे कहूंगा, अगर करें तो मुश्किल, न करें तो मुश्किल--ऐसी दुविधा हो, तो करना। "न करना" मत चुनना। उसको जिसने चुना, वह भटकेगा।
अगर तुम्हारे मन में ऐसा सवाल हो कि कामवासना में उतरें कि न उतरें,
तो उतरना क्योंकि सवाल उठ रहा है। इसका मतलब ही यह है कि तुम्हारे जीवन में अनुभव पका नहीं। अगर तुम्हारे सामने सवाल उठे कि झूठ बोलें कि सच; सवाल उठ रहा है, उसका मतलब ही यह है कि झूठ का रस कायम है--बोलना! क्योंकि अगर बोलोगे न, तो रस सदा के लिए कायम रह जाएगा। बोलो! झूठ की पीड़ा झेलो, झूठ में भटको, गिरो, हाथ-पैर तोड़ो, ताकि अनुभव हो; वापस आ सको।
भूल करने से कभी मत डरना। क्योंकि जो भूल करने से डरता है, उसकी यात्रा ही बंद हो जाती है। हां, इतना ही स्मरण रखना, एक ही भूल बार-बार मत करना। नई-नई भूल करना, मगर एक ही भूल बार-बार मत करना। एक भूल को पूरी तरह कर लेना, ताकि दुबारा करने का सवाल भी न रह जाए।
मेरी अपनी दृष्टि यह है कि ब्रह्मचर्य एक संभोग में भी उत्पन्न हो सकता है, अगर संभोग परिपूर्ण है। क्योंकि फिर तो पुनरुक्ति ही है उसी-उसी की। लेकिन वह परिपूर्ण नहीं हो पाता, क्योंकि तुम पूरे मन से अपने को संभोग में नहीं डाल पाते। संस्कृति, सयता, नीति, शिक्षा, धर्म सब तुम्हें रोके हुए हैं। उन्होंने सब जहरीला कर दिया है।
तो तुम संभोग में भी उतरते हो डरते-डरते, कंपते-कंपते, आधे-आधे। इसलिए अनुभव कभी पूरा नहीं हो पाता। और इसीलिए मरते दम तक संभोग पीछा करता है, कामवासना पकड़े रहती है।
मरता है आदमी, राम का स्मरण नहीं उठता; वहां भी काम का ही स्मरण चलता रहता है। मरते आदमी की भी खोपड़ी तुम खोलो, तो वहां तुम्हें स्त्री मिलेगी, परमात्मा नहीं। अधूरा रह गया सब, अटका रह गया।
मेरी दृष्टि में स्त्रियां पुरुषों से सरलता से कामवासना से मुक्त हो जाती हैं। और उसका कारण है, क्योंकि स्त्रियां उतनी सय नहीं हैं, जितना पुरुष। स्त्रियां ज्यादा प्राकृतिक हैं, पुरुष ज्यादा सामाजिक है। स्त्रियां अभी भी प्रकृति का हिस्सा हैं।
इसलिए स्त्रियों को रोना होता है, तो रो लेती हैं, पुरुष नहीं रोता। हंसना होता है, तो हंस लेती है। पुरुष हर चीज को रोकता है। रोना कैसे संभव है? मर्द होकर और रो रहे हो? अब परमात्मा ने मर्दों की आंखों में भी उतनी ही ग्रंथियां बनाई हैं आंसुओं की, जितनी स्त्रियों की आंखों में। तो परमात्मा ने बड़ी भूल की! मर्द की आंख में आंसू की ग्रंथी बनाई ही क्यों, अगर मर्द को रोना ही नहीं है? लेकिन तुम रोने को भी रोक रहे हो, क्योंकि मर्द कैसे रो सकता है?
स्त्री प्राकृतिक है। थोड़ी करीब है प्रकृति के। और ज्यादा बौद्विक नहीं है। इसलिए बहुत सिद्धांत और शास्त्र उसको परेशान नहीं करते। वह जी लेती है। और स्त्रियां जल्दी मुक्त हो जाती हैं।
यह मेरे अनुभव में आया कि मेरे पास सैकड़ों स्त्रियां आती हैं, जो कहती हैं हम कामवासना से थक गए हैं, लेकिन पति हमें घसीट रहा है। लेकिन ऐसे पुरुष कभी मुश्किल से आते हैं, जो कहते हैं, हम कामवासना से थक गए हैं और पत्नी हमें घसीट रही है। अगर निन्यानबे स्त्रियां आती हैं ऐसा कहने, तो एक पुरुष आता हैः यह अनुपात है।

इसके पीछे कुछ कारण होगा। पुरुष ज्यादा सय हो गया है, बौद्धिक हो गया है, शिक्षित हो गया है, सामाजिक हो गया है, प्राकृतिक नहीं रह गया है।
तो मैं तुमसे कहता हूं, करें तो मुश्किल, न करें तो मुश्किल--अगर ऐसा सवाल हो, और तुम्हें दो ही विकल्प दिखाई पड़ें, तो करना और मुश्किल भोगना। न करने वाली मुश्किल से करने वाली मुश्किल बेहतर है। ऊंट को उसी करवट बिठाना। क्योंकि जिसने किया ही नहीं, वह हमेशा अटका रह जाता है। और हमेशा मन में लगा रहता है अगर कर लेते--पता नहीं कर लेते तो कितना सुख मिलता! मुझे संन्यासी आकर कहते हैं; एक जैन मुनि ने मुझसे कहा, कि पचास साल हो
गए हैं मुनि हुए, बीस साल के थे, तब उन्होंने दीक्षा ली। अब तो सत्तर साल के ऊपर उम्र हो गई। उन्होंने मुझे कहा, लेकिन अभी मेरे मन में यह सवाल बना रहता है कि कहीं मैंने भूल तो नहीं की! कहीं ऐसा तो नहीं है, सांसारिक लोग मजा ले रहे हैं और मैं नाहक ही परेशान हुआ!
और यह स्वाभाविक है। क्योंकि आनंद तो कुछ मिला नहीं है। सिर्फ परेशानी मिली। तुम संन्यासी की परेशानी समझ ही नहीं सकते।
तुमने कभी उपवास किया है? एक तीन दिन उपवास करके देखो! तो भोजन ही भोजन की याद आएगी। चाहे मंदिर जाओ, मस्जिद जाओ, रेस्त्रां ही दिखाई पड़ेगा। चाहे गीता खोलो, चाहे कुरान, भोजन ही तैरते हुए दिखाई पड़ेंगे। पूर्णिमा की रात आकाश में देखो, लगेगा सफेद रोटी तैर रही है। जहां देखोगे, वहां भोजन दिखाई पड़ेगा।
वही दशा तुम्हारे संन्यासियों की हो जाती है। जहां देखते हैं वहीं कामवासना, वहीं कामवासना दिखाई पड़ती है। समझाते हैं चौबीस घंटे उसी के विपरीत। वह भी इसीलिए समझाते हैं... तुम यह मत समझना कि तुम्हें समझाते हैं, जोर-जोर से बोल कर अपने को ही समझाते हैं कि बड़ा पाप है। इसमें पड़ना ही मत। दूसरों के बहाने अपने को ही समझाते हैं। लेकिन मुक्त नहीं हो पाते। मुक्ति का एक ही मार्ग है; वह है: अनुभव, ज्ञान।
तो अगर तुम्हें चुनना ही पड़े तो करके मुश्किल भोगना। मुश्किल तुम भोगोगे। यह मैं नहीं कह रहा हूं कि करने से तुम्हें मुश्किल नहीं होगी।
करने से भी होगी, न करने से भी होगी। लेकिन करने वाली मुश्किल से कुछ लाभ है--ज्ञान उपलब्ध होता है। न करने वाली मुश्किल से कुछ उपलब्ध नहीं होता।
वह मुश्किल नपुंसक है, बांझ है, उससे कुछ पैदा नहीं होता।
लेकिन अगर तुम्हें मेरी बात समझ में आ जाए, तो मैं तुमसे कहता हूं दो में चुनने की कुछ जरूरत ही नहीं है। तुम साक्षीभाव चुनना। वह तीसरा विकल्प है।
कामवासना उठे, तुम देखते रहना। कामवासना उठेगी, साथ ही दो विचार भी उठेंगे-भोग लें, न भोगें; तुम दोनों को देखते रहना। तुम चुनना ही मत। ऊंट को बैठने ही मत देना, खड़ा ही रखना।
उसी को होश कहा है ज्ञानियों ने, साक्षीभाव कहा है। ऊंट खड़ा ही रहे। ऊंट की बड़ी इच्छा होगी। ऊंट कहेगा, ऐसे नहीं तो ऐसे बैठ जाएं। बैठना सुगम मालूम पड़ता है। लेकिन तुम ऊंट से कहना, कि हमने खड़ा होना ही तय किया है। हम मध्य में ही खड़े रहेंगे। हम चुनेंगे ही नहीं।
इसको कृष्णमूर्ति च्वाइसलेसनेस कहते हैं--निर्विकल्पना। इसी निर्विकल्पना को साधते-साधते, जिसको पतंजलि ने कहा है, निर्विकल्प समाधि, वह उपलब्ध होती है।
चोरी करना कि नहीं करना--दोनों को तुम देखते रहना। न इसको चुनना, न उसको चुनना। विवाह करना कि ब्रह्मचारी रहना--न इसको चुनना, न उसको चुनना। तुम दोनों को देखते रहना। तुम कहना, मैं तो द्रष्टा मात्र हूं, मैं सिर्फ देखूंगा। मैं कर्ता नहीं बनूंगा, मैं चुनूंगा नहीं।
मन में उठने देना लहरें। सब तरह की उठेंगी, तुम देखते रहना। अगर तुमने हिम्मत रखी देखते रहने की और ऊंट को खड़ा रखा, तो धीरे-धीरे पाओगे, सागर शांत हो जाता है। दोनों ही लहरें खो जाती हैं। कोई भी विकल्प चुनना नहीं पड़ता।

और उस निर्विकल्प दशा में ही जीवन की परम अनुभूति, जीवन का परम आकाश उपलब्ध होता है। उस निर्विकल्प दशा में ही अमृत के बादल बरसते हैं। उस निर्विकल्प को ही चुनो। अगर चुनना ही है तो "न चुनने" को चुनो।
अगर यह तुम्हारी समझ के बाहर हो, तो करने को चुनना।
लेकिन निर्विकल्प को अगर चुन सको--निर्विकल्प को चुनने का मतलब है कुछ भी न चुनना; तब तुम जीवन से ऐसे गुजर जाओगे जैसा कबीर ने कहा हैः ज्यों कि त्यों धर दीन्हीं चदरिया।
खूब जतन से ओढ़ी चदरिया, ज्यों की त्यों धर दीन्हीं।
यह जतन... ऊंट खड़ा ही रहा। बैठा ही नहीं। होश रखा, चादर खराब न हो जाए।
ऐसी, जैसी पाई थी, वैसी ही परमात्मा को लौटा दी।
अगर तुम दो विकल्पों के बीच निर्विकल्प रह सको, तो तुम्हारे जीवन में परम सूत्र का आविर्भाव हो गया। वही है कुंजी उसके द्वार की।

आज इतना ही।

मेरा मुझमें कुछ नहीं
सातवां प्रवचन

उनमनि चढ़ा गगन-रस पीवै

अवधू मेरा मन मतिवारा।
उनमनि चढ़ा गगन-रस पीवै, त्रिभुवन भया उजियारा।।
गुड़ करि ग्यान ध्यान करि महुआ, व भाठी करि भारा।
सुखमन नारी सहज समानी, पीवै पीवन हारा।।
दोउ पुड़ जोड़ि चिंगाई भाठी, चुया महारस भारी।
काम क्रोध दोइ किया बलीता, छूटि गई संसारी।।
सुंनि मंडल में मंदला बाजै, तहि मेरा मन नाचै।
गुरु प्रसादि अमृत फल पाया, सहजि सुषमना काछै।।
पूरा मिल्या तबै सुख उपज्यौ, तन की तपनि बुझानी।
कहै कबीर भव-बंधन छूटै, जोतिहिं जोति समानी।।

उपनिषदों में एक वचन हैः "उत्तिष्ठ, जाग्रत, प्राप्यवरान्निबोधत।" उठो, जागो और जो मिला ही हुआ है, उसे पा लो।
--जो मिला ही हुआ है। जिसे तुम खोजते हो, उसे अगर तुमने खो दिया होता तो उसे पाने का कोई उपाय न था। इस विराट अस्तित्व में खोए को खोज लेने का कोई उपाय नहीं। तुम खुद इतने छोटे हो, और तुमने अगर अपना आनंद खो दिया, आत्मा खो दी तो तुम इस विराट अस्तित्व में उसे कहां खोजोगे? असंभव। तुम अपने को खोज ही न पाओगे, अगर खो चुके हो। फिर खोजेगा कौन? अगर तुम खो ही चुके हो, तो खोजने वाला भी तो बचेगा नहीं।
इसलिए उपनिषद कहते हैं, उसे पा लो, जो पाया ही हुआ है। तुम सिर्फ भूल
गए हो। विस्मरण से ज्यादा और कोई बड़ी दुर्घटना नहीं घट गई है। खोया नहीं है, स्मृति खो गई है। है मौजूद, सो गए हो। नींद लग गई है। आंख झपक गई है।
और तब तुम जो भी करोगे इस झपकी हुई आंख की दशा में, वह सब विस्मृति को घना करेगा। जितना ही तुम दौड़ोगे, खोजोगे उतना ही लगेगा कि पाना मुश्किल है। उतनी ही यात्रा असंभव प्रतीत होगी।
दौड़ने से नहीं मिलेगा वह, जो तुम्हारे भीतर छिपा है। दौड़ने से तो उसका मिलना हो सकता है, जो तुम्हारे बाहर है, दूर है। जो पास ही है, उसे दौड़कर कहीं कोई पा सकेगा? उसे पाना है, तो भीतर पाना है।
भीतर पाने का अर्थ है रुक जाना, दौड़ना नहीं; ठहर जाना। विश्राम के क्षण में मिलेगा वह। विराम के क्षण में मिलेगा वह। शांति के क्षण में मिलेगा। भाग-दौड़, आपा-धापी में तो तुम उसे और खोते चले जाओगे।
और जितना ही तुम जाल बुनते हो खोजने का, आखिर में पाते हो, वही जाल गले
की फांसी हो गया। ऐसी है दशा तुम्हारी, जैसे मकड़ी ने जाल बुना हो और खुद ही फंस गई हो और अब तड़फती हो और निकलना चाहती हो। और निकल न पाती हो। और अपना ही बुना जाल है।
जन्मों-जन्मों में तुम जो खोज रहे हो, उसके कारण ही तुमने अपने चारों तरफ एक जाल बुन लिया है रास्तों का, विधियों का, मार्गों का, क्रियाकांडों का, धर्मों का, शास्त्रों का, सिद्धांतों का। अब उस जाल में तुम फंसे हो। अब उस जाल से निकलना मुश्किल मालूम पड़ता है।
लेकिन एक बात स्मरण आ जाए कि तुम्हारा ही बुना हुआ है, कि तुम बाहर निकल गए। फिर निकलने को कुछ करना नहीं पड़ता। तुम फंसे थे, वह भी भ्रांति थी। इस फंसाव को ठीक से समझ लो। क्योंकि सारे उपद्रव की जड़ वहां है। और सारा विज्ञान भी उसी के समझने में छिपा है।
जॉर्ज गुरजिएफ अपने शिष्यों को कहता था, अगर तुम एक बात समझ लो, तो सब समझ में आ जाए। उस बात को वह कहता था आइडेंटिफिकेशन, तादात्म्य। अगर तुम यह समझ लो कि कैसे तुम उससे एक हो गए हो, जो तुम नहीं हो, तो तुम्हें मार्ग मिल जाए वह होने का, जो तुम हो।
और ऐसा रोज हो रहा है, ऐसा प्रतिपल हो रहा है, कि तुम उसके साथ अपने को जोड़ लेते हो, जो तुम नहीं हो। फिर तुम जो हो, उससे टूट जाते मालूम पड़ते हो।

तुम उसकी याद से भर गए हो, जो तुम नहीं हो। और इसलिए उसकी विस्मृति हो गई है, जो तुम सदा से हो।
एक आदमी को मैं जानता हूं। वह रामलीला में रावण का अभिनय किया करता था। हर वर्ष गांव में रामलीला होती तो वहां अभिनय करता। आसपास के गांव में होती तो वहां अभिनय करता। धीरे-धीरे उस आदमी के चेहरे में रावण का भाव आ गया था। जब रामलीला न भी चलती तब भी तुम उसे रास्ते पर चलते देखते तो तुम्हें रावण की याद आ जाती।
फिर तो एक बड़ी अजीब घटना घटी कि वह धीरे-धीरे रावण के साथ इतना एकात्म
हो गया, कि एक बार रामलीला में उसने उपद्रव खड़ा कर दिया। रामलीला शुरू होती है, सब राजे-महाराजे स्वयंवर में इकट्ठे हो गए हैं खबर आती है कि रावण की लंका में आग लगी है, उसे जाना चाहिए। वह चला जाए, तो राम धनुष को तोड़ लें और सीता से विवाह हो जाए।
हर बार वह चला जाता था। थोड़ा होश रहा होगा कि यह अभिनय है। लेकिन एक वर्ष वह भूल ही गया बिल्कुल। उसने खड़े होकर जोर से कहा, कि लगी रहने दो आग। झपट कर उठा लिया धनुषबाण। धनुषबाण कोई रामलीला का धनुषबाण था, बांस का बना था। उसने तोड़ कर उसके चार टुकड़े करके जनता में फेंक दिया और कहा जनक से, निकाल तेरी सीता। अब की बार विवाह करके ही जाएंगे।
उसको बा-मुश्किल खींच-तान कर बाहर निकाला गया, क्योंकि वह मजबूत आदमी था। और रात भर वह चिल्लाता रहा, कि कहां है सीता! जब मैंने धनुषबाण भी तोड़ दिया, तो फिर मुझसे विवाह क्यों नहीं हो रहा है? यह अन्याय है। कोई दो महीने वह पागल रहा।
तादात्म्य हो गया। रावण का पार्ट अदा करते-करते, करते-करते वह यह भूल
ही गया कि वह रावण नहीं है।
और ऐसा बहुत बार हुआ है। अमरीका में एक आदमी लिंकन का पार्ट करता रहा।
तो वह ठीक लिंकन जैसा चलने भी लगा, क्योंकि लिंकन थोड़ा सा लंगड़ाता था--जरा सा। तो पार्ट करता था, वह तो ठीक था, मंच पर लंगड़ाता था, वह भी ठीक था, लेकिन लंगड़ापन उसमें प्रविष्ट हो गया। वह लंगड़ा था नहीं। वह रास्ते पर चलता, तो भी वह लंगड़ाता। लिंकन थोड़ा हकलाता था, जैसे नेहरू थोड़े हकलाते थे। मंच पर वह हकलाता था वह तो ठीक, लेकिन साधारण बातचीत में हकलाने लगा!
तब घर के लोगों को चिंता पैदा हुई। और फिर तो ऐसा हुआ, कि वह लिंकन के
ही कपड़े पहन कर आम जिंदगी में भी चलने लगा। वे ही कपड़े, वही छड़ी, वही ढंग चलने का। वह भूल ही गया धीरे-धीरे कि वह कौन है! घर के लोग समझा-समझा कर परेशान हो गए। मनोचिकित्सक समझा-समझा कर परेशान हो गए। चिकित्सा हुई, इलाज हुआ, लेकिन वह अब्राहम लिंकन ही बना रहा।
गांव में लोग कहने लगे कि जब तक, जैसे अब्राहम लिंकन को गोली लगी और वह मरा, जब तक इसको गोली न लगेगी, यह मारने वाला नहीं।
फिर एक यंत्र का आविष्कार हुआ, लाई-डिटेक्टर; जिसमें आदमी झूठ बोले तो पकड़ में आ जाता है। अदालतों में उपयोग किया जाता है। तो किसी ने सुझाव दिया कि लाई-डिटेक्टर का उपयोग करके देखा जाए कि यह आदमी क्या सच में ही अपने को लिंकन मानता है?
मशीन पर आदमी खड़ा कर दिया जाता है, उससे पूछा जाता है। दो-चार, छह सवाल पूछे जाते हैं। जैसे पूछा जाता है, इस समय तुम्हारी घड़ी में कितना बजा है? तो वह अपनी घड़ी देखता है, कहता है, आठ बजे हैं। अब इसमें तो झूठ बोलने का कोई कारण नहीं है। पूछा जाता है, दीवाल का रंग कैसा है? वह कहता है, सफेद है।
ऐसे चार-पांच प्रश्न पूछे जाते हैं, जिनमें झूठ बोलने का कोई कारण ही नहीं है। उसका हृदय एक तरह से धड़कता है। तुम भी जानते हो, जब तुम झूठ बोलते हो, हृदय पर एक चोट लगती है। क्योंकि भीतर से तो तुम जानते हो, जो सही है। और ऊपर से तुम थोपते हो, जो झूठ है। तुमसे कोई पूछता है, तुमने चोरी की? भीतर से तो उत्तर आता है, "हां।" हृदय तो कहता है, "हां", क्योंकि तुमने की है। लेकिन ऊपर से तुम कहते हो, "नहीं।" तो तुम्हारे हृदय में एक कशमकश होती है। हां और न का एक संघर्ष हो जाता है। क्षणभर का एक संकट खड़ा हो जाता है। वह संकट का क्षण लाई-डिटेक्टर पकड़ लेता है कि भीतर कोई संकट खड़ा हुआ है। तो

जो ग्राफ बनाता है लाई-डिटेक्टर, झूठ पकड़ने वाला यंत्र, उस ग्राफ में संकट पकड़ में आ जाता है। पहले तो लकीरें लयबद्ध चल रही थीं। अब लकीरों में एक अचानक छलांग लग जाती है। सब गड़बड़ हो जाता है, अस्त-व्यस्त हो जाता है।
तो इस आदमी को लाई-डिटेक्टर फर खड़ा किया। दस-पांच सवाल पूछे, फिर पूछा
कि क्या तुम अब्राहम लिंकन हो? अब तक उसने यह बात कभी भी न कही थी। अब तक वह सदा कहता था हां, और कौन हूं? थक चुका था, वह अब इस उपद्रव से। तो उसने लाई-डिटेक्टर पर खड़ा होकर कहा, कि नहीं; मैं अब्राहम लिंकन नहीं हूं।
लेकिन डिटेक्टर ने बताया, कि यह आदमी झूठ बोल रहा है!
समझे आप मतलब? उस आदमी ने कहा, कि नहीं मैं अब्राहम लिंकन नहीं हूं। लेकिन डिटेक्टर ने बताया कि यह आदमी है, यह झूठ बोल रहा है। क्योंकि उसके हृदय में बात इतनी गहरी उतर गई थी, कि हृदय ने कहा, हो तो तुम अब्राहम लिंकन। अब बचने के लिए कह रहे हो, तो बात और। इतना तादात्म्य हो गया। वह आदमी अब्राहम लिंकन की तरह ही मरा। वह भूल ही गया।
तुम्हें पागलखानों में बहुत इस तरह के लोग मिलेंगे, जिन्होंने अपने
को कुछ समझ रखा है, मान रखा है। वे उसी तरह जीते हैं। वही मान्यता उनका जीवन हो गई है।
लेकिन पागलखाने को छोड़ दो, विराट जगत को विचार करो, अपने को विचार करो,
तो भी तुम पाओगे तुमने भी न मालूम कितनी मान्यताएं मान रखी हैं, जो तुम नहीं हो। शरीर तुम नहीं हो लेकिन तुमने मान रखा है कि तुम हो। यह उतना ही झूठ है, जितना कि किसी अभिनेता का मान लेना, कि वह अब्राहम है। यह उतना ही झूठा है, जितना कि किसी अभिनेता का मान लेना कि वह रावण हो गया। तुमने अपने को जवान मान रखा है, बूढ़ा मान रखा है, सुंदर मान रखा है, कुरूप मान रखा है; ये मान्यताएं झूठ हैं। ये संसार के बड़े मंच पर खेला जाता अभिनय है।
कौन सुंदर है? क्या है सौंदर्य की परिभाषा? अब तक कोई कर नहीं पाया परिभाषा कि सौंदर्य क्या है? जितनी जातियां हैं, उतनी परिभाषाएं हैं। जितने लोग हैं, उतनी परिभाषाएं हैं।
मान्यताएं हैं तुम्हारी। नाम तुम्हारे मां-बाप ने तुम्हें बचपन में
दे दिया, अब तुम उसको मान कर बैठ गए हो कि तुम्हारा नाम है। उस नाम में और लिंकन के नाम में और रावण के नाम में कोई बड़ा फर्क है? तुम्हें एक नाम दे दिया है। नाम तो कामचलाऊ है। और तुमने उससे तादात्म्य कर लिया है कि तुम वही हो। अब अगर उस नाम को लेकर कोई गाली दे दे तो जान लेने-देने को तुम उतारू हो जाते हो।
और नाम में रखा क्या है? मां-बाप ने कुछ और नाम दिया होता तो तुम ऐसे
ही निकल जाते। यह आदमी गाली देता रहता विष्णुप्रसाद को और तुम्हारा नाम विष्णुप्रसाद न होता; तुम्हारा नाम अल्लाहबख्श होता तो तुम निकल जाते। हालांकि मतलब दोनों का एक ही होता है। विष्णुप्रसाद का भी मतलब वही होता है, अल्लाहबख्श का भी मतलब वही होता है। मगर तुम निकल जाते। तुमसे कोई लेना-देना नहीं था। किसी हिंदू को गाली दे रहा है। तुम मुसलमान हो। तुम्हारा नाम अल्लाहबख्श है।
तुम्हें नाम तो कोई भी दिया जा सकता था, क्योंकि नाम तुम हो नहीं।
अनाम पैदा होते हो, फिर नाम के जाले में फंस जाते हो। फिर जिंदगी भर नाम और नाम को ही ढोते रहते हो। उसी के लिए जीते हो, उसी के लिए मरते हो। लोग समझाते हैं, नाम का ख्याल रखो। किस घर में पैदा हुए हो, किस बाप के बेटे हो। नाम को बचाओ। नाम की प्रतिष्ठा है। नाम का गुणगान है।
तो न तो नाम तुम हो, न रूप तुम हो। क्योंकि रूप कितना बदलता है! रोज बदलता है। तुम तो वही रहते हो, तुम कब बदले? जब तुम बच्चे थे तब भी तुम्हारे भीतर का तत्व वही था, जो अब है। कल जब तुम बूढ़े हो जाओगे, देह जरा- जीर्ण होगी, लोग अरथी बनाने की तैयारी करने लगेंगे, तब भी तुम तो भीतर वही रहोगे। मरते क्षण में भी तुम वही रहोगे, जो तुम जन्मते क्षण में थे। रत्ती भर भी भेद न पड़ेगा।
तो तुम्हारा रूप भी तुम नहीं हो। न तो नाम तुम हो, न रूप तुम हो। इसलिए हिंदू कहते हैं, जो नाम-रूप के ऊपर उठ गया, वह ज्ञान को उपलब्ध हो जाता है।
नाम-रूप से जिसका तादात्म्य छूट गया, वह उसे जान लेता है, जो वह है।

"उत्तिष्ठ, जाग्रत, प्राप्यवरान्निबोधत"--उठो, जागो, उसे पा लो, जो पाया ही हुआ है।
जाग जाओ, बस!
नींद क्या है?
तादात्म्य नींद है। वही तंद्रा है।
सारा धर्म इस एक छोटे से शब्द में समाया जा सकता है--तादात्म्य का तोड़ देना।
तादात्म्य का बनाना संसार है।
तादात्म्य का मिटा देना मोक्ष है, मुक्ति है।
तादात्म्य मन है और तादात्म्य के ऊपर उठ जाना, उन्मन अवस्था है--अमन; जिसको झेन फकीर नो-माइंड कहते हैं। उसको कबीर उन्मनी अवस्था कहते हैं।
यह सूत्र उन्मनी अवस्था का है। इसे समझने की कोशिश करो।
"अवधू मेरा मन मतिवारा"
दो तरह की मादकताएं हैं। दो तरह की शराबें हैं।
एक तो शराब है तादात्म्य की, मूर्च्छा की, बेहोशी की, नींद की। एक तो शराब है तुम्हारे विस्मरण की, जब तुम भूले हुए हो। जब तुम्हें अपनी बिल्कुल याद भी नहीं है।
और एक शराब है स्मरण की; जब तुम्हें अपनी याद आती है और अपने घर के दर्शन होते हैं, और अपना स्वरूप-बोध होता है।
पहली शराब शराबखानों से मिल जाती है। दूसरी शराब अगर खोजनी है, तो किसी शराबखाने में न मिलेगी। उसका शराबखाना तो सिर्फ परमात्मा के हाथों में है। अगर पहले तरह की शराब खोजनी है, तो कोई भी साकी पिला देगा। दूसरे तरह की शराब खोजनी हो, तो परमात्मा ही साकी बनता है।
उमर खय्याम ने अपनी रुबाइयात में उसी दूसरी तरह की शराब की बात की है। लेकिन फिट्जराल्ड गलत समझा। और फिर सारी दुनिया गलत समझी। और लोगों ने समझा कि उमर खय्याम शराबखाने की बात कर रहा है, साकी की बात कर रहा है, नशे की बात कर रहा है। उमर खय्याम सूफी फकीर है। वह उसी कोटि का आदमी है, जिस कोटि के कबीर।
हां, अगर खय्याम की और कबीर की मुलाकात होती तो वे एक-दूसरे को बिल्कुल समझ जाते। रत्ती भर भी अड़चन न होती। बोलने की भी जरूरत न पड़ती, एक दूसरे को देख कर समझ जाते। क्योंकि वह भी दूसरी शराब है, उसका नशा आंख में देखा जा सकता है।
जैसे पहली शराब का नशा देखा जा सकता है। क्या शराबी को रास्ते पर देख
कर तुम्हें पूछना पड़ता है कि शराब पी है? उनकी चाल बताती है, उनका ढंग बताता है, उनकी दुर्गंध बताती है। कुछ पूछना नहीं पड़ता। हालांकि शराबी छिपाता है। तो भी कुछ छिपा नहीं पाता। हर कोई जानता है, कि वे जरा ज्यादा पी गए हैं। छिपाने की कोशिश में भी उनका मतवालापन जाहिर होता है।
भीतर की शराब को भी कोई कभी नहीं छिपा पाया। जब बाहर की शराब नहीं छिपती, तो भीतर की क्या छिपेगी? क्षणभंगुर जो नशा है, वह नहीं छिपता तो शाश्वत का नशा कैसे छिपेगा? कबीर और उमर खय्याम अगर सामने होते तो दोनों हाथों में हाथ डाल कर नाचते। दोनों पहचान लेते कि दोनों ने एक ही साकी से पी है। दोनों एक मधुशाला के दीवाने हैं। मंदिर भी मधुशाला है।
उमर खय्याम का बड़ा अदभुत पद हैः
"मंदिर मस्जिद लड़वाते एक कराती मधुशाला।"
तुम्हारे मंदिर मसजिद तो लड़वाते हैं। ये मंदिर मस्जिद तो कोई मंदिर मस्जिद नहीं हैं। "एक कराती मधुशाला।"
लेकिन अगर कभी तुम असली मंदिर में प्रवेश कर गए तो वह मधुशाला है। मधुशाला में तुमने किसी को फिकर करते देखा है--कि कोई पूछता है, कि जैन हो, तुम हिंदू हो, कि मुसलमान हो, कि? साधारण मधुशाला में भी कोई नहीं पूछता। पीने वाले को क्या फिकर--कि कुरान की पूजा करता है, कि गीता की? पीनेवाले सब एक हैं। मधुशाला में कोई हिसाब नहीं; न हिंदू का, न मुसलमान का। मधुशाला में हिंदू-मुसलमान का दंगा होता ही नहीं।

तुम्हारे मंदिर तो साधारण मधुशाला से गए-बीते हैं। वहां सिवाय उपद्रव के कुछ भी नहीं है। जमीन तुड़वा दी है उन्होंने।
लेकिन अगर असली मंदिर हो, तो ये मधुशालाएं जो बाहर की हैं, क्या जोड़ेंगी? जिसने भीतर की शराब पी ली, वह सबसे जुड़ गया। क्योंकि वह अपने से जुड़ गया। जो अपने से जुड़ गया, वह किसी से टूटा नहीं रह जाता, क्योंकि तुम्हारे भीतर ही तो वह सुरंग है, जो उस परमात्मा की तरफ ले जाती है। तुम्हारे भीतर ही तो वह झरना है, जो सबसे जुड़ा है।
अपने को जान कर तुम अचानक पाते हो कि तुम तो खो गए। बूंद विसर्जित हो गई, सागर ही बचा।
एक शराब है, जो तुम अपने को भुलाने के लिए पीते हो। एक और भी शराब है,
जो तभी उपलब्ध होती है, जब तुम जाग जाते हो। कबीर उसी शराब की बात कर रहे हैं। वे कहते हैं--
"अवधू मेरा मन मतिवारा।"
मैं मतवाला हो गया हूं।
"उनमनि चढ़ा गगन-रस पीवै, त्रिभुवन भया उजियारा।"
--कि मैं नशे में डूब गया हूं। लेकिन इस नशे में डूबने में मजा यह है कि होश बढ़ता है, घटता नहीं। यह होश का ही नशा है। यह होश की ही शराब है। "उनमनि चढ़ा... "
साधारण आदमी जब नशे में होता है तो नीचे गिरता है, चढ़ता नहीं। जीवनधारा नीचे आती है। जितना तुम्हारा तादात्म्य होता है, उतने तुम नीचे आते हो।
और तुमने कभी ख्याल किया कि हर तादात्म्य से नशा आता है? कभी देखो किसी आदमी को, जो पागल है धन के पीछे। तुम पाओगे कि उसे शराब पीने की जरूरत नहीं है, धन काफी शराब है। उसकी आंखों में एक दौड़ पाओगे तुम। उसकी आंखों में रुपए की खनक पाओगे तुम। उसकी आंखों में रुपए की धार पाओगे तुम। वह न सोएगा, न जागेगा। वह चौबीस घंटे धन और धन का चिंतन और स्मरण कर रहा है। वह सब भूल जाता है। न परमात्मा की फिक्र, न पत्नी की, न बच्चों की, न प्रेम की। धन सब कुछ है। वह धन के साथ एक हो गया है। अगर तुम उसका धन छीन लो, तो वह पाएगा कि तुमने उसकी आत्मा छीन ली। अगर उसका धन चला जाए, तो वह आत्महत्या कर लेगा। धन ही सब कुछ था। वही उसकी आत्मा थी। वह चली गई। अब जीना किसलिए? अब जीने का सार क्या है, अर्थ क्या है?
वह तो था ही नहीं। उसके प्राण तो रुपयों में थे। उसका परमात्मा तो वहीं छिपा था। वही उसकी पूजा थी, वही उसकी अर्चना थी। वही उसके जीवन का सार निचोड़ था।
धन से जिसने एकात्म कर लिया, तुम उसमें एक दौड़ पाओगे, एक नशा पाओगे। उसे शराब पीने की जरूरत नहीं है। वह शराबियों की निंदा करेगा। वह अक्सर शराब-बंदी के पक्ष में होगा। क्योंकि वह एक ऐसी शराब पीता है, जिसको तुम बंद कर ही नहीं सकते।
राजनीतिज्ञ है; पद की दौड़ में लगा है। एक नशा है। मोरारजी देसाई हमेशा शराब-बंदी के पक्ष में हैं, क्योंकि पद की शराब पी रहे हैं। वह नशा बड़ा है। छोटे-मोटे शराबी, जो मधुशाला में बैठ कर एकाध कुल्हड़ पी लेते हैं उनके लिए नाराज हैं! लेकिन पद की शराब बड़ी पुरानी है। और जितनी पुरानी शराब हो, उतनी गहरी होती है।
पद का नशा बहुत बड़ा है। पद के लिए आदमी सब छोड़ने को तैयार होता है। पद
के लिए सब कुर्बान करने को तैयार होता है। आमरण अनशन भी करना पड़े, तो भी तैयार होता है। पद की एक दीवानगी है, एक पागलपन है।
तो यह बड़े मजे की बात है कि जो पद की दौड़ में हैं, वे कहेंगे, कि बंद करो शराब। शराब की क्या जरूरत है? उनके लिए काफी शराब उनके पद के नशे से मिल रही है।
जो धन की दौड़ में हैं, वे भी कहेंगे, बंद करो। असल में तुम शराबखाने में उन्हीं लोगों को पाओगे, जिनको न धन की दौड़ है, न पद की दौड़ है, न मोक्ष की दौड़ है; उन्हीं को तुम पाओगे। दौड़ने वालों को तो शराबखाने जाने की

फुरसत नहीं। वे अपनी शराब अपने घर में ही निचोड़ते हैं। वे अपनी शराब खुद ही बनाते हैं। और उसका नशा बड़ा तेज है।
शराबखानों में तुम उन लोगों को पाओगे, जो जीवन में बिल्कुल दीन-हीन हैं। जिनकी जीवन की कोई महत्वाकांक्षा नहीं। जो किसी तरह अपने को ढो रहे हैं। वे दया के योग्य हैं।
असली खतरनाक लोग तो वे हैं, जो धन, पद, प्रतिष्ठा के मोह में; धन, पद प्रतिष्ठा की शराब में डूबे हुए हैं। ये खतरनाक लोग हैं। हिटलर शराब नहीं पीता था। पीने की जरूरत नहीं है। हिटलर इतनी बड़ी शराब पी रहा था जितनी दुनिया में कभी कोई दो-चार लोग ही पी सके हैं--कभी कोई सिकंदर, कोई नेपोलियन। हिटलर को शराब पीने की जरूरत न थी। क्या जरूरत? इतने नशे में डूबा था वह। उसके पैर जमीन पर न पड़ रहे थे। तुम्हारी साधारण शराब की जरूरत न रही उसे। उसने बड़ी असाधारण शराब पी ली है।
एक बात ख्याल रखो: कि शराब का अर्थ होता है, जिससे तुम अपने को भूल जाओ। वह शराब बोतलों में बंद हो सकती है। वह शराब शास्त्रों में बंद हो सकती है। वह शराब मंदिर के विधि-विधान में बंद हो सकती है। वह शराब राजधानियों में हो सकती है। वह शराब तिजोड़ियों में, बैंक में जमा हो सकती है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।
जिस चीज से भी तुम अपने को भूल जाते हो, जिसमें तुम इतने लग जाते हो, कि तुम्हें याद ही नहीं रहती, कि अपने को भी पाना है और जागना है। जो भी तुम्हें अपने से दूर ले जाती है, वह शराब है। यह बाहर की शराब है।
एक और शराब है, जो तुम्हें अपने पास ले आती है। कबीर उसी शराब की बात
कर रहे हैं। वे उसी शराब को बनाने का रास्ता बता रहे हैं।
"अवधू मेरा मन मतिवारा,
उनमनि चढ़ा गगन-रस पीवै"
और बाहर की शराब का लक्षण है, कि वह तुम्हें नीचे उतारती है। और भीतर
की शराब का लक्षण है कि वह तुम्हें ऊपर ले जाती है। भीतर की शराब सीढ़ियां हैं परमात्मा की तरफ। जैसे-जैसे होश बढ़ता है, वैसे-वैसे तुम ऊपर उठते हो। जैसे-जैसे होश कम होता है, वैसे-वैसे तुम नीचे गिरते हो। जब होश बिल्कुल नहीं रह जाता, तब तुम पत्थर जैसे निर्जीव हो। और जब होश परिपूर्ण हो जाता है, तब तुम परमात्मा जैसे परम चैतन्य हो, सच्चिदानंद हो।
"उनमनि चढ़ा गगन-रस पीवै"
और अब मैं चढ़ गया हूं उन्मन में। वहां पहुंच गया हूं, जहां मन नहीं है। वहां चढ़ गया, जहां मन नहीं।
तुम्हारे भीतर वह जगह है, जहां मन नहीं है। और वहीं तुम हो। जहां तक मन है, वहां तक संसार है। जहां तक मन है, वहां तक बाहर-बाहर। जहां मन समाप्त होता है, वहीं भीतर की शुरुआत है। वहीं से अंतर्यात्रा शुरू होती है।
मन यानी बाहर, उन्मन यानी भीतर।
थोड़ा सोचो, जब तक तुम्हारे मन में विचार चलता है, तब तक तुम बाहर ही रहोगे। क्योंकि सब विचार बाहर के हैं। भीतर का कोई विचार ही नहीं होता। मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, हम ध्यान करते हैं, हम आत्मा का विचार करते हैं। मैं उनसे कहता हूं, आत्मा का विचार कैसे करोगे? आत्मा का अनुभव होता है; विचार कैसे करोगे? अगर विचार करोगे तो उसका आत्मा से कोई संबंध ही न रहा। शास्त्र में पढ़ लिया होगा सिद्धांत, कि आत्मा क्या है। फिर उसका तुम विचार कर सकते हो। वह तो बाहर की बात हो गई। शास्त्र बाहर है, सत्य भीतर है।
आत्मा का तुम विचार कैसे करोगे? परमात्मा का विचार कैसे करोगे? ये
कोई विचार की बातें हैं! जब तुम निर्विचार हो जाते हो तभी तुम्हारा जोड़ बनता है। तभी सांधा बैठ जाता है।
"उनमनि चढ़ा गगन-रस पीवै... ।"
और जैसे-जैसे तुम ऊपर चढ़ते हो, वैसे-वैसे गगन का रस बरसता है। जैसे- जैसे तुम नीचे जाते हो, वैसे जीवन के साधारण रस, गगन का रस नहीं--शरीर के रस, इंद्रियों के रस, पदार्थ का रस--भोजन का, भोग का--बड़े क्षुद्र, निम्न, साधारण।

जिनको तुम भी सोचोगे तो पछताओगे। तुम पछताए हो। ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है, जो संभोग के बाद न पछताता हो। ऐसी स्त्री खोजनी मुश्किल है, जो संभोग के बाद एक ग्लानि से न भर जाती हो और मन में एक निर्णय न उठता हो, कि बस, बहुत हुआ। अब काफी। फिर भूल होती है वह बात दूसरी; लेकिन पछतावा तो होता ही है। फिर चौबीस घंटे में, अड़तालीस घंटे में भूल जाती है बात। तुम्हें अपनी याद ही नहीं है। तुम कैसे स्मरण रखोगे कि पछताए थे? वह भी भूल जाता है।
क्रोध में भी एक तरह का रस तो है। नहीं तो लोग क्रोध क्यों करें? कुछ न कुछ मिलता ही होगा। कुछ मजा आता ही होगा; यद्यपि मजा जहर से जुड़ा है। चाहे बूंद भर मजा हो और सागर भर जहर हो, लेकिन मजा कुछ मिलता ही होगा तभी तो लोग जहर को भी पीने को तैयार होते हैं। क्रोध में जलने को राजी होते हैं। पछताते हैं पीछे, लेकिन क्रोध के क्षण में फिर भूल जाते हैं।
कुछ रस होगा। वह रस है अहंकार का रस। जब तुम क्रोध से भरे हो, तब तुम दूसरे को नीचा दिखाने की कोशिश कर रहे हो, अपने को ऊपर दिखाने की कोशिश कर रहे हो।
इसलिए अहंकारी कभी क्रोध से मुक्त नहीं हो सकता। सिर्फ निर-अहंकारी
ही मुक्त हो सकता है। सिर्फ वही मुक्त हो सकता है, जिसने अपने को पीछे ही खड़ा कर लिया है। जो सबसे पीछे खड़ा हो गया हो। जिसने अपने को महत्वाकांक्षा से शून्य कर लिया, फिर उसे कोई क्रोध नहीं होगा। उसे कोई क्रोध पैदा नहीं करवा सकता।
अहंकारी तो जलेगा; क्रोध से जलता ही रहेगा। पछताएगा, क्योंकि जब भी क्रोध करेगा, तभी अपना भी हाथ जलेगा। दूसरे का जले न जले, अपना तो जल ही जाता है। घाव छूट जाते हैं।
नीचे के रस हैं; मिश्रित हैं, उनमें दुख जुड़ा है। संसार में सुख है। नहीं है, ऐसा मैं न कहूंगा। नहीं तो इतने लोग भटकते कैसे? इतने लोग गवाह हैं। अरबों-खरबों लोग गवाह हैं कि संसार में रस है। हां, रस बहुत विरस से जुड़ा है। एक बूंद है अमृत की, लेकिन पूरी प्याली जहर की है। जब तुम देखते हो, तो अमृत की बूंद दिखाई पड़ती है। जब तुम पीते हो, तो जहर रग-रग रोएं-रोएं में फैल जाता है। तब तुम पछताते हो, कसम लेते हो, व्रत लेते हो छोड़ देने का, लेकिन ऐसे कभी कुछ छूटा नहीं है। तुम अगर नीचे की तरफ रहोगे बहते, मूर्च्छा की तरफ, कुछ भी छूट न सकेगा।
तुम अगर ऊपर की तरफ जाओगे तो एक दूसरे ही महारस का आविर्भाव होता है।
उसको कबीर कह रहे हैं, गगन-रस। तब आकाश से कुछ चूना शुरू होता है।
नीचे के जो रस हैं उनका केंद्र है कामवासना।
ऊपर के जो रस हैं, उनका केंद्र है सहस्रार।
ये दो केंद्र ख्याल में रखने जरूरी हैं। मूलाधार--वह नीचे के रसों का स्रोत है। क्रोध भी वहीं से पैदा होता है, कामवासना से। काम भी वहीं से पैदा होता है, लोभ भी वहीं से पैदा होता है। ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, मोह सब वहीं से पैदा होते हैं। वे सब काम के ही भिन्न-भिन्न रूप हैं। और जब तक तुम वहां जीते हो, वह निम्नतम अवस्था है चेतना की। उससे नीचे चेतना बिल्कुल खो जाती है।
ऊपर का, गगन का रस अगर पीना हो, तो सहस्रार। वह आखिरी केंद्र है तुम्हारा।
सात चक्र हैं; पहला है मूलाधार, अंतिम सहस्रार। इसे सहस्रार कहा है, क्योंकि यह सहस्त्र कमलदल जैसा है। जैसे कोई कमल का फूल खिले जिसमें सहस्त्र पंखुड़ियां हों, हजार-हजार पंखुड़ियां हों। यह अपूर्व अनुभव है आनंद का। जैसे तुम्हारी पूरी जीवन-चेतना कमल बन जाती है। तुम खिलते हो और तुम्हारे कमल पर गगन बरसता है।
लेकिन इसके लिए जरूरी है कि तुम सीढ़ियां चढ़ो। मन से उन्मन की तरफ जाओ।
मन मूलाधार से बंधा है। जैसे-जैसे ऊपर बढ़ोगे, मन कम होने लगेगा, उन्मन ज्यादा होने लगेगा।
हृदय बिल्कुल मध्य में है। तो हृदय में मन करीब-करीब आधा रह जाता है
और आधा उन्मन हो जाता है। इसलिए तो निरंतर ज्ञानी कहते हैं कि अगर चुनना

हो, और मन और हृदय के बीच ही चुनना हो, तो हृदय को चुनना। क्योंकि हृदय में कम से कम मध्य में खड़े हो सीढ़ी पर। वहां से ऊपर की यात्रा भी खुलती है। जैसे-जैसे ऊपर बढ़ते हो वैसे-वैसे उन्मन होते जाते हो। मन खोता जाता है, विचार खोते जाते हैं। मन यानी विचार की प्रक्रिया। वह बंद होती जाती है। निर्विचार का जन्म होने लगता है। अंतराल आने लगते हैं। क्षण भर को ऐसा लगता है कोई विचार नहीं है भीतर में। और जब विचार नहीं होते, तभी एक छलांग में चेतना सहस्रदल कमल वाले उस केंद्र पर पहुंच जाती है। एक छलांग में उत्तुंग शिखर को छू लेती है।
उसी क्षण में तुमसे और गगन का संबंध जुड़ जाता है। मूलाधार से तुम पृथ्वी से जुड़े हो, सहस्रार से तुम गगन से जुड़ते हो।
मनुष्य एक सीढ़ी है, जिसका एक पाया नीचे जमीन से टिका है और दूसरा पाया ऊपर आकाश से टिका है।
"उनमनि चढ़ा गगन-रस पीवै त्रिभुवन भया उजियारा।"
और जब तुम उस गगन के रस को पीते हो, तभी अंधकार खो जाता है। तीनों लोकों में प्रकाश हो जाता है। यह प्रकाश तुम्हारे भीतर से आता है। यह ज्योति तुम्हारे भीतर होती है। यह प्रकाश बाहर का नहीं है। यह बाती और तेल का प्रकाश नहीं। यह सूरज का प्रकाश भी नहीं है। क्योंकि वह भी बाती और तेल का ही है। कभी चुक जाएगा। वैज्ञानिक कहते हैं, चार हजार साल में सूरज चुक जाएगा। उसका तेल चुकता जा रहा है। चार हजार साल में बुझ जाएगा। करोड़ों वर्ष चलता है, लेकिन फिर भी सीमा है।
जिस दिन तुम्हारे सहस्रार पर गगन का मिलन होता है, अनंत की वर्षा होती है, मेघ घिरते हैं परमात्मा के तुम्हारे ऊपर, उस दिन तुम्हारे भीतर एक प्रकाश का अनुभव होता है, जिसकी न तो कोई शुरुआत है, और न कोई अंत। जो शाश्वत है, अनादि अनंत है, जिसका कोई जन्म और मृत्यु नहीं।
तभी तीनों लोक तुम्हारे लिए प्रकाशित हो जाते हैं।
"उनमनि चढ़ा गगन-रस पीवै त्रिभुवन भया उजियारा।
गुड़ करि ग्यान... "
अब यह भीतर की शराब बनाने का शास्त्र।
"गुड़ करि ग्यान ध्यान करि महुआ, भव भाठी करि मारा।"
ज्ञान को गुड़ बना लिया--मिठास। ध्यान को महुआ बना लिया--शराब का असली स्रोत।
ध्यान रखना, ज्ञान को कोई महुआ नहीं बना सकता। और जो बनाने की कोशिश करता है वही पंडित है और ऐसे ही मर जाता है। गुड़ खाकर कहीं नशा चढ़ा है? हां, गुड़ की भी उपयोगिता हो सकती है। अगर नशा तैयार हो, तो थोड़ी सी मिठास डाल देना उपयोगी होगी। गुड़ का थोड़ा उपयोग हो सकता है। गुड़ ना हो, तो भी चल जाएगा। महुए में भी अपनी मिठास है, लेकिन शायद शराब थोड़ी तिक्त और कड़वी होगी। थोड़ा गुड़ मिलाना अच्छा हो जाएगा।
तो ज्ञान अगर थोड़ा पास हो--लेकिन उसकी उपयोगिता द्वितीय है, प्रथम नहीं है। महुआ पास न हो तो गुड़ कितना ही हो, क्या करोगे? उससे तुम नशे को उपलब्ध न हो जाओगे।
ध्यान है महुआ। ज्ञान के बिना भी चल सकता है, लेकिन ध्यान के बिना नहीं चल सकता। हां, अगर ध्यान का महुआ पास हो और थोड़े ज्ञान का गुड़ भी पास हो, तो सोने में सुगंध आ जाती है। ऐसे सोना बिना सुगंध के भी काफी अच्छा है, चल सकता है। लेकिन सोने में सुगंध आ जाती है।
ज्ञान का इतना ही उपयोग है कि वह ध्यान में सहयोगी हो जाए। अगर ज्ञान, ध्यान में बाधा बनता हो, तब तो वह ज्ञान ही नहीं। वह तो अज्ञान से बदतर है। अगर ज्ञान, ध्यान में सहयोगी बन जाता हो तो वह मिठास है। वह महुए में थोड़ी मिठास ला देगा। शराब थोड़ी मीठी हो जाएगी, सुस्वादु हो जाएगी।
मैं तुमसे बोल रहा हूं। चाहो, तो तुम इन शब्दों को इकट्ठा करके सिर्फ गुड़ इकट्ठा कर ले सकते हो। तब तुम पंडित हो जाओगे। लेकिन अगर साथ-साथ तुमने ध्यान के महुए भी इकट्ठे किए, तो जो मैं तुमसे बोल रहा हूं--जब तुम्हारी शराब तैयार होगी, तो तुमसे जो जो मैंने कहा है, उसकी मिठास तुम उसमें मिला दे सकोगे। सुस्वादु हो जाएगी।

"गुड़ करि ग्यान ध्यान करि महुआ, भव भाठी करि मारा।"
और सारे जीवन को भट्टी बना दी। सारे जीवन को यज्ञ बना दिया। सारे जीवन
की तपश्चर्या को ताप बना दिया, अग्नि बना दिया। सारे जीवन के अनुभव को भट्टी बना दिया।
इसलिए तुमसे कहता हूं, बिना अनुभव के तुम कहीं भी पहुंच न सकोगे। युवक आते हैं मेरे पास। वे कहते हैं, हम क्या करें? विवाह करें, न करें? उनसे कहता हूं, करो। नहीं तो तुम्हारे जीवन में अनुभव न होगा। जाओ, भटको थोड़ा। भटकाव का भी प्रयोजन है। भूल की भी सार्थकता है।
नहीं तो महुआ भी पास होगा, गुड़ भी पास होगा, और जीवन के अनुभव की भट्टी
ही न होगी तो महुआ खा लेने से नशा न आएगा। जीवन की भट्टी से गुजरना जरूरी है। कच्चे-कच्चे कभी कोई परमात्मा को उपलब्ध नहीं हुआ है, पकना अत्यंत आवश्यक है। यह पृथ्वी इसीलिए है कि तुम पको। यह जीवन का इतना फैलाव इसीलिए है कि तुम अनुभव से गुजरो, परिपक्व बनो! एक मैच्योरिटी, एक प्रौढ़ता तुम्हारे जीवन में आ जाए।
जीवन से बिना गुजरे कैसे तुम प्रौढ़ बनोगे? इसलिए अक्सर यह होता है, कि जिन लोगों ने जीवन को बहुविध रूपों में देखा है, बुरे और भले सब रूपों में देखा है, उनके जीवन में एक परिपक्वता होती है; जो कि उन लोगों के जीवन में नहीं होती, जिन्होंने जीवन के सब रूप नहीं देखे।
अगर कोई व्यक्ति सज्जन रह कर ही संत हो गया, तो उस संत में तुम कुछ कमी पाओगे। वह थोड़ा सा बेस्वाद होगा। उसमें तुम पाओगे कि जीवन की गरिमा, प्रगाढ़ता, गहराई नहीं है। वह थोड़ा उथला-उथला होगा।
अगर किसी व्यक्ति ने जीवन का वह रूप भी देखा, जो शुभ है वह रूप भी देखा,
जो अशुभ है; जिसने शैतान से भी मुलाकात की; और जो नरको से भी गुजरा और स्वर्गों से भी; जिसने अंधेरी रातें भी देखीं और प्रकाशोज्वल दिन भी देखे; जिसने पतझड़ भी देखा और वसंत भी; जो रोया भी और हंसा भी; जो गिरा भी और उठा भी, उस आदमी के जीवन में एक गहराई होती है। उस आदमी के जीवन में एक गहनता होती है; एक त्वरा और तीव्रता होती है। ऐसा व्यक्ति जब संतत्व को उपलब्ध होता है तो वह परिपूर्ण पका हुआ फल है। कच्चे फल थोड़े ही चढ़ाए जाते हैं पूजा में--पके हुए फल! पक जाना सबसे महत्वपूर्ण है।
और कबीर कहते हैंः "भव भाठी करि मारा।" और जीवन के सारे अनुभवों को भट्टी बना दिया, अग्नि बना दिया। और उस अग्नि में डाल दिया ध्यान का महुआ। और ध्यान के महुए में डाल दिया ज्ञान का गुड़।
"सुखमन नारी सहज समानी पीवै पीवन हारा।"
अब यह जरा बहुत सूक्ष्म बात है--
"सुखमन नारी सहज समानी... "
पश्चिम में कार्ल गुस्ताव जुंग ने इस सदी में एक बहुत महत्वपूर्ण खोज की। और वह खोज यह थी कि हर पुरुष के भीतर एक स्त्री छिपी है और हर स्त्री के भीतर एक पुरुष छिपा है। कोई स्त्री सिर्फ स्त्री नहीं है कोई पुरुष सिर्फ पुरुष नहीं है।
यह ठीक भी है। होना भी ऐसा ही चाहिए। क्योंकि प्रत्येक बच्चा मां- बाप--दो से पैदा हुआ है। और दोनों उसके भीतर होंगे। जब बच्चा पैदा होता है तो कुछ पिता है उसमें, कुछ मां। दोनों संयुक्त हैं। दो धाराएं बह रही हैं उसमें। गंगा जमुना उसमें मिली हैं। अगर तुम गौर से देखो, तो तुम गंगा- जमुना की धाराओं को अलग देख सकते हो प्रयाग में।
अगर किसी व्यक्ति की जीवन-चेतना में तुम गौर से देखने की कला समझ जाओ,
तो तुम देख सकते हो कि पिता और मां--कैसे अलग-अलग रंगों की दो धाराएं बह रही हैं। स्त्री है उसके भीतर, पुरुष है उसके भीतर। और वह जो भीतर छिपी स्त्री हैं पुरुष के भीतर, वही तो पुरुष का आकर्षण है बाहर की स्त्री में। भीतर का तो उसे पता नहीं है। एक पुकार है, एक प्यास है, एक तड़फन है। और भीतर का उसे पता नहीं है, भीतर जाने का भी उसे कुछ पता नहीं है, भीतर जैसी कोई चीज है, इसका भी उसे पता नहीं है। वह अपने घर के पोर्च के ही पास खड़ा जी रहा है। उसे घर भीतर क्या है, उसका पता भी नहीं है। द्वार इतने दिन से बंद हैं, कि दीवाल जैसा लगता है। पोर्च को ही घर समझ लिया। वहीं जीता है।

और नजर उसकी सड़क पर लगी है। क्योंकि आंख बाहर ही देख रही है। भीतर देखने को तुम्हें कुछ अंदाज ही नहीं है। वह भीतर देखना ही तो ध्यान है। वह महुआ तुम्हें अभी मिला नहीं।
तो भीतर एक नारी है पुरुष के; वही आकर्षण है बाहर की नारी में। और भीतर
एक पुरुष है नारी में, वही आकर्षण है बाहर के पुरुष में। इसलिए बड़ी अड़चन भी है। आकर्षण भी; अड़चन भी, उपद्रव भी।
क्योंकि जब तक तुम्हें तुम्हारी भीतर की नारी जैसी नारी बाहर न मिल जाए, तब तक तृप्ति न होगी। क्योंकि उसे तुम खोज रहे हो।
और यह असंभव है। करीब-करीब असंभव है। अगर कुछ प्रतिशत भी बाहर की नारी मिल जाए तो भी तृप्ति मालूम होगी, लेकिन पूरा मिल जाना तो असंभव है।
इसीलिए सुंदरतम जोड़े भी, पूर्णतम जोड़े भी अपूर्ण रह जाते हैं। कुछ कमी रह जाती है।
जिसकी खोज है, वह भीतर छिपी है। उसे तुम बाहर खोज रहे हो। थोड़ा-बहुत तालमेल बैठ जाए तो काफी है। इसलिए सौ में निन्यानबे विवाह असफल होते हैं। वे सफल हो ही नहीं सकते। उनकी बुनियाद में ही सफलता संभव नहीं है।
कैसे खोजोगे उस नारी को?
तुम एक प्रतिमा लिए हो भीतर, उसकी ही तलाश है। किसी स्त्री में वह झलक मिल जाती है किसी दिन; तुम प्रेम में पड़ जाते हो। जिसको तुम प्रेम में पड़ना कहते हो वह कुछ और नहीं है, तुम्हारी भीतर की नारी की झलक तुमने किसी स्त्री में देख ली है। कोई स्त्री तुम्हारे लिए दर्पण बन गई और तुमने अपनी भीतर की नारी का थोड़ा सा प्रतिबिंब उसमें पा लिया, थोड़ी छवि पकड़ ली। तुम प्रेम में पड़ गए।
अब तुम पागल हो गए कि जब तक यह स्त्री नहीं मिलेगी, शांति नहीं। यह तुम्हें मिल भी जाएगी; लेकिन थोड़े ही दिन शांति और सुख रहेगा। क्योंकि जैसे-जैसे तुम इसे ज्यादा पहचानोगे, वैसे-वैसे पाओगे, तुम्हारी भीतर की नारी से मेल खाता नहीं। फर्क है। रोज-रोज फर्क बड़ा होता जाएगा। जैसी पहचान बढ़ेगी, वैसे-वैसे फर्क बड़ा होता जाएगा। दूर से लगता था जो, वह पास से आकर ठीक नहीं पाया जाएगा। जितनी निकटता होगी, उतनी दूरी बढ़ जाएगी और इसलिए स्त्री और पुरुष के संबंध बड़े ही दुखद हैं--होंगे ही। कामचलाऊ हो सकते हैं।
तंत्र की यह बड़ी पुरानी खोज है। जुंग ने तो इस सदी में पश्चिम में यह कहा; लेकिन तंत्र की यह सदियों पुरानी खोज है; हजारों वर्ष पुरानी खोज है। हमने शिव की मूर्ति बनाई है अर्धनारीश्वर। आधे शिव पुरुष हैं और आधे स्त्री हैं। वह हमारी खोज है। उस मूर्ति में हमने कह दिया मनुष्य का यह सत्य।
और जब तक तुम्हारे भीतर की नारी तुम्हारे भीतर के पुरुष से मिल न जाए, आलिंगनबद्ध न हो जाए--उसको तंत्र कहता है, "युगनद्ध"; जब तुम अपने भीतर अपने द्वैत को मिला न लो, भीतर संभोग घटित न हो जाए, तब तक तुम अतृप्त रहोगे।
गुड़ करि ज्ञान ध्यान करी महुआ, भव भाठी करि मारा।
सुखमन नारी सहज समानी...
और इस आनंद की दशा में भीतर की जो नारी है, वह सहज ही भीतर के पुरुष में समा जाती है। वे दोनों एक हो जाते हैं। अर्धनारीश्वर पैदा हो जाता है। पीवै पीवन हारा...
और अब सिवाय पीने के कुछ भी नहीं बचा: संसार में प्यास ही प्यास है, परमात्मा में पीना ही पीना। संसार में अतृप्ति ही अतृप्ति है,
परमात्मा में तृप्ति ही तृप्ति। संसार में सवाल ही सवाल हैं, परमात्मा में समाधान ही समाधान।
सुखमन नारी सहज समानी, पीवै पीवन हारा।
यह घटना कब घटती है?
यह सहस्रार में घटती है। मूलाधार में तो तुम बाहर की नारी को खोजोगे,
या बाहर के पुरुष को खोजोगे और भटकोगे। वही तो संसार है। बाहर की नारी की खोज, बाहर के पुरुष की खोज संसार है।

जैसे-जैसे ऊर्जा ऊपर चलेगी, वैसे-वैसे तुम्हारा परिचय होगा, भीतर ही छिपी है तुम्हारी प्रेयसी। भीतर ही छुपा है तुम्हारा प्रियतम। वह जो मीरा ने सेज सजाई है, वह बाहर के प्रियतम के लिए नहीं। वे जो फूल बिछाए हैं, बाहर के प्रियतम के लिए नहीं। वह भीतर के प्रियतम के लिए तैयारी है। वह भीतर के पुरुष से मिलन हो रहा है।
सहस्रार--जैसे-जैसे ऊर्जा, भान, बोध ऊपर जाता है वैसे-वैसे भीतर के द्वैत में दूरी कम होती जाती है। एक घड़ी आती है, अनायास एक दिन तुम पाते हो--"सुखमन नारी सहज समानी।" तुम्हें कुछ करना नहीं होता; सिर्फ जागते जाना है। सहज समाना हो जाता है।
"पीवै पीवन हारा"--
फिर तो पीना ही पीना बचा। फिर तो परमात्मा का साकी ढाले जाता है और तुम पीए जाओ। और भीतर की मधुशाला न तो कभी बंद होती, और भीतर की मधुशाला न कभी चुकती। वह शाश्वत और सनातन है।
दोउ पुड़ि जोड़ि चिंगाई भाठी, चुया महारस भारी।
दोउ पुड़ जोड़ि चिंगाई भाठी...
वे जो दो पुड़ हैं तुम्हारे--स्त्री और पुरुष के भीतर; वह जो द्वैत है तुम्हारे भीतर, जो डुआलिटी है, जो दुई है-- दोउ पुड़ जोड़ि चिंगाई भाठी; उन दोनों के मिल जाने से प्रबल अग्नि जलती है। तुम्हारे भीतर की भट्टी परिपूर्ण रूप से जलती है। फिर उस अग्नि के लिए किसी ईंधन की जरूरत नहीं। अब यह थोड़ा, बड़ा बारीक है मामला। विज्ञान कहता है कि अगर हम अणु को तोड़ें, तो महाअग्नि पैदा होती है। अणु का विस्फोट वही है। हिरोशिमा, नागासाकी उसी में जले। कि अणु को अगर हम तोड़ दें, दो कर दें, तो महाअग्नि प्रकट होती है। यह विज्ञान की खोज है।
और योग और तंत्र की खोज यह है कि अगर हम दो को जोड़ दें तो भी महाअग्नि पैदा होती है। दो को तोड़ें, एक को तोड़ कर दो कर दें तो महाअग्नि पैदा होती है; यह बाहर की घटना है। और भीतर जहां दो हैं, उनको अगर हम एक कर दें, तो महाअग्नि पैदा होती है। वह भीतर की घटना है।
और भीतर और बाहर के नियम विपरीत हैं। बाहर तोड़ने से अग्नि पैदा होती है। भीतर जोड़ने से अग्नि पैदा होती है। बाहर का विज्ञान विश्लेषण है, भीतर का विज्ञान संश्लेषण है।
इसलिए हमने उसको योग नाम दिया है। योग का अर्थ है जोड़ना-जोड़ना-- जोड़ते जाना। उस समय तक जोड़ते जाना, जब तक कि एक ही न बच जाए।
दोउ पुड़ि जोड़ि चिंगाई भाठी, चुया महारस भारी।
और महारस बरसने लगा।
काम क्रोध दोइ किया बलीता--
काम, क्रोध दोनों पलीते बन गए अग्नि को जलाने में।
... छूटि गई संसारी।
जब उस मधुशाला में प्रवेश होता है, तभी संसार छूटता है। क्योंकि जब तक परमात्मा की शराब न मिल जाए, तब तक तुम्हें किसी न किसी तरह की शराब संसार में मांगनी ही पड़ेगी; अन्यथा जीयोगे कैसे?
कुछ तो सहारा चाहिए, कुछ तो सुख चाहिए। बूंद-बूंद ही सही। सागर न मिले
तो बूंद-बूंद मिले। कुछ तो सहारा, कुछ तो आशा चाहिए। तो तुम संसार में भटकोगे।
लेकिन जैसे ही "चुया महारस भारी, छूटि गई संसारी।"
फिर संसार गया। इसलिए कबीर जैसे ज्ञानी तुमसे संसार छोड़ने को नहीं कहते। वे कहते हैं, महारस को बरसा लो, संसार छूट ही जाएगा। सिर्फ अज्ञानी तुमसे कहते हैं, संसार छोड़ दो। ज्ञानी तुमसे कहते हैं, संसार छोड़ कर तुम जाओगे कहां? तुम जहां जाओगे वहीं संसार बना लोगे। तुम अज्ञानी हो। अभी छोड़ कर जाने की कोई भी जरूरत नहीं।
मेरे पास लोग आते हैं, वे मुझसे पूछते हैं, हम सब छोड़ दें? हम हिमालय चले जाएं?
हिमालय तुम क्या करोगे? हिमालय ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है? तुम हिमालय के पीछे क्यों पड़े हो? तुम जाओगे हिमालय--तुम ही जाओगे न? तो तुम जो

यहां कर रहे हो, वही हिमालय में करोगे। सिर्फ हिमालय जाने से तुम भिन्न कैसे हो जाओगे?
तुम यहीं रहो। हिमालय पर कृपा करो। तुम अपने को बदलो। तुम उस बड़े रस
को उपलब्ध हो जाओ, छोटे रस अपने से छूट जाते हैं। तुम उनकी चिंता ही मत करो। उनकी चिंता करना भी घातक है। क्योंकि चिंता करने में उन पर ध्यान देना होता है। तुम ध्यान ही मत दो उन पर।
जिसको हीरे मिल जाएंगे, क्या वह कंकड़-पत्थर हाथ में ढोता फिरेगा? क्या उसे हमें समझाना पड़ेगा, कि कंकड़-पत्थर छोड़ नासमझ! हीरे हैं, इनको उठा। वह हमारी प्रतीक्षा करेगा? वह कंकड़-पत्थर खुद ही छोड़ देगा। उसे पता भी न चलेगा कब छोड़ दिए कंकड़-पत्थर, कब भर लिए हीरे झोली में।
"चुया महारस भारी, छूटि गई संसारी
सुंनि मंडल में मंदला बाजै, तहि मेरा मन नाचै।"
और अब शून्य आकाश में अनहद के बाजे बज रहे हैं। और अब मैं वहीं नाच रहा हूं।
कबीर तुम्हें जहां दिखाई पड़ते हैं, वहां नहीं हैं। दिखाई तो पड़ते हैं देह में। वहां तो अब बस, जुड़ा हुआ एक धागा भर रह गया है। कबीर को खोजना हो, तो दूर शून्य गगन में खोजना। वहीं वे नाच रहे हैं। अगर तुमने कबीर को शरीर में देखा, तो तुम्हें अपने जैसा ही शरीर दिखाई पड़ेगा। वहां तो बस, जरा सा धागा जुड़ा रह गया। जैसे नाव बस जरा एक रस्सी से बंधी किनारे पर रही हो, छूटने को तैयार हो। छूट ही चुकी हो। तड़फ रही हो छूटने को।
लेकिन असली कबीर को खोजना हो तो शून्य गगन में खोजना, क्योंकि वहीं अब उनका नाच चल रहा है। जहां अनहद का बाजा बज रहा है; जहां वीणा बज रही है परमात्मा की, वहीं वे नाच रहे हैं।
अब तुम उन्हें शरीर में न पा सकोगे। शरीर में देखोगे तो चूक हो जाएगी। सदा लोग इसी तरह चूके हैं बुद्ध को, महावीर को, कृष्ण को, क्राइस्ट को, कबीर को, नानक को, मोहम्मद को। तुम शरीर में देखते हो, क्योंकि तुम अपने को शरीर में मानते हो। वही भ्रांति तुम उनकी तरफ भी लगाते हो।
वहां वे नहीं हैं। वहां तो बस, जरा सा संबंध रह गया है; वह भी तुम्हारी करुणा के कारण। तुम्हारे प्रति करुणा के कारण। जुड़े हैं, ताकि शरीर का थोड़ा सा उपयोग कर लें तुम्हारे लिए। तुम शरीर के बिना न समझ पाओगे। थोड़ी तुमसे बात कह दें। जो मिला है, उसकी थोड़ी खबर तुम्हें दे दें। जो पा लिया है, उस तरफ तुम्हें भी गतिमान कर दें। थोड़ा इशारा कर दें। हाथ की अंगुलियों से इशारा कर लें, क्योंकि फिर अदृश्य हाथों को तुम न देख सकोगे। अन्यथा...
"सुंनि मंडल में मंदला बाजै, तहि मेरा मन नाचै।
गुरु प्रसादि अमृत फल पाया, सहजि सुषमना काछै।"
और गुरु के प्रसाद से अमृत का फल मिल गया। अब सब सहज हो गया, सब शांत हो गया। अब परम आनंद, सहजानंद। अब उसमें रत्ती भर कमी नहीं रह गई।
लेकिन कबीर सदा याद रखते हैं एक बात--गुरु प्रसादि। क्योंकि तुम्हारे यत्न से बहुत कुछ होगा, अंतिम घटना न घटेगी। तुम्हारे प्रयत्न से बहुत कुछ होगा; अंतिम घटना की तैयारी बनेगी। अंतिम घटना तो गुरु-प्रसाद से घटेगी। ऐसा क्यों है?
क्योंकि तुम आखिरी क्षण तक अज्ञात में कैसे उतर पाओगे? अज्ञात तुम जानते नहीं हो। तुम तैयार भी हो जाओगे तो भी तुम ज्ञात को ही पकड़े रखोगे। डरोगे अज्ञात में जाने से। गुरु ही तुम्हें धक्का देगा। वही तुम्हें आश्वस्त करेगा। वही कहेगा, कूद जाओ। अगर आस्था हुई तो कूद सकोगे। कूद कर ही पाओगे, सब पा लिया। मिट कर ही सब पाया जाता है।
तो जब तक तुम बच रहोगे, तब तक परमात्मा से मिलन न होगा। जरा सी बारीक रेखा खिंची रहेगी तुम्हारे और परमात्मा के बीच में। और उसको मिटाने का एक ही उपाय है, कि गुरु तुम्हें धक्का दे दे।
गुरु का मतलब है, जिस पर तुम्हारा भरोसा इतना है, कि वह अगर तुम्हें मरने को कहे तो तुम मरने को राजी हो। तो ही तो, वह जब तुम्हें धक्का देगा, तुम राजी रहोगे। वह तुम्हें दुश्मन न मालूम पड़ेगा; वह तुम्हें मित्र

मालूम पड़ेगा। और उस पर आस्था इतनी है, कि तुम अज्ञात में छलांग लगाने को राजी हो जाओगे। तुम जैसे हो, वैसे मरने को राजी हो जाओगे जिस दिन, उसी दिन तो तुम्हारा परम रूप प्रकट होगा।
"गुरु प्रसादि!"
इसलिए कबीर इसे कभी नहीं भूलते। सारी यात्रा का अंतिम पड़ाव, वे सदा "गुरु प्रसादि" से करते हैं।
गुरु प्रसादि अमृत फल पाया, सहज सुषमना काछै।
अब सब हो गया, जो होना था। पा लिया, जो पाना था। लेकिन पाया गुरु के प्रसाद से।
पूरा मिल्या तबै सुख उपज्यो, तन की तपति बुझानी
कहै कबीर भव-बंधन छूटै, जोतिहि जोति समानी।।
पूरा मिल्या तबै सुख उपज्यौ--
आधा-आधा मिलने से सुख नहीं उपजता, दुख और बढ़ता है।
मनस्विद कहते हैं, कि जितना मिलता है, उतना दुख बढ़ता है। क्योंकि उतने
ही पूरे मिलने की आशा बढ़ती है। तुमने "निन्यानबे का चक्कर"--ये शब्द सुने हैं। इसका मतलब यह होता है कि जिसके पास निन्यानबे हों, वह सौ की कोशिश में लग जाता है। क्योंकि जब तक सौ न हो जाएं, वह खटकती है कमी। निन्यानबे हैं, और एक कम है, तब तक सुख नहीं मालूम पड़ता। लेकिन वह चक्कर ऐसा है कि जैसे ही सौ हो जाते हैं, वैसे ही एक सौ एक हो जाएं, एक सौ दो हो जाएं--चक्कर चलता ही चला जाता है।
इस संसार में तो पूरा कभी हो ही नहीं सकता, इसलिए इस संसार में कभी कोई सुखी हो नहीं सकता। सुख की आशा करो, लेकिन उपलब्धि कभी नहीं होगी। इस संसार में कुछ भी कभी पूरा नहीं होता। कुछ न कुछ बाकी रहता है। कुछ न कुछ बाकी रहता है और जितना ज्यादा बाकी रहता मालूम होता है, उतनी पीड़ा बढ़ती जाती है।
अब यह बड़े मजे की बात है। गरीब आदमी उतना परेशान नहीं होता, क्योंकि उसके पास एक रुपया भी नहीं है। निन्यानबे जिसके पास हैं, वह ज्यादा परेशान होता है। क्या मामला है? मामला यह है कि गरीब को अभी महत्वाकांक्षा ही नहीं जगती पूरा करने की। जरा भी नहीं है पास में, पूरा क्या करना? जरा सा भी टुकड़ा नहीं मिला है, पूरे की वासना कैसे जगे? तो गरीब को जो मिलता है, ठीक है।
मैंने सुना है, एक सम्राट का एक नाई था। वह बड़ा प्रसन्न था। सम्राट भी ईर्ष्या करता था उससे। कि वह बड़ा मस्त आदमी था। सम्राट की मालिश करता, दाढ़ी बनाता, हजामत बनाता, गीत गुनगुनाता रहता, गपशप करता रहता। हमेशा प्रसन्न था।
एक दिन उदास हो गया। फिर उसकी उदासी बढ़ती गई। सम्राट ने पूछाः क्या मामला है? उसने कहाः मेरी तनख्वाह बड़ा दें। तनख्वाह दुगुनी कर दी गई। सम्राट उसको प्रेम करता था। लेकिन कुछ हल न हुआ। तनख्वाह तिगनी कर दी गई, कुछ हल न हुआ। वह और भी सूखता गया, और दुबला हो गया!
आखिर एक दिन सम्राट ने कहाः सुन, तू जंगल तो नहीं गया था?
उसने कहाः मैं गया था।
तू एक पीपल वृक्ष के नीचे तो नहीं था, जहां किसी ने आवाज दी हो कि ले,
यह धन अपने साथ ले जा?
उसने कहाः अरे, आपको पता कैसे चला?
उसने कहाः तू वह मटका वापस लौटा दे। उसी के चक्कर में तू पड़ा है। एक दफे मैं भी उसी चक्कर में पड़ चुका हूं। वह पीपल के वृक्ष में एक यक्ष रहता है। और उसके पास एक मटका है, जिसमें निन्यानबे रुपए हैं। और जो भी वहां से निकलता है, वह लोगों से कहता है कि ले जाओ। यह मटका ले जाओ।
और जो भी ले जाता है, वह मुश्किल में पड़ जाता है। क्योंकि जब वह घर जाकर गिनता है निन्यानबे, तो सौ करने की वासना पैदा होती है।
ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है जिसके पास निन्यानबे हों, और सौ करने की वासना पैदा न हो।

वह वैसा ही स्वाभाविक है, जैसे तुम्हारा दांत टूट जाता है तो जीभ वहीं-वहीं जाती है। पहले कभी नहीं जाती थी! वर्षों तक वह दांत वहां था, तुमने कभी चिंता न की, न जीभ ने उसकी खोज खबर ली। आज दांत टूट गया। उठते, बैठते, सोते, जागते जीभ वहीं-वहीं जाती है। वह जगह खाली हो गई। वह खाली जगह को भरने का मन होता है।
वे जो निन्यानबे रुपये हैं, खतरनाक हैं। उस राजा ने कहाः तू जा वापस
और मटका लौटा कर आ। मैं भी उस झंझट में पड़ चुका था। और बड़ी मेरी जान मुसीबत में पड़ गई थी।
क्योंकि जिस दिन से वह मटका उस नाई को मिल गया, वह मुश्किल में पड़ गया। उसे एक रुपया रोज मिलता था राजा से। उसने सोचा, कल उपवास ही कर लें। एक दिन की ही तो बात है। एक रुपया डाल देंगे, सौ हो जाएंगे। लेकिन जब वे सौ हो गए, तो लगा, एक सौ एक करने में और भी ठीक रहेगा। फिर बढ़ती गई बात। फिर कभी अंत नहीं आता।
इस जगत में पूरा तो मिल ही नहीं सकता। पूरा तो सिर्फ परमात्मा ही मिल सकता है। और कोई चीज पूरी नहीं मिल सकती। पूरा तो तुम्हें तुम्हारा स्वरूप ही मिल सकता है और कोई चीज पूरी नहीं मिल सकती।
इसलिए जिन्होंने खोजा है, जिन्होंने पाया है, उन्होंने कहा है, जब तक अपने को ही न पा लोगे, तब तक दुखी ही रहोगे, तड़पोगे।
पूरा मिल्या तबै सुख उपज्यो
तभी सुख उपजा।
... तन की तपनि बुझानी
और तब सब तप, ताप, सब प्यास, सब जलन, सब खोज खो गई।
... तन की तपनि बुझानी
कहै कबीर भव-बंधन छूटै, जोतिहि जोति समानी।।
और उसी क्षण, जिस दिन पूरा स्वभाव प्रकट होता है, तब तुम बचते नहीं। तब
तो जैसे छोटी सी ज्योति सूरज में समा जाए--फिर तुम्हारा दीया अलग नहीं रह जाता। तुम व्यक्ति की तरह बचते नहीं। तुम परम-प्रकाश के साथ एक हो जाते हो--"जोतिहि जोति समानी।"
इस शराब को बनाना सीख लो। घर-घर भट्टी होनी चाहिए इस शराब की। और घर-घर भट्टी होगी, तभी तुम इसे बना पाओगे। क्योंकि बाहर तो यह मिलती नहीं। किसी फैक्टरी में बनाई नहीं जा सकती। तुम ही जब कारखाने बन जाओगे इसे बनाने के; और तुम्हारी शराब तुम दूसरे को नहीं पिला सकते, तुम ही पी सकते हो। वहां शराबी और शराब, और साकी सभी एक हैं। वही पीने वाला है। वही पिलाने वाला है और वही है जिसे पीना है और जो पीया जाएगा।
ऐसी मधुशाला तुम बन जाओ, तो ही तुम्हारे जीवन में, जिसकी तुम संभावना लिए हो वह पूरा हो सकता है। जिसके तुम बीज हो, वह प्रकट हो सकता है।
और जब तक तुम्हारा बीज वृक्ष न बने, तुम तड़पोगे। तड़पोगे वृक्ष होने को। जब तक तुम्हारी गंगा सागर में न गिरे, तुम तपोगे। प्यास, जलन--तुम रोओगे विरह से। जब तक तुम्हारी भीतर की प्रेयसी और भीतर का प्रियतम मिल न जाएं, आलिंगनबद्ध न हो जाएं, तब तक तुम भटकोगे। खोजोगे और पाओगे नहीं। बहुत खोजा है बाहर। बहुत मधुशालाओं के द्वार खटखटाए, अब आखिरी मधुशाला का द्वार खटखटा लो। उसको पाते ही सब पा लिया जाता है। क्योंकि उसको पाने के बाद ही कुछ भी पाने को शेष नहीं रह जाता है।
"कहै कबीर भव-बंधन छूटै, जोतिहि जोति समानी।।"

आज इतना ही।

मेरा मुझमें कुछ नहीं
आठवां प्रवचन

गंगा एक घाट अनेक

पहला प्रश्नः इक्कीस मार्च को आपका पूना में इस जगह आगमन हुआ, तब यहां कुछ तोते थे; लेकिन एक साल में न जाने यहां कितने प्रकार के पक्षी आ गए हैं और हर रोज अपनी सुरीली आवाज में गाए चले जा रहे हैं। प्रश्न उठते हैं कि क्या ये आपके कारण आ गए हैं? क्या यहां आने से इनकी भी कोई आध्यात्मिक तरक्की संभव है? आपकी कौन सी अभिव्यक्ति इन्हें सुहावनी लगती है--मौन या मुखर? क्या हमारी तरह आपने गत जन्म में उन्हें भी वायदा किया था जो अब पूरा हो रहा है?

जीवन एक गहन प्रयोजन है। और वह प्रयोजन मनुष्य तक ही सीमित नहीं है, सीमित हो भी नहीं सकता। या तो प्रयोजन है तो पूरे अस्तित्व में है, या प्रयोजन कहीं भी नहीं है।
मनुष्य अलग-थलग नहीं है; मनुष्य एक है। अगर पत्थर व्यर्थ ही हैं तो मनुष्य भी व्यर्थ है और अगर मनुष्य के जीवन में कोई सार्थकता है, तो पत्थरों के जीवन में भी सार्थकता होनी ही चाहिए।
परमात्मा है तो उसका हस्ताक्षर सभी चीजों पर है। आदमी विशिष्ट नहीं है; सारी प्रकृति विशिष्ट है। तुम ही नहीं कोई विकास कर रहे हो; सारा अस्तित्व विकासमान है। पौधे, पक्षी, पत्थर-सभी ऊंचाइयों के शिखर को छूने के लिए यात्रा पर चल रहे हैं। धीमी होगी किसी की गति, तेज होगी किसी की गति, कोई बेहोश पड़ा होगा, कोई होश से चल रहा होगा; लेकिन मंजिल है। मंजिल का नाम ही परमात्मा है। और जब तक मंजिल न मिल जाए, तब तक एक बेचैनी बनी ही रहेगी। वह बेचैनी मनुष्य के भीतर ही है, ऐसा नहीं; वह सारे अस्तित्व में है। कठिनाई होती है हमें यह सोच कर, क्योंकि मनुष्य का अंहकार ऐसा मान लेता है कि परमात्मा सत्य, प्रेम, बस हमारी बपौती है। तो हमें अड़चन होती है।
बुद्ध ने अपने पिछले जीवन की कहानियां कही हैं। वह जमाना था जब उस तरह
की बातें कही जा सकती थीं; लोग उनका लाभ ले सकते थे। लोग सरल थे और मनुष्य अहंकारी न था। आज अगर कोई उस तरह की अतीत जीवन की कहानियां कहेगा तो भरोसा मुश्किल हो जाएगा। लोग बहुत जटिल हैं और लोगों का अहंकार बहुत प्रगाढ़ है। बुद्ध ने कहा है, कभी मैं जंगल में एक हाथी था। जंगल में आग लग गई थी। सारे पशु-पक्षी भागे जा रहे थे।
दुख से कौन नहीं बचना चाहता है? तुमने पशु-पक्षियों को दुख से बचने के लिए भागते देखा है, क्या उससे तुम्हें यह ख्याल नहीं आता कि जो दुख से बचना चाहते हैं वे सुख भी चाहते होंगे। जो दुख से बचना चाहता है और सुख चाहता है, क्या तुम्हें ख्याल नहीं आता कि कभी अनजाने-जाने उसके हृदय में भी वह आकांक्षा जगती होगी, जो आनंद की है? पशु भी जानते हैं सुख, पशु भी जानते हैं दुख, और उस पीड़ा को भी जानते हैं जो सुख-दुख में उलझ कर मिलती है। कभी उनकी चेतना में भी वह क्षण आता है, जब दोनों के पार हो जाने का भाव उठता होगा। निश्चित ही वह विचार उतना स्पष्ट नहीं हो सकता जितना मनुष्य का। मनुष्य को भी कहां बहुत स्पष्ट है? कितने थोड़े से मनुष्यों को स्पष्ट है! अधिक मनुष्यता तो पशु पक्षियों जैसी ही जीती है।
तो बुद्ध ने कहाः सारे जंगल के पशु भागने लगे, मैं भी भागा। थक गया था।
एक वृक्ष के नीचे खड़ा हो गया क्षण भर विश्राम को। और जैसे ही मैंने पैर उठाया वहां से हटने को, एक खरगोश भागा हुआ आया, और जो जगह खाली हो गई थी मेरे पैर के उठाने से, उस जगह आकर बैठ गया। पैर उठा हुआ ऊपर हाथी का, खरगोश नीचे बैठ गया।
बुद्ध ने कहाः मेरे मन में हुआ, मैं भी भाग रहा हूं प्राण को बचाने को,
यह खरगोश भी भाग रहा है प्राण को बचाने को--प्राण को बचाने के संबंध में किसी में कोई भेद नहीं है। मेरे पास बहुत बड़ी देह है, इस खरगोश के पास बड़ी छोटी देह है। मेरे पैर के पड़ते ही यह विनष्ट हो जाएगा। लेकिन दुख से सभी

बचना चाहते हैं। सुख की सभी की आकांक्षा है। उसमें तो कोई भेद नहीं है, छोटे-बड़े का कोई फर्क नहीं।
करुणाका आविर्भाव हुआ!
और बुद्ध ने कहा कि मैं खड़ा रहा, जब तक कि यह खरगोश हट न जाए, क्योंकि मैं पैर रखूंगा तो यह मर जाएगा। आग बढ़ती गई, खरगोश भागा नहीं; वह सुरक्षित था। शायद उसने सोचा हो कि जब हाथी भी नहीं भाग रहा है तो कोई डर नहीं है। बड़ों के पीछे छोटे चलते हैं। तो वह बैठा ही रहा सुरक्षित। आग भयंकर हो गई और हाथी जल कर मर गया।
बुद्ध ने कहा है, उस जन्म में ही मैंने मनुष्यत्व को पाने की क्षमता पाई--उस घड़ी में जब मैंने खरगोश पर करूणा की और मैं पैर को रोके खड़ा रहा। उसी क्षण मैंने मनुष्य होने की क्षमता अर्जित कर ली। आज मैं मनुष्य हूं उसी घड़ी के वरदान-स्वरूप।
सारा जगत--पौधे भी... तुम्हें ख्याल में न आते हो, लेकिन प्राण वहां संवादित है, प्राण वहां पुलकित है, वहां भी धड़कन है और वहां भी भाव की दशाएं हैं।
अब तो पश्चिम में विज्ञान बड़ी खोज कर रहा है। और जिन खोजों को महावीर
और बुद्ध ने सारी दुनिया को दिया, लेकिन अब तक जो काव्य मालूम पड़ती थी; अब विज्ञान के आधार से वे तथ्य बनती जा रही हैं।
पश्चिम में पिछले पांच वर्षों में बहुत से प्रयोग किए गए हैं, जिनसे
यह पता चला कि पौधे बहुत संवेदनशील हैं। उनकी संवेदना अदभुत है! और न केवल संवेदनशील है, बल्कि टेलीफैथिक हैं। और मनुष्य ने भी वह क्षमता खो दी है-- दूसरों के विचार को पकड़ लेने की, दूसरे के विचार को पढ़ लेने की; उसमें भी पौधे सक्षम हैं। यह भरोसे की बात नहीं मालूम पड़ती। लेकिन अब तो विज्ञान ने बड़े प्रयोग कर लिए हैं।
पौधा पकड़ता है दूसरे के विचार को भी।
एक वैज्ञानिक पौधों पर काम कर रहा था कि उनमें संवेदना कितनी है। सर जगदीशचंद्र बसु ने जो काम अधूरा छोड़ दिया था, उसको वह पूरा कर रहा था--वह उनका एक शिष्य है, अमरीकी है--और चाहता था कि उन्होंने जो काम छोड़ दिए उसे आगे बढ़ाया जाए। तो एक पौधे के पास बैठा था, पौधे के साथ उसने तार जोड़ रखे थे विद्युत के। जैसे कि डाक्टर आपके हृदय की जांच करता है, कार्डियोग्राम लेता है, तो तार जोड़ देता है और फिर हृदय की धड़कन कागज पर ग्राफ बनाने लगती है--ऐसे उसने पौधे पर तार जोड़े दिए थे कि पौधे की क्या मनो-दशा है, क्या धड़कन है उसके हृदय की? वह कागज पर ग्राफ बनने लगा था।
वह ग्राफ बन रहा था, तभी उसने सोचा कि अगर मैं छुरी को उठा कर इस पौधे
को आधा काट दूं तो क्या होगा? वह हैरान हो गया! ग्राफ पर तो खबर पहुंच गई। अभी उसने काटा नहीं है, अभी उसने छुरी उठाई नहीं है; सिर्फ एक भाव कि अगर मैं छुरी उठाकर आधा इसको काट दूं तो इसकी क्या भाव-दशा होगी? ग्राफ में तो घबड़ाहट आ गई। ग्राफ में तो कंपन आ गया--वैसा ही कंपन, जैसे कोई तुम्हारी छाती पर छुरा लेकर खड़ा हो जाता है, तब जैसा कंपन तुम्हारे कार्डियोग्राम में आ जाएगा, ठीक वैसा ही कंपन पौधे पर आ गया। लेकिन अभी कोई छुरा लेकर खड़ा भी न हुआ था। अभी किसी ने छुरा उठाया भी न था। अभी सिर्फ भाव में बात उठी थी। लेकिन पोधे ने भाव को पकड़ लिया। पौधा भाव से भयभीत हो गया।
इस वैज्ञानिक ने लिखा है कि पौधे को यह भूलने में कई दिन लगे, क्योंकि
जब भी वह प्रयोगशाला के भीतर आता पौधा घबड़ा जाता। इस आदमी को पहचानने लगा कि यह आदमी खतरनाक है, इसके मन में एक बुरा विचार है।
वह बात आई-गई हो गई। न इसने छुरा उठाया, न पौधे को काटा। लेकिन जब भी यह अंदर आता तो पौधा थोड़ा शंकित हो जाता, उसके ग्राफ में फर्क पड़ जाता। कोई बीस दिन लगे पौधे को यह बात भूलने में कि यह आदमी बुरा नहीं है, बीस दिन इसने काटा नहीं है, काटने का विचार नहीं किया। तब कहीं जाकर पौधा आश्वस्त हुआ।
एक दूसरा वैज्ञानिक केंचुओं पर प्रयोग कर रहा था और केंचुओं को गर्म पानी में डाल रहा था, और यह देख रहा था वह कि गर्म पानी का क्या परिणाम होता है केंचुओं पर--तड़फते हैं, मर जाते हैं तत्क्षण, स्वीकार कर लेते हैं मरने

को, या संघर्ष करते हैं बचने का? पास में ही एक कैक्टस का पौधा रखा था। उसके साथ तार जुड़े थे, उस पर भी प्रयोग चल रहा था। लेकिन यह तो आकस्मिक घटना घटी। जैसे ही उसने केंचुए को गर्म पानी में डाला, पौधा घबड़ा गया और पौधे का ग्राफ बदल गया। यह तो आकस्मिक था। यह किया नहीं था प्रयोग उसने। लेकिन यह जानकर वह हैरान हुआ कि न केवल तुम पौधों को हानि पहुंचाओ, तब पौधे के प्राण में पीड़ा होती है; तुम किसी भी जीवित चीज को नुकसान पहुंचाओ, पौधा कांपता है और घबड़ाता है।
अब तो बहुत काम पौधे पर किए गए हैं। और एक अनूठी किताब पश्चिम में प्रकाशित हुई है; दि सिक्रेट लाइफ ऑफ दि प्लांट्स। बाइबल और कुरान और धम्मपद की कीमत की किताब है। क्योंकि जो महावीर और बुद्ध कहे, उसे इस किताब ने परिपूर्ण रूप से सिद्ध करने की कोशिश की है कि पौधों का एक अज्ञात जीवन है जिसका हमें कोई पता नहीं।
और अगर पौधों का अज्ञात जीवन है, तो पक्षियों का तो कहना ही क्या! पक्षी तो बहुत विकसित अवस्था है।
वे जो पक्षी तुम्हें गीत गाते दिखाई पड़ते हैं, वे भी आकस्मिक नहीं आ
गए हैं। तुम भी आकस्मिक नहीं आ गए हो। आकस्मिक कुछ होता ही नहीं। इस संसार में आकस्मिक शब्द झूठा है। एक्सीडेंटल जैसी बात कुछ होती ही नहीं। यहां सभी चीजें तारतम्य में बंधी हैं। यहां जो भी घटता है, उसके आगे-पीछे बड़े सूत्रों का जाल है।
तुम अगर यहां हो तो ऐसे ही नहीं, जन्मों-जन्मों का हाथ होगा। तुम्हें पता न हो, क्योंकि तुम्हें अपना पता ही कहां है! इसलिए जो पक्षी वृक्ष पर बैठ कर गीत गा रहा है, उसे पता न हो कि इसी वृक्ष को उसने क्यों चुन लिया है? आज की सुबह ही गीत गाने को क्यों चुन लिया है? तुम्हें भी पता नहीं, मनुष्य को पता नहीं तो फक्षी को तो पता क्या होगा!
लेकिन जगत में आकस्मिक कुछ भी नहीं है, अकारण कुछ भी नहीं है; एक विराट प्रयोजन प्रवाहित है। पत्थर से भी उस प्रयोजन का संबंध है, पहाड़ से भी उस प्रयोजन का संबंध है, पक्षियों से भी, पौधों से भी। एक विराट प्रयोजन सारे जगत को एक बड़ी तीर्थयात्रा पर ले जा रहा है।
सब खोज रहे हैं। अहर्निश खोज चल रही है। उस खोज में कोई थोड़े आगे हैं, कोई थोड़े पीछे हैं। जो पीछे हैं, वे भी कभी आगे आ जाएंगे; जो आज आगे आ गए हैं, वे भी कभी पीछे थे।
इसलिए तो अहिंसा का शास्त्र जन्मा। वह धर्म का शिखर था। जब धर्म की अनुभूति बड़ी प्रगाढ़ हो गई, तब अहिंसा का शास्त्र जन्मा; इस बात की प्रतीति जन्मी कि हम ही नहीं खोज रहे हैं सत्य को, सभी खोज रहे हैं। और सत्य की यात्रा से किसी को भी वंचित करना हिंसा है। और सत्य की यात्रा से किसी की भी जीवन-व्यवस्था को खंडित करना महापाप है।
तुम किसी पक्षी को मार डाल सकते हो खेल में--पत्थर पड़ा था, गुलेल हाथ में थी, मार दिया। लेकिन तुम्हें पता नहीं है, तुमने एक बड़े प्रयोजन की यात्रा को हानि पहुंचा दी; तुमने एक जीवन की छोटी सी धारा--जो खिल रही थी, गीत गा रही थी, किसी यात्रा निकली थी, कहीं पहुंचने की आकांक्षा से भरी थी-- तुमने उसे खंडित कर दिया, तुमने व्यवधान खड़ा कर दिया।
बन सके तो सहायता देना; न बन सके तो कम से कम बाधा मत देना।
तो निश्चित ही जो पक्षी यहां आ गए हैं, अचानक नहीं आ गए हैं। अचानक कुछ होता ही नहीं है, इसे तुम सिद्धांत की तरह समझ लेना। वे भी तुम्हारे जैसे ही आ गए हैं।
महावीर की पहली उपदेशना हुई तो जैन शास्त्रों में बड़ी मीठी कथा है कि महावीर जब पहली दफा बोले तो सुनने वाला कोई मनुष्य था ही नहीं। पर वे बोले। तो बाद में उनके शिष्य पूछने लगे कि आप किससे बोले? कोई मनुष्य तो मौजूद न था। तो महावीर ने कहा, जो तुम्हें दिखाई पड़ते हैं, तुम सोचते हो कि बस उनकी ही मौजूदगी सब कुछ है?
जैन कथाएं कहती हैं, देवता मौजूद थे। निश्चित ही देवताओं को फहले खबर लगी होगी महावीर की। मनुष्यों से ज्यादा उनका चैतन्य विकसित है, ज्यादा जागरूक हैं, ज्यादा दिव्य हैं। उनको पहले खबर लगी होगी। फिर पशुओं को खबर

लगी होगी। फिर पक्षियों को खबर लगी होगी। फिर पौधों को खबर लगी होगी। फिर पत्थरों को, खनिजों को खबर लगी होगी। जितनी मूर्च्छा है, उतनी देर से खबर लगती है।
मनुष्यों में भी तो सभी को एक साथ खबर नहीं लगती। मनुष्यों में भी पहले जो देवस्वरूप हैं, उनको खबर लगेगी; फिर जो मनुष्य-स्वरूप हैं उनको खबर लगेगी; फिर जो पशु-स्वरूप हैं उनको खबर लगेगी; फिर जो पक्षी-स्वरूप हैं उनको खबर लगेगी। ऐसे मनुष्यों में भी तो भेद होंगे।
फिर महावीर की खबर मनुष्यों तक पहुंची, फिर जानवरों तक पहुंची, फक्षियों तक फहुंची। और जैन-शास्त्र कहते हैं कि फिर महावीर की उपदेशना में सभी मौजूद होते थे। अदृश्य लोग, अदृश्य जीवात्माएं, जो दिखाई नहीं पड़ती हैं वे भी; दृश्य, जो दिखाई पड़ते हैं वे भी; और दृश्य में भी वे जो हमें बहुत विकास में पीछे मालूम पड़ते हैं, वे भी मौजूद होने लगे।
एक बड़ी अदभुत घटना है कि महावीर का एक शिष्य था गोशालक। बाद में वह बगावती हो गया और महावीर के विरोध में हो गया। महावीर कहते थे, जीवन में सभी कुछ नियति से बंधा है, भाग्य है और यहां सब जो होने को है, वही हो रहा है, और जो होने को है वही होगा। इसलिए मनुष्य व्यर्थ कर्ता का भाव न ले। भाग्य के सिद्धांत का सारा सार इतना है, कि तुम अपने अहंकार को निर्मित मत करो।
शिष्य गोशालक के साथ महावीर एक जंगल सें गुजर रहे हैं। गोशालक को उनकी बातों पर शक है। गोशालक ने कहा कि आप कहते हैं, जो होना है वही होगा। यह पौधा लगा है, एक छोटा सा पौधा लगा था। क्या कहते हैं आफ, यह बचेगा कि नहीं बचेगा?
महावीर ने कहाः यह बचेगा। गोशालक ने उस पौधे को उखाड़ कर फेंक दिया। वह महावीर को यह दिखला रहा था कि देखें, आप कहते हैं, बचेगा; यह नहीं बचता। कहां गया आपका सिद्धांत? वह खिलखिला कर हंसने लगा। उसने कहा महावीर से बोले, अब कहें। महावीर ने कहा, थोड़ी प्रतीक्षा! थोड़े समय की जरूरत है।
वे दोनों गांव चले गए। दोपहर वर्षा हुई। सांझ जब वे वापस लौट रहे थे, महावीर ने कहाः देख, उस पौधे ने फिर जड़ें जमा ली थीं। वर्षा हो गई थी, जमीन गीली हो गई थी। वह फिर खड़ा हो गया था। उसने जड़ें जमा ली थीं। महावीर ने कहाः यह पौधा बचेगा। और कहते हैं, गोशालक की भी हिम्मत न पड़ी दुबारा उसे तोड़ कर फेंकने की। सामने ही खड़ा था!
जो हमें नहीं दिखाई पड़ते जीवन के सूत्र, वे भी अहर्निश संलग्न हैं। वृक्ष भी अकारण नहीं हैं, पशु भी अकारण नहीं हैं, पक्षी भी अकारण नहीं हैं क्योंकि अकारण अस्तित्व नहीं है।
तुम जैसे आए हो, वैसे ही सभी आए हैं। तुम जहां से आए हो, वहीं से सभी आए हैं। तुम जहां जा रहे हो, वहीं सभी जा रहे हैं। यह सिर्फ मनुष्य का अहंकार है, जो सोचता है, हम परमात्मा को खोज रहे हैं, कि हम धर्म को खोज रहे हैं। सभी की खोज वही है। और निश्चित ही जिसकी खोज है उसकी तरक्की भी है; जिसकी खोज है उसका विकास भी है।
दो-तीन दिन पहले तूफान आया और एक पक्षी जो निरंतर यहां गीत गा रहा था
और निरंतर प्रसन्न था और प्रमुदित था; तूफान में उसके पंख भीग गए होंगे; तूफान से लड़ता रहा होगा, क्षत-विक्षत हो गया था। सांझ जब मैं खाना खाने बैठा; वह आकर पैर में गिर पड़ा और मर गया। विवेक मुझसे पूछने लगी कि क्या इसे इस भांति मरने से कुछ लाभ होगा? क्या इस भांति आपके चरणों में मरने से इसे कुछ लाभ होगा?
निश्चित ही लाभ है, क्योंकि वह कहीं भी मर सकता था। और एक क्षण नहीं लगा उसे मरने में। तो बड़ी चेष्टा करके ही वहां तक पहुंच पाया था। उसके पंख बिल्कुल क्षत-विक्षत थे। तूफान भयंकर था। वर्षा जोर से हो रही थी। उसका कहीं भी गिर पड़ना स्वाभाविक था। वह वहां तक पहुंच सका वापस और एक क्षण भी नहीं जीया, एक श्वास भी उसने नहीं ली, गिरा और मर गया। कोई प्रबल आकांक्षा उसे ले आई होगी। उसे भी पता नहीं होगा।
निश्चित ही उसका लाभ है। इतनी प्रबल आकांक्षा जब हो तो जीवन में एक केंद्र निर्मित होता है--उसी केंद्र का नाम तो आत्मा है। वह पक्षी आत्मवान

होकर मरा। वह पक्षी संकल्पवान होकर मरा। वह पक्षी यूं ही नहीं मर गया; कुछ उपलब्ध करके मरा। एक चेष्टा थी। उस चेष्टा में वह हारा नहीं। तूफान छोटा पड़ गया, पक्षी बड़ा हो गया। आंधी को हरा दिया। आंधी मिटा न पाई उसे; मार डाला, मिटा न पाई। पक्षी जीत कर मरा है, अपनी मर्जी पूरी करके मरा है और परम शांति से मरा है। कहें कि पक्षी समाधिस्थ होकर मरा है, परम समाधान में मरा है। जहां आना चाहता था, वहां आ गया है। अब मरने में उसे कुछ डर नहीं है, कोई भय नहीं है।
निश्चित ही उनका भी विकास हो रहा है।
और पूछा है कौन सी अभिव्यक्ति उन्हें सुहानी लगती है--मौन या मुखर? उन्हें दोनों से कुछ लेना-देना नहीं है, क्योंकि मौन और वाणी दोनों ही
एक ही सिक्के के दो फहलू हैं। मनुष्य के लिए मौन महत्वफूर्ण मालूम फड़ता है, क्योंकि वाणी महत्वपूर्ण मालूम पड़ती है। पक्षी के लिए कोई भाषा नहीं है इसलिए न तो पक्षी को वाणी का कोई मूल्य है और न मौन का कोई मूल्य है। क्योंकि मौन भी वाणी का ही हिस्सा है। जब तुम नहीं बोलते, तब मौन; जब तुम बोलते हो, तब वाणी--दोनों ही बोलने के ही दो पहलू हैं। पक्षियों, पौधों को, उससे कुछ लेना-देना नहीं है। उनको तो एक ही भाषा समझ में आती है, वह उपस्थिति की भाषा है, मौजूदगी की भाषा हैं। तुम मौजूद हो तो वे समझते हैं। तुम पास हो, तुम्हारे प्रेम की और करूणा की भाषा है--वे उसे एहसास करते हैं।
कुछ ही दिन पहले हम एक सूफी कहानी पढ़ रहे थे कि एक युवक जब भी समुद्र
के किनारे जाता तो हजारों पक्षी उसके पास आकर खेलते, उसके कंधों पर सवार हो जाते, उसके सिर पर बैठ जाते, नाचते और आनंदित होते। यह अनूठा दृश्य था। गांव भर के लोग भरोसा नहीं कर पाते थे, क्योंकि कोई भी दूसरा जाता तो पक्षी भाग जाते। और जब यह युवक आता समुद्र के तट पर तो बड़ी भीड़ भर जाती, बड़ा उत्सव, एक मेला लग जाता पक्षियों का।
एक दिन उस युवक के बाप ने कहा कि हमने सुना है कि तुम्हारे पास बहुत पक्षी आते हैं, जब तुम सागर के तट पर जाते हो। मैं तो बूढ़ा हूं, चल भी नहीं सकता, जा भी नहीं सकता। तुम ऐसा करना, एक-दो पक्षी पकड़ कर ले आना, तो मुझे भी भरोसा आ जाए।
उस दिन युवक गया, लेकिन पक्षी नहीं आए। उड़े दूर-दूर, सिर के पास मंडराए, लेकिन कंधों पर न बैठे। आज युवक वही न था, जो कल तक था; आज बात बदल गई थी। आज प्रेम न था; आज आनंद न था आज उनके साथ खेलने की वह सहज वृत्ति, भाव न था। आज एक धंधा था मन में, आज एक वासना थी, एक चाह थी। आज दुश्मनी थी। आज कठोरता थी, हिंसा थी मन में।
बहुत से फकीरों के जीवन में ये कहानियां हैं। फ्रांसिस के जीवन में बड़ी कहानियां हैं कि वे जहां जाते, पक्षी उनके साथ जाते। जाना ही चाहिए। संत फ्रांसिस जैसा प्रेम से भरा आदमी मुश्किल से हुआ है। यह ठीक ही है कि वे पक्षी भी प्रेम की भाषा समझ पाए और संत फ्रांसिस के निकट आ सके।
कहते हैं, संत फ्रांसिस नदी में जाते तो मछलियों की भीड़ इकट्ठी हो जाती, नदी पार करना मुश्किल हो जाता।
सेंट फ्रांसिस के विरोध में था पोप। क्योंकि जब भी कोई संत पैदा होता
है, तो जो संप्रदाय है, चर्च है, पुरोहित है, वह तो विरोध में हो ही जाता है, क्योंकि वह खतरा है संत। संत की कोई व्यवस्था तो होती नहीं; संत तो सहज होता है। संप्रदाय की व्यवस्था होती है; संत तो सब तोड़ दे।
तो पोप ने फ्रांसिस को बुलवाया। फ्रांसिस सैकड़ों मील पैदल चल कर आया।
जब पोप के आंगन में आकर फ्रांसिस खड़ा हुआ तो हजारों पक्षी आ गए। वे फ्रांसिस के प्रेमी थे। पोप ने कहाः इस आदमी को कुछ भी कहना ठीक नहीं। जिसकी भाषा पक्षी भी समझते हैं, अब उससे विवाद भी क्या करना? यह जो भी कहता होगा, ठीक ही कहता होगा।
वह पोप निश्चित ही समझदार आदमी रहा होगा। उसने विवाद नहीं किया। उसने कहा, जिसकी भाषा पक्षी भी समझते हैं, वह ठीक ही कहता होगा। क्योंकि पक्षी कोई तर्क तो समझते नहीं, शास्त्र नहीं समझते, सिर्फ हृदय समझते हैं।

तो, न तो उन्हें संबंध है इस बात से कि मैं क्या बोल रहा हूं, न इस बात
से कोई संबंध है कि मैं चुप बैठा हूं। पक्षियों और पौधों को क्या लेना- देना है। वे कोई भाषा तो जानते नहीं। सब भाषा आदमी की है। मौन भी आदमी का है। पक्षी तो मौन और भाषा दोनों के पार हैं। वहां तो सिर्फ एक प्रेम के आह्लाद को समझा जाता है, एक अस्तित्व को, एक उपस्थिति को समझा जाता है।
और जिस दिन तुम भी वैसी ही अवस्था को उपलब्ध हो जाओगे, उस दिन जो मैं
कह रहा हूं, वह तो तुम समझ ही लोगे; जो मैं हूं, वह भी तुम समझ लोगे। और वही असली बात है। वही समझने की बात है।
जो मैं कह रहा हूं, अगर तुम उसी को समझते रहे तो तुम मुझसे चूक ही जाओगे। पूरा समझ लो जो मैं कह रहा हूं, तो भी तुम मुझसे चूक जाओगे क्योंकि वह पूरा भी बहुत अधूरा है।
कृष्ण की गीता को तुमने अगर समझ लिया तो कृष्ण की बांसुरी का एक स्वर समझा, बस; कृष्ण गीता से बहुत बड़े हैं। यह तो एक स्वर है। ऐसे करोड़ स्वर कृष्ण से पैदा हो सकते हैं। तुमने अगर गीता को ही कृष्ण समझ लिया तो तुम भूल में पड़ गए। जैसे तुमने मेरी अंगुली को ही मुझे समझ लिया; अंगुली तो एक इशारा थी। अंगुली से मैं बड़ा हूं। सभी शब्द अंगुलियां हैं। सभी गीताएं, सभी कुरान अंगुलियां हैं। उनको समझना। उन पर रुकना मत। उनको तुम पूरा भी समझ लो तो भी बहुत सार नहीं है। उनके पार जाना जरूरी है, तभी पूरे पर पकड़ आती है। पूरा शब्द के पार है और पूरा मौन के भी पार है।
जहां मौन और भाषा दोनों खो जाते हैं, वहीं ध्यान है।
तुम्हें मुश्किल होगी यह बात जान कर क्योंकि साधारणतः तुम्हें मैं समझता हूं कि मौन हो जाना ध्यान है। वह समझाने के लिए है। क्योंकि अभी तो तुम्हें मौन होना ही मुश्किल है। अभी तो तुम आंख बंद करो, मुंह बंद करो तो भी भीतर वाणी चलती है, शब्द चलते हैं, भाषा तैरती है, बोलना जारी रहता है। अभी तो मौन ही हो जाओ तो बहुत मुश्किल है। मौन जब तुम हो जाओगे, तब मैं तुमसे कहूंगा, अब तुम मौन भी छोड़ दो। तभी ध्यान का जन्म होगा।
भाषा छोड़ो, तब मौन का जन्म होता है। लेकिन मौन में भी मन शेष रहता है। इसलिए तो हम उसे मौन कहते हैं। मन ही बचा बिना भाषा का--इसलिए मौन। फिर वह भी छूट जाए। सिक्का पूरा ही फेंकना है, एक पहलू फेंकने से न होगा। भाषा भी गई, मौन भी गया, तब जो बच रहा, वही ध्यान है। उस ध्यान में तुम्हें समझ में आ जाएंगे पक्षियों के गीत भी; वृक्षों में बहती हवाओं का कोलाहल भी; फूलों में चलती गतिविधि भी; पृथ्वी में छिपा रहस्य, आकाश में छिपा रहस्य--सभी तुम्हें समझ में आ जाएगा।
तुम चुप हो जाओ पहले और फिर चुप्पी भी छूट जाए, तब तुम में और अस्तित्व में कोई भेद नहीं रह जाता। तब तुम्हारे जीवन में भी बड़े अनूठे फूल खिलेंगे और पक्षियों जैसे अनूठे गीतों का जन्म होगा। तुम भी नाच सकोगे कबीर जैसा। तुम भी कह सकोगेः राम रतन धन पाया!

दूसरा प्रश्नः आपसे प्रश्नों का समाधान तो मिलता है, पर समाधानों से समाधि घटित क्यों नहीं हो पा रही है? समाधानों में मुझे क्या जोड़ना आवश्यक है?

समाधानों से समाधि कभी घटित नहीं होती। उस भूल में मत पड़ जाना। तुम्हारे प्रश्नों का समाधान भी हो जाए अगर, तो भी समाधि घटित न होगी, क्योंकि तुम तो भीतर वैसे के वैसे रहोगे। प्रश्न हल हो गए, तुम थोड़े ही हल हो गए! जब तुम हल हो जाते हो, तब समाधि घटित होती है। प्रश्न का उत्तर तो समाधान लाता है; तुम्हारा उत्तर, तुम्हारे पूरे जीवन को उत्तर मिल जाता है जिस क्षण, उस क्षण समाधि घटित होती है।
तो प्रश्नों के उत्तर तो मैं दे सकता हूं, क्योंकि प्रश्न तुम पूछ सकते हो; लेकिन तुम्हारा उत्तर तो तुम्हें खोजना पड़ेगा। तो अगर मेरे प्रश्न और उनके समाधान इतना ही कर सकें कि तुम्हें सजग कर दें और तुम्हें उस यात्रा पर गतिमान कर दें, जहां समाधि उपलब्ध होती है, तो बस काफी है। ये तो मील के पत्थर हैं, इनको पकड़ कर मत बैठ जाना; ये मंजिल नहीं हैं।

मील के पत्थर पर तीर बना रहता है--और आगे जाना है, और आगे जाना है! जो
भी मैं तुमसे कह रहा हूं, हर उत्तर पर तीर लगा है--और आगे जाना है, और आगे जाना है! --जब तक तुम न हल हो जाओ! तुम एक उलझन हो। तुम्हारे प्रश्न तो तुम्हारी उलझन से पैदा हो रहे हैं। प्रश्नों के कारण थोड़े ही तुम उलझे हुए हो; तुम्हारी उलझन के कारण प्रश्न पैदा हो रहे हैं। प्रश्न तो केवल ऊपर के सिम्टम्स हैं। जैसे किसी आदमी को बुखार चढ़ा, शरीर गरम है--अब शरीर गरम होना थोड़ी बीमारी है! वह तो केवल लक्षण है। तुम बर्फ ले कर ठंडा मत करने लगना उसके शरीर को। ठंडा कर भी दो तो हो सकता है कि मरीज बिल्कुल ठंडा ही हो जाए। यह शरीर का गरम होना बीमारी नहीं है; शरीर के भीतर कोई बहुत उपद्रव मचा है, कोई गृह-युद्ध चल रहा है, उसकी वजह से सारा शरीर उत्तप्त हो गया है। उस गृह-युद्ध को मिटाना है। उसके लिए औषधि खोजनी होगी।
तुम्हारे प्रश्न तुम्हारी भीतर की आंतरिक उलझन से पैदा होते हैं। मैं
एक प्रश्न हल कर दूंगा; तुम्हारी आंतरिक उलझन हजार नये प्रश्न खड़े करती जाएगी। यह बीमारी सदा चल सकती है। इसका कोई अंत नहीं है।
मनुष्य ने करोड़ों प्रश्न पूछे हैं, करोड़ों उत्तर दिए गए हैं। ऐसा कोई प्रश्न नहीं है, जिसका उत्तर न दिया गया हो; लेकिन इससे क्या फर्क पड़ता है? उत्तर किताबों में बंद रहते हैं, आदमी अपनी मुसीबत में।
उत्तर से कोई उत्तर नहीं मिलता। उत्तर से तुम्हें इतना ही दिखाई पड़ जाए कि तुम्हारे भीतर तुम्हारी आत्मा ही रुग्ण है और वहां कुछ करना जरूरी है... । इसलिए तो मेरा सारा जोर ज्ञान पर नहीं है, सारा जोर ध्यान पर है। ध्यान का अर्थ हैः भीतर की आत्मिक उलझन को सुलझाना है और ज्ञान का अर्थ हैः तुम्हारे प्रश्नों के उत्तर समझ लो।
तुम पूछोगे आज, मैं तुम्हें समझाऊंगा, समझ में भी आ जाएगाः तुम यहां
से जा भी न पाओगे, रास्ते पर भी न पहुंच पाओगे कि हजार प्रश्न खड़े हो जाएंगे। और अगर तुम बहुत कुशल हो, ज्यादा बीमार हो, क्रानिक हो तो यहीं बैठे-बैठे जब मैं तुम्हें उत्तर दे रहा हूं, तभी तुम्हें पच्चीस प्रश्न खड़े होते रहेंगे।
उत्तर से कोई प्रश्न हल नहीं होने वाला। तुममें प्रश्न ऐसे ही लगते हैं जैसे वृक्षों में पत्ते लगते हैं। अब पत्तों को काट दो, इससे क्या होता है? एक पत्ता काटो तो तीन पत्ते लगते हैं। वृक्ष समझता है, तुम कलम कर रहे हो। जड़ तो तब कटेगी, जब तुम ध्यान से जुड़ोगे। ज्ञान से जुड़ने से थोड़ी- बहुत राहत मिल सकती है।
इसलिए कबीर ने कहा है कि ज्ञान गुड़, ध्यान महुआ और जीवन के अनुभव की भट्टी में बनती है शराब; और वह शराब ही समाधि है। जीवन की भट्टी में, जीवन के अनुभव से! इसलिए कच्चे जो भागना चाहते हैं; जो जीवन के अनुभव से बचना चाहते हैं; जो कहते हैं, हमें बचाओ--उनको नहीं बचाया जा सकता। तुम्हें अनुभव से तो गुजरना ही पड़ेगा।
सस्ते समाधि नहीं मिलती। उसकी कीमत तो चुकानी ही पड़ेगी। तुम्हें जीवन
के अनेक-अनेक रास्तों पर भटकना ही पड़ेगा। बहुत द्वार खटखटाने पड़ेंगे। कूड़ा-कर्कट बटोरना पड़ेगा। बड़ी व्यर्थता को जीना पड़ेगा। दुख और विषाद को झेलना पड़ेगा। उस सबसे तुम पकोगे। वही तो जीवन की भट्टी है। लेकिन ध्यान का महुआ अगर न हो तो भट्टी तो जलती रहेगी, शराब तैयार न होगी।
तो ध्यान का महुआ लेकर जीवन की भट्टी से भागना मत। बहुत से लोग भाग जाते हैं। ध्यान का महुआ हाथ लगा कि वे चले हिमालय। वे भट्टी को छोड़ कर ही भाग रहे हैं, महुए को ही लेकर क्या करोगे? बिना भट्टी के शराब न बनेगी। महुए से थोड़े ही नशा आता है! महुए को आग से गुजरना जरूरी है।
और कबीर बड़ी सीधी बात कहते हैं। वे कहते हैं, ज्ञान ज्यादा से ज्यादा गुड़। अगर महुए की शराब बना ली तो थोड़ी तिक्त होगी अगर गुड़ पास न हो, बस। नशा तो चढ़ जाएगा।
तो बिना ज्ञान के भी समाधि उपलब्ध हो सकती है, लेकिन ज्ञान मात्र से समाधि उपलब्ध नहीं होती। कबीर कोई बहुत बड़े ज्ञानी थोड़े ही हैं। जो प्रश्न तुम मुझसे पूछ रहे हो, वही अगर तुम कबीर से पूछते तो तुम उत्तर की आशा नहीं कर सकते थे। कबीर तो बेपढ़े-लिखे आदमी हैं। कबीर तो बिल्कुल गंवार

हैं। तुम उनसे शास्त्रों की पूछो, उन्हें कुछ पता नहीं। हां, सत्य की पूछो तो उन्हें फता है। शब्दों की पूछो, उन्हें कुछ पता नहीं। निःशब्द की पूछो तो वे इशारा कर देंगे।
कबीर तो बेपढ़े-लिखे हैं, न सुसंस्कृत हैं, न शास्त्री हैं, न किसी विश्वविद्यालय में कोई शिक्षा पाई है; बस जीवन की भट्टी में जल कर ही जो पाया है, वही पाया है।
हां, बुद्ध से पूछो तो तुम्हें उत्तर दे सकेंगे वे सभी--राजपुत्र हैं, सुशिक्षित हैं; जीवन की भट्टी में भी जले हैं, ज्ञान का गुड़ भी हाथ है। तो कबीर की शराब तो जिसको गांव में लोग ठर्रा कहते हैं--बिल्कुल घरु, देसी, शुद्ध! वह कोई फ्रांस से आई हुई शैम्पेन नहीं है। हां, बुद्ध शैम्पेन दे सकते हैं। परिष्कृत है! लेकिन जिसको समाधि चाहिए, क्या लेना-देना कि शराब घरु थी कि फ्रांस में बनी थी? कोई लेना-देना नहीं है। जिसे मस्त होकर नाचना है, उसके लिए ठर्रा भी काफी है।
तो कबीर कहते हैं, ज्ञान ज्यादा से ज्यादा गुड़! पकड़ ली उन्होंने बात
कि थोड़ा मिला दोगे तो थोड़ी स्वादिष्ट होगी, बस इतनी बात है। वैसे स्वाद कितनी देर रहता है? --जरा सा! जब मुंह में गई और कंठ तक पहुंची, तब तक; फिर जब नीचे उतर गई, आकंठ डूब गए उसमें, फिर कहां स्वाद! किसको स्वाद! सब खो जाता है।
समाधि को कबीर शराब कहते हैं--जीवन के अनुभव से मिलेगी, ध्यान के महुए
से मिलेगी। ज्ञान का थोड़ा गुड़ रहा पास तो अच्छा।
तो मेरे प्रश्न-उत्तरों से, मेरे बोलने से अगर तुम थोड़ा सा गुड़ जमा कर लो, बस उतना काफी है। लेकिन अगर गुड़ ही गुड़ इकट्ठा कर लो, महुआ पास न हो, जीवन का अनुभव पास न हो तो वह गुड़ मिठास तो न देगा, बड़ी सड़ांध पैदा करेगा। पंडित सड़ जाता है। उसके पास गुड़ ही गुड़ है। उससे दुर्गंध उठने लगती है; उससे मिठास नहीं उठती। वह गुड़ का ही धंधा करने लगता है। तुम गुड़ के व्यवसाय में मत पड़ जाना। थोड़ा सा गुड़ पास रहे, अच्छा। इसलिए मैंने कहा कि सोने में थोड़ी सुगंध आ जाती है। अन्यथा सोना तो ऐसे ही सोना है, कोई सुगंध की जरूरत नहीं है। लेकिन समाधि में थोड़ी सुगंध आ जाती है।
तुम्हारे प्रश्नों से, मेरे उत्तरों से कोई समाधान तो मिल सकता है, समाधि नहीं मिल सकती। और जब तक समाधि न मिले, तब तक समाधान भी क्या समाधान है?
समाधि ही समाधान है। उसके बाद फिर कोई प्रश्न नहीं उठते। नहीं कि तुम्हें सब प्रश्नों के उत्तर मिल जाते हैं; समाधि का अर्थ है, वहां प्रश्न उठने बंद हो जाते हैं, उत्तर की कोई जरूरत नहीं रह जाती। तुम निष्प्रश्न हो जाते हो--तब समाधि की दशा। तब तुम नाचोगे, गाओगे; पूछोगे नहीं। तब तुम्हारे जीवन में शब्दों का जो बहुत बड़ा व्यापार चलता था, वह बंद ही हो जाएगा। तब तुम पहली दफा अस्तित्व के साथ सीधे-सीधे मिलोगे, साक्षात्कार होगा।
मुझे सुनो! उस सुनने से बस एक बात सीख लो कि महुए खोजने हैं, महुए बीनने हैं। झाड़ मैं तुम्हें बताए देता हूं, बीनने तुम्हें ही होंगे। कोई दूसरा तुम्हारे लिए नहीं बीन सकता।
यह तो जीवन की शराब है, यह उधार नहीं मिल सकती। यह तुम्हें ही निचोड़नी होगी और तभी इसका महारस तुम्हारे ऊपर बरसेगा।
ध्यान में जाओ! ध्यान में डूबो। ध्यान में मिटो! ध्यान में मरो! ध्यान बचे, तुम न बचो। वहीं समाधि है। वहीं समाधान है।

तीसरा प्रश्नः ज्ञानी का मार्ग भक्त के मार्ग से क्या सर्वथा भिन्न है? जिस होश की आप चर्चा करते हैं, वह प्रेमी का मार्ग है या ज्ञानी का? यदि होश हो तो प्रेम कैसे घटेगा?

तीन संभावनाएं हैं। एक, कि कोई व्यक्ति ज्ञान के मार्ग से खोजे। जो व्यक्ति ज्ञान के मार्ग से खोजेगा, ध्यान उसकी विधि होगी, ध्यान उसका रास्ता होगा। जिस दिन उपलब्धि होगी, समाधि फलेगी, जीवन में चैतन्य का फूल

लगेगा, उस दिन वह अचानक पाएगा कि करता तो जीवन भर ध्यान रहा और समाधि मिली; लेकिन अब समाधि के साथ अचानक प्रेम का आविर्भाव हुआ है। प्रेम फल की भांति आता है ध्यानी को। ध्यान साधन बनता है और प्रेम फल की भांति आता है। परिणाम बनता है।
दूसरा मार्ग है, कि तुम भक्ति के मार्ग से चलो। भक्ति के मार्ग पर प्रेम साधन है। और जब मंजिल आती है और भक्त मंदिर पर पहुंचता है तो अचानक चकित हो जाता है कि ध्यान की लवलीनता उपलब्ध हो गई है। वह परिणाम है।
तो, जो ध्यान के मार्ग से चलते हैं, वे प्रेम को पाते हैं अंत में; जो प्रेम के मार्ग से चलते हैं, वे ध्यान को पाते हैं अंत में। ज्ञानी भक्त हो जाते हैं, भक्त ज्ञानी हो जाते हैं।
और एक तीसरा मार्ग है कि तुम दोनों पर एक साथ चल सकते हो। तुम प्रेम को
भी साथ साध सकते हो। तुम ध्यान को भी साथ साध सकते हो। तब तुम प्रेमी-भक्त, ज्ञानी-भक्त या भक्त-ज्ञानी हो।
मेरी पूरी चेष्टा यही है कि तुम दोनों साथ-साथ साध लो। क्यों इतनी देर
भी प्रतीक्षा करनी! ध्यान के साथ ही प्रेम साधा जा सकता है। और जब ध्यान के साथ प्रेम को साधोगे तो तुम्हारे ध्यान में एक रससिक्तता होगी जो खाली ध्यान साधने वाले में नहीं होती। उसमें प्रेम तो होता नहीं।
इसलिए खाली ध्यानी रूखा, मरुस्थल जैसा हो जाता है, उसमें मरुद्यान नहीं होते। उसमें तुम कहीं वृक्षों की छाया न पाओगे। वह रूखा हो जाएगा, कठोर हो जाएगा। तुम उसको पाओगे कि जीवन के प्रति उसके मन में एक उपेक्षा है, एक गहरी उदासी है। वह जीवन की तरफ पीठ कर लेगा, भगोड़ा हो जाएगा।
अगर तुम ध्यान ही ध्यान साधोगे तो प्रेम फलेगा अंत में, लेकिन पूरे रास्ते वह जो प्रेम की वर्षा साथ-साथ हो सकती थी, उससे तुम वंचित रह जाओगे। मैं कहता हूं, क्यों वंचित रहना?
जो व्यक्ति प्रेम को साधेगा, उसके जीवन में प्रेम तो रहेगा, रस रहेगा, माधुर्य रहेगा; लेकिन ध्यान से जो शांति फलित होती है, वह जो परम शून्यता फलित होती है, वह फलित नहीं होगी। उसके जीवन में रंग तो होगा, प्रसन्नता भी होगी; लेकिन प्रसन्नता के भीतर शून्यता की शांति नहीं होगी। तो कभी-कभी तुम पाओगे कि उसका परमात्मा भी एक रागरंग है, उसकी भक्ति भी एक रागरंग है। ये दोनों ही थोड़े अपंग होंगे--एक-एक पैर से चलने की कोशिश कर रहे हैं।
और ये दोनों एक-दूसरे के विपरीत होंगे, क्योंकि मार्ग पर ध्यानी को पता नहीं है कि अंत में प्रेम भी आ जाता है; और मार्ग में प्रेमी को भी पता नहीं है कि अंत में ध्यान भी आ जाता है। तो ध्यानी कहेगा, क्या व्यर्थ ही पूजा- प्रार्थना में लगे हो, किसके लिए हाथ जोड़ रहे हो? वहां कोई भी नहीं है। आंख बंद करो, परमात्मा भीतर है। गिराओ मंदिरों को, हटाओ मस्जिदों को--इनसे क्या सार है?
ज्ञानी ब्रह्मज्ञान की बात करेगा। और भक्त? भक्त कहेगा, क्या आंख बंद करके बैठे हो? सब तरफ परमात्मा की लीला हो रही है। देखो, आंख खोलो।
ऐसा हुआ, एक सूफी फकीर औरत हुई, राबिया। वह ध्यानी थी। एक भक्त हसन नाम
का फकीर, उसके घर में मेहमान था। सुबह सूरज उगा और हसन बाहर नाचने लगा। क्योंकि, भक्त को तो सभी इशारे उसी के हैं--सूरज उगे तो वही उगा; फूल खिले तो वही खिला; पक्षी गाए तो वही गाया। वही दिखाई पड़ता है। बाकी तो सब रूप रह जाते हैं, भीतर वही दिखाई पड़ता है। तो हसन नाचने लगा और हसन ने जोर से आवाज दी कि राबिया, क्या भीतर बैठी है अंधेरे में? बाहर आ, देख कैसा सूरज निकला है! देख, परमात्मा कैसे प्रकट हुए हैं!
राबिया ने भीतर से ही कहाः हसन! मैं आंख बंद किए हूं और मैं निश्चित ही भीतर हूं। और मैं तुमसे कहती हूं, तुम भी भीतर आ जाओ। बाहर के सूरज को देखने से क्या होगा? हम भीतर उसी को देख रहे हैं जिसने सूरज को बनाया।
यह प्रेमी और भक्त का विरोध है। मगर दोनों अधूरे हैं। दोनों अधूरे हैं, एकांगी है। दोनों पहुंच जाते हैं। इसलिए किसी को अगर एकांगी ही होकर चलना हो--कुछ लोग शौकीन होते हैं, एक टांग से ही उनको यात्रा करनी है, क्या करोगे? --तो ठीक है, मौज है, स्वतंत्रता है, ऐसे ही चलो। किसी ने यह ही तय कर लिया कि एक टांग से ही परमात्मा के मंदिर तक पहुंचना है, पहुंचो। लेकिन

तुम अचानक मंदिर के द्वार पर पाओगे कि परमात्मा दोनों ही टांगें पसंद करता है, नहीं तो वह दो देता ही नहीं। उसने दो दी हैं, उसका प्रयोजन है। उसने दो पंख दिए हैं कि उड़ो संतुलन से। उसने दो पैर दिए हैं कि चलो संतुलन से। जीवन में एक संतुलन हो। संतुलन यानी संयम।
तो, कभी-कभी भक्ति भी अति हो जाती है, वह भी असंयम है; और ध्यान भी अति
हो जाता है, वह भी असंयम है। ध्यान अगर ऐसा हो जाए कि तुम सब बाहर को बिल्कुल भूल ही जाओ तो बाहर भी परमात्मा था, तुम्हारा परमात्मा अधूरा हो गया। और भक्ति ऐसी अगर हो जाए कि तुम मंदिर में बैठे प्रार्थना करते रहो, कभी भीतर आंख बंद ही न करो, देखते रहो कि कृष्ण का कैसा सुंदर रूप है, कैसे मोरमुकुट, कैसी पैर में पैंजनियां, और उसी रूप को निहारते रहो, और उसी में डूबे रहो--तो भीतर भी परमात्मा था, उससे तुम वंचित रह गए।
अंत में तो तुम्हें पूरा हो जाना पड़ेगा। परमात्मा के पास पहुंच कर तो तुम्हें पूरा हो जाना पड़ेगा इसलिए भक्त ज्ञानी हो जाता है, ध्यानी हो जाता है; ध्यानी भक्त हो जाता है। लेकिन जो अंत में हो जाना है, मैं कहता हूं, पहले से ही क्यों न हो जाओ? मंजिल पर ही जाकर क्यों पूरे को उपलब्ध करो; यात्रा को भी क्यों न मंजिल बना लो? हर कदम क्यों न मंजिल हो जाए? राह भी क्यों न मंजिल हो जाए? साधना भी क्यों न साध्य हो जाए?
तो, मेरी सारी चेष्टा यह है कि तुम ध्यान भी करो, तुम नाचो भी। तुम प्रेम भी करो, तुम भक्ति भी करो; तुम शून्यता में भी जाओ और तुम पूर्णता के गीत भी गाओ। और जिस दिन तुम दोनों को साध लोगे, उस दिन तुम पाओगे कि अद्वैत सधा। नहीं तो ज्ञानी भक्तों के खिलाफ हैं, भक्त ज्ञानियों के खिलाफ हैं-- संप्रदाय खड़े होते हैं, विरोध खड़ा होता है, द्वैत खड़ा होता है।
विभाजन करो ही मत। तुम्हें परमात्मा ने हृदय भी दिया है, उसे भक्ति में डूबने दो; तुम्हें परमात्मा ने प्रज्ञा दी है, बुद्धि दी है, उसे ध्यान में डूबने दो। ये तुम्हारे दो पंख--दोनों ही उड़ें। परमात्मा का खुला आकाश, बड़ा आकाश! तुम क्यों लंगड़ाने को उत्सुक हो?
लेकिन मैं जानता हूं, कारण है। लंगड़ाने की उत्सुकता में राज है। राज
यह है कि एक को चुनने में सरलता लगती है, जटिलता नहीं लगती; सीधा-सीधा मामला लगता है; दो और दो चार, ऐसा मालूम पड़ता है। दोनों को चुनने में विरोधाभास हो जाता है।
अगर तुम ध्यान को और भक्ति को एक साथ चुनोगे तो तुम पाओगे कि ये दोनों बड़ी विरोधी चीजें हैं। कहां प्रेम! उसमें तो दूसरे से जुड़ना है, परमात्मा के चरण खोजने हैं। और कहां ध्यान! उसमें तो सब दूसरे को छोड़ देना है, अकेले रह जाना है। दोनों विपरीत लगते हैं। और मैं तुमसे कहता हूं कि अगर तुम दो विपरीत के बीच एकता को न देख पाए तो तुम अंधे ही हो।
जैसे दिन है और रात है, और श्रम है और विश्राम है, और जन्म है और मृत्यु है--ऐसे ही भक्ति है और ध्यान है। तुम जन्मे, तुम मरोगे भी। तुम यह नहीं कह सकते कि जन्मे, अब मर कैसे सकते हैं? क्योंकि जन्म और मृत्यु में तो बड़ा विरोध मालूम पड़ता है--एक में तो आते हैं, दूसरे में जाते हैं। तुम यह नहीं कहते कि दिन में तो सूरज उगता है, प्रकाश ही प्रकाश; रात में अंधकार हो जाता है--यह विरोध बरदाश्त के बाहर है।
जीवन विरोध से बना है, जीवन विरोधाभासी है, पैराडाक्सिकल है। जीवन का
रस और मजा ही यही है कि यहां पुरुष ही पुरुष नहीं हैं, स्त्रियां भी हैं। विरोध है। नदी के दो किनारे हैं और तभी तो सेतु बन पाता है, नहीं तो सेतु बने ही न। एक ही किनारे पर कैसे तुम सेतु बनाओगे? यहां अंधकार भी है, उजाला भी है। यहां भीतर की तरफ यात्रा भी हो सकती है और बाहर की तरफ भी यात्रा हो सकती है। और अगर तुम दोनों को साथ-साथ सम्हाल लो--कभी भीतर डुबकी ले लो, कभी बाहर भी डुबकी लो; बाहर भी वही है, और भीतर भी वही है।
यह फर्क ही तुम्हारी नासमझी का है कि तुम बाहर और भीतर को दो कर रहे हो। एक ही है। जो आकाश तुम्हारे घर के बाहर है, वही तुम्हारे आंगन में भी है। आंगन के आकाश का गुणधर्म नहीं बदलता और तुम्हारी दीवारों के भीतर जो कमरा घिरा है, उसमें जो आकाश है, उसका भी गुणधर्म नहीं बदलता; वह भी वही है।
तुम्हारी अंतरात्मा और बाहर फैला हुआ परमात्मा एक ही है।

अगर इस एक को तुम शुरू से ही साधो तो तुम्हारे जीवन में बड़ा अदभुत अर्थ प्रकट होगा, जो साधारण ध्यानी के जीवन में प्रकट नहीं होता।
जैसे मैं तुम्हें कहूं, जैन धर्म, बौद्ध धर्म ध्यान पर खड़े हैं। वे दोनों अंतर्मुखी धर्म हैं। तो तुम उनके साधुओं के जीवन में किसी तरह की रसधार न देखोगे; सूखे-सूखे, मरे-मरे! जितना मरा हुआ साधु हो, जैनी कहते हैं, उतना ही पहुंचा हुआ कि देखो, बिल्कुल मरा हुआ है; देखो कैसा तप चल रहा है! शरीर बिल्कुल पीला पड़ जाए तो वे कहते हैं, स्वर्ण जैसी काया! शरीर पीला पड़ गया उपवास कर-कर के, मगर वे कहते हैं, देखो कैसी तपश्चर्या कि कुंदन जैसा चेहरा दिखाई पड़ रहा है। यही पता हो उनको कि यह आदमी संन्यासी नहीं है तो वे पूछेंगे: भाई, कौन सी बीमारी हो गई है? पीलिया हो गया है, क्या हो गया है? अस्पताल में भरती हो जाओ! लेकिन ये मुनि महाराज हैं, तो उनके चरण छू रहे हैं, गुणगान गा रहे हैं, क्योंकि उनको पीलापन नहीं दिखाई पड़ता, स्वर्ण दिखाई पड़ता है।
अपनी धारणा है। तो जैन साधु, बौद्ध भिक्षु धीरे-धीरे सूख गए हैं, रस नहीं है। तुम उन्हें हंसते हुए न पाओगे। अगर जैन मुनि हंस दे तो भक्तों को शक हो जाएगा कि यह कैसा मुनि, हंस रहा है, खिलखिला रहा है? यह कहीं साधु का लक्षण है? अगर वह छोटी-छोटी बातों में रस ले तो अनुयायी छोड़ देंगे उसे। उसे तो रस लेना ही नहीं है। उसे तो ऐसा डरा हुआ, दूर अपने को सिकोड़े हुए खड़ा रहना है। तो एक भ्रांति पैदा हुई है।
फिर दूसरी तरफ हिंदू हैं। उनके साधु-संन्यासी हैं। भक्ति-संप्रदाय हैं--रामानुज का, वल्लभ का। तुम उनको पाओगे, कि वे सिर्फ खा-पी रहे हैं और मोटे हो रहे हैं, और कुछ नहीं। खीर-पूड़ी। वह उनके जीवन की कुल साधना है। क्योंकि वही भोग भगवान को लगाते हैं, भगवान तो बहाना है, वही भोग खुद को लगाते हैं। तुम उनको मोरमुकुट पहने हुए देखोगे। वे तुम्हें विदूषक मालूम पड़ेंगे। किसी सर्कस में होते, नाटक में होते, जंचते; यहां क्या कर रहे हैं? उनका व्यक्तित्व तुम्हें भोगी का मालूम पड़ेगा; योगी का नहीं मालूम पड़ेगा। लेकिन भक्त कहेंगे कि यह तो भक्ति का रस है।
ये दोनों ही बातें अधूरी हो गई हैं और दोनों ने नुकसान पहुंचाया। तो मैं तो तुमसे कहता हूं, दोनों को साथ ही लेना और दोनों के बीच एक रिदम, एक छंदबद्धता पैदा कर लेना: कभी बाहर रस से भरे नाचते हुए; कभी भीतर शांत, शून्य--दोनों ही। और अगर तुम दोनों ही किनारों को छूकर बह सको तो तुम्हारी जीवन-सरिता सागर तक निश्चित ही पहुंच जाएगी। और तब तुम परमात्मा को पाकर ऐसा न पाओगे कि कुछ नया पा रहे हो; तुम ऐसा पाओगे कि यह तो पाया ही हुआ था, प्रतिपल पाया हुआ था। थोड़ा बड़ा हो गया, बड़ा हो गया, अब विराट हो गया; लेकिन ऐसा नहीं था कि कभी ऐसा भी था कि न पाया हो--थोड़ा था, हर कदम पर था।
इसको मैं कदम-कदम को मंजिल बना लेना कहता हूं।
लेकिन ऐसा व्यक्ति विरोधाभासी होगा। कभी तुम उसे नाचते पाओगे, कभी उसे तुम शांत ध्यान करते पाओगे। कभी तुम उसे भोजन का आनंद लेते हुए भी पाओगे क्योंकि वह कहेगा, अन्नम ब्रह्म--कि अन्न ब्रह्म है। कभी तुम उसे उपवास करते हुए भी पाओगे, क्योंकि वह भीतर इतना डूब गया कि भोजन की याद ही न रही।
ऐसा व्यक्ति ही मेरे लिए जीवन का काव्य है। ऐसा व्यक्ति मेरे लिए परिपूर्ण है।
अंत में तो यह घटना सभी को घटती है; लेकिन शुरू से घट जाए तो सौभाग्य।
इसलिए मैं तीन विभाजन करता हूं।
एकः ज्ञानी, ध्यानी--वह लंगड़ा है। पहुंच जाता है लंगड़ाते; लंगड़े भी पहुंच जाते हैं।
फिर भक्त--रस से भरा; लेकिन अधूरा है, उसे भीतर का कोई अनुभव नहीं है, शून्य की कोई प्रतीति नहीं है। वह परमात्मा की स्तुति तो गा सकता है, लेकिन चुप और मौन नहीं हो सकता; प्रार्थना कर सकता है, लेकिन ध्यान नहीं कर सकता। ध्यान और प्रार्थना का यही फर्क है। प्रार्थना है भक्त का अंग--जोर-जोर से बोलता है, भगवान की स्तुति करता है, सुनता ही नहीं किसी की।

मैंने पढ़ा है, एक बहुत बड़ा मूर्तिकार और चित्रकार हुआ--माइकल एंजिलो। उसके जीवन को मैं पढ़ता था। तो एक बढ़ा चर्च बन रहा था--सिसटाइन चैपल। और उसकी सीलिंग पर उसने वर्षों तक चित्र खोदे हैं, माइकल एंजिलो ने। बड़ा कठिन काम था, क्योंकि चौबीस घंटे पड़ा रहता, सीलिंग पर खोदता रहता, पीठ पर पड़े- पड़े खोदना पड़ता।
एक दिन उसने देखा--थक गया था, तो हाथ थोड़े रुक गए थे--नीचे देखा कि कोई
भी नहीं है, सिर्फ एक औरत जो सदा आती है और सदा प्रार्थना करती है बड़े जोर-जोर से। वह परमात्मा से बातें कर रही है, बड़े जोर-जोर से। उसे ऐसा मजाक सूझा--थका-मांदा था, थोड़ी हंसी हो जाएगी, थोड़ा मन-बहलाव हो जाएगा--उसे मजाक सूझा। तो उसने जोर से कहा कि देखो, मैं जीसस क्राइस्ट हूं, और जो तुझे मांगना हो मांग ले। ऊपर चढ़े हुए अपनी सीढ़ी से, वहीं से वह चिल्लाया। उस औरत ने ऊपर भी न देखा, उसने कहाः चुप रहो, बकवास बंद करो। मैं तुम्हारे बाप से बात कर रही हूं।
भक्त कहीं किसी की सुनता है! वह अपनी धुन में है। "मैं परम पिता परमात्मा से, तुम्हारे बाप से बात कर रही हूं। तुम बीच में न बोलो"--उसने कहा।
माइकल एंजिलो ने लिखा है, कि मैं भी चौंक गया! मैं तो सोचता था कि यह मजाक समझेगी। बाकी वह अपने में लगी थी इतना कि उसको यह भी पता नहीं चला कि मैंने क्या कहा, क्या मामला था।
भक्त अपनी लगाए हुए है स्तुति। चुप होना वह जानता ही नहीं। वह भी अधूरापन है। वे भी पहुंच जाते हैं। लेकिन द्वार पर दोनों एक हो जाते हैं। मैं तुमसे कहता हूं, तुम अभी से एक हो जाओ। मेरा मार्ग तीसरा है और उसमें प्रेम और ध्यान संयुक्त हैं। जितने तुम शांत हो सको, जितने मौन हो सको, उतने मौन हो जाओ; और जितना तुम प्रेम दे सको, उतना तुम प्रेम दे दो। एक ऐसी घड़ी तुम्हारे जीवन में आ जाए कि शरीर तो नाचे और तुम ध्यान में संलग्न; भीतर सब चुप, बाहर गीत चलता रहे; भीतर ध्यान, बाहर प्रार्थना होती रहे। वह मेरे लिए परिपूर्ण पुरुष का लक्षण है। और जिस दिन दुनिया में वैसा धर्म होगा, उस दिन दुनिया में अधिकतम लोगों के लिए धर्म के द्वार खुल जाएंगे। क्योंकि, लंगड़े-लंगड़े जाना बहुत थोड़े लोगों के लिए संभव है; दोनों पैर से जाना बहुत लोगों के लिए संभव हो सकता है।

चौथा प्रश्नः कबीर किस गुरु के प्रसाद को पाकर बार-बार आनंद-विभोर हुए जा रहे हैं?

कबीर गुरु का नाम तो लेते ही नहीं। गुरु का कोई नाम होता भी नहीं।
गुरु चेतना की एक दशा है। नाम जानना चाहो तो कबीर के गुरु रामानंद थे।
लेकिन कबीर उसका नाम भी कभी लेते नहीं हैं। सिर्फ एकाध जगह कहा हैः "रामानंद चेताये।" बाकी साधारणतः वे नाम भी नहीं लेते कि कौन गुरु हैं।
प्रश्न है ही नहीं कि कौन गुरु हैं।
गुरु तो एक पद है, एक चैतन्य की दशा है, एक अवस्था है, और गुरु तो एक संबंध है, शिष्य का एक भाव है और शिष्य की एक आंतरिक निकटता है, सामीप्य है।
गुरु शिष्य का एक अनुभव है।
तो वे जो कहते हैं बार-बार, गुरु के प्रसाद से मिला, गुरु के प्रसाद से मिला--वे यह कह रहे हैं कि मेरे प्रयास से नहीं मिला। इसमें किस गुरु के प्रसाद से मिला, यह गौण है। गुरु के प्रसाद से मिला, "प्रसाद" से मिला, यह महत्वपूर्ण है। सारी एम्फेसिस, सारा जोर प्रसाद पर है। किस गुरु के प्रसाद से मिला, यह फिजूल की बात है। किस नदी में तुमने पानी पीया और प्यास बुझाई, यह कोई अर्थ की बात है? किस कुएं पर पानी पीया, उसका नाम याद रखने की क्या जरूरत है? लेकिन एक बात पक्की है कि कुएं से प्यास बुझी। बस उतना कहना जरूरी है।

इसलिए कबीर कहते हैंः गुरु-प्रसाद से सब हुआ। जोर इस बात का है कि अपनी चेष्टा से जो न हो पाया, वह उसकी कृपा से हुआ। और गुरु तो एक ही है। अब इसे थोड़ा समझना मुश्किल होगा।
समझो, बुद्ध हैं और उनका एक शिष्य है सारिपुत्र। सारिपुत्र समर्पित
हो गया, शिष्य हो गया। जैसे ही सारिपुत्र शिष्य हुआ, सारिपुत्र मिट गया, शिष्य रह गया। शिष्य का मतलब होता है, जो सीखने को तैयार हो। और सीखने को वही तैयार हो सकता है जो सारिपुत्र न रह गया हो। क्योंकि सारिपुत्र का तो मतलब होता है अतीत, कल, तो कुछ जाना, समझा, बूझा, जो-जो सिर पर बोझ लेकर आया, वही सारिपुत्र। वह तो मिट गया, शिष्य रह गया, खाली रह गया, एक शून्य, एक कोरा कागज--कि लिखो, जो लिखना हो लिख दो; अब मेरी तरफ से कोई लिखावट न बची। और जब शिष्य इतना खाली हो जाता है नाम-रूप से, तो उसे बुद्ध में भी नामरूप थोड़ी दिखाई पड़ती है फिर! तुम्हें अपना नाम मालूम होता है तो गुरु का भी नाम दिखाई पड़ता है। तुम्हें अपना रूप दिखाई पड़ता है तो गुरु का भी रूप दिखाई पड़ता है। जिस दिन तुमने अपना नाम-रूप छोड़ दिया उस दिन तुम्हें गुरु में वह अखंड ज्योति दिखाई पड़ती है, जिसका कोई नाम-रूप नहीं है। वह तो ऊपर की खोल है बुद्ध अब। वह जो गौतम सिद्धार्थ है, वह जो ऊपर की खोल है। उसके लिए थोड़े ही समर्पण किया है। समर्पण तो भीतर की ज्योति के लिए किया है, जिसका कोई नाम नहीं है। वह है गुरु।
और जब यह प्रसाद बटेगा, जब इस ज्योति का तुम्हारी भीतर की ज्योति से मिलन होगा। कबीर कहते हैंः ज्योति में ज्योति समानी--वह ज्योति ज्योति में समाएगी, जब तुम्हारा बुझा दीया अचानक जल उठेगा। एक लपक--और गुरु की ज्योति तुममें समा जाएगी, और तुम शिष्य न रह जाओगे, तुम स्वयं भी गुरु जैसे हो गए, गुरु हो गए--उस घड़ी में तुम क्या कहोगे--बुद्ध की कृपा से? वह ठीक न होगा, क्योंकि वह तो गुरु का एक नाम हो गया गुरु की कृपा से!
फिर रामानंद के पास कबीर बैठा है। फिर कबीर समर्पित हो गया। अब रामानंद भी रामानंद न रहे; वही अखंड ज्योति भीतर जलने लगी, जो सारिपुत्र को गौतम बुद्ध में दिखाई पड़ी। वही कबीर को रामानंद में दिखाई पड़ी। वही अनंत-अनंत काल में अनंत-अनंत शिष्यों को अनंत-अनंत गुरुओं में दिखाई पड़ी। वह ज्योति एक है; वह जैसे ही शिष्य खोता है, वह अनुभव में आ जाती है, दिखाई पड़ने लगती है, प्रतीत होने लगती है।
हजारों शिष्य हुए, हजारों गुरु हुए; लेकिन घटना तो एक ही है--वह शिष्य
और गुरु के बीच समान घटती है। उसका कोई भेद हीनहीं पड़ता। हजारों कंठ, हजारों प्यासे कंठ, हजारों कुएं--और जब पानी गले में कंठ से मिलता है तो प्यास बुझती है, जो तृप्ति होती है, वह तो एक ही है। उसका क्या कोई नाम है? तुम्हारे कंठ में जब प्यास लगती है और पानी की बूंद जाती है तो तुम सोचते हो, कोई अलग तरह की तृप्ति होती है जैसा किसी दूसरे को नहीं होती? वही तृप्ति है। कंठ होंगे अलग-अलग, प्यास तो एक है। जल के घाट होंगे अलग-अलग, जलधार तो एक है, जल का स्वभाव तो एक है। और जब जल और प्यास का मिलन होता है तो जो तृप्ति होती है, उसका स्वभाव कैसे भिन्न हो सकता है?
तो, जो सारिपुत्र को अनुभव हुआ बुद्ध के पास, जो गौतम को अनुभव हुआ महावीर के पास, जो ल्यूक को मैथ्यू को अनुभव हुआ जीसस के पास, जो अली को अनुभव हुआ मोहम्मद के पास, वही कबीर को अनुभव हुआ रामानंद के पास।
नामरूप की बात तो सब व्यर्थ है। इसलिए क्या कहना, किससे हुआ? गुरु से हुआ। जिसने जाना था हमसे पहले, उससे हुआ। जो जाना ही हुआ था, जागा ही हुआ था, उससे हुआ। हम थे सोए, किसी जागे हुए आदमी ने जगाया। हम थे बुझे, किसी जलते ने जलाया। हम थे खोए, किसी पहुंचे हुए ने हाथ का सहारा दिया।
इसलिए कबीर कोई नाम नहीं लेते; बार-बार कहते हैं, बस गुरु की कृपा से हुआ। जोर इस बात पर है कि उसकी अनुकंपा से हो रहा है, मेरी चेष्टा और प्रयास से नहीं। वह निरहंकार अवस्था की बात है, जब तुम्हें लगता है कि तुम्हारी चेष्टा से कुछ भी नहीं हो रहा। तुम्हारी चेष्टा से कभी कुछ हुआ ही नहीं; बाधा भला पड़ी हो, उपद्रव हुआ हो, अड़चन आई हो, तुम्हारी चेष्टा पत्थर बन गई हो राह की, लेकिन सीढ़ी कभी नहीं बनी। तुम्हारे अहंकार ने

तुम्हें कहां पहुंचाया? भटकाया होगा। पहुंचते ही अनुभव होता है कि मैं ही भटकने का सूत्र था।
तो जब गुरु की वर्षा होती है तब तुम्हें अनुभव होता है कि मेरे मिटने
से ही हुआ--मेरे मिटने से हुआ, गुरु की अनुकंपा से हुआ। मेरे होने से तो नहीं हो सकता था; मैं मिटूं तो ही हो सकता है। क्योंकि जब तक मैं हूं, तब तक गुरु की अनुकंपा प्रवेश नहीं कर सकती, मैं बाधा डालता हूं। और ये बाधाएं बड़ी सूक्ष्म हैं।
महावीर का शिष्य हुआ गौतम। गौतम महावीर का सर्वाधिक ज्ञानी शिष्य था, बड़े से बड़ा पंडित था। वही उनका प्रथम गणधर हुआ, उसीने उनके शास्त्र सम्हाले। लेकिन उसके पहले बहुत दूसरे शिष्य ज्ञान को उपलब्ध हो गए, वह सबसे आखिर में हुआ; आखिर में भी नहीं हुआ, महावीर के मरने पर हुआ। महावीर उसे बहुत दफा कहे--कि गौतम, तू होश सम्हाल!
लेकिन वह बड़ा पंडित था। वह ज्ञानी था। अगर ज्ञान की ही बात की जाए तो शायद वह महावीर से भी विवाद में जीत सकता था। वह बड़ा कुशल पंडित था। उसके खुद के हजारों शिष्य थे, जब वह महावीर का शिष्य हुआ था। लेकिन एक बात महावीर की पकड़ गई उसको--जो उसने सुना था और शास्त्र में पढ़ा था, वह इस आदमी में देखा। बिल्कुल अंधा नहीं था। पंडित भी रहा होगा, तो भी अभी थोड़ा बोध था उसमें, पांडित्य ने बिल्कुल नहीं मार डाला था। इस आदमी में अभी कुछ दिखाई पड़ा। इससे विवाद करने जैसा न लगा। वह इसका शिष्य हो गया लेकिन शिष्य होने पर भी क्या फर्क पड़ता है?
वह बड़ा पंडित था, तत्क्षण वह प्रमुख शिष्य हो गया। पट्टशिष्य हो गया, क्योंकि सभी उससे कमजोर थे बातचीत में, विवाद करने में, शास्त्रार्थ में। कौन उससे जीतता। वह महावीर से तो विवाद नहीं करता, लेकिन शिष्यों को तो वह हरा ही सकता था। वह अटका रहा। अनेक जो पीछे से आए--वे भी ज्ञान को उपलब्ध हो गए। उसकी पीड़ा बढ़ती गई।
महावीर ने मरने के दिन उसे संदेश भेजा। वह गांव के बाहर गया था, कहीं उपदेश करने गया था। वह लौट कर आता था, राहगीरों ने रास्ते में कहा कि महावीर ने प्राण छोड़ दिए शरीर छोड़ दिया। तो वह रोने लगा कि मेरा क्या होगा अब? मैं उनके जीते-जी ज्ञान को उपलब्ध न हो सका, अब तो मेरी कोई संभावना न रही। मेरे लिए कोई संदेश छोड़ गए हैं वे?
तो यात्रियों ने कहाः हां, मरने के पहले उन्होंने तुम्हारी ही याद की
थी और कहा है, गौतम को इतना कह देना कि तू पूरी नदी पार कर गया, अब किनारे को पकड़ कर क्यों रुका है?
जरा सी पकड़! तुमने नदी तैर ली, अब किनारे को पकड़ लिया; लेकिन बाहर कैसे निकलोगे अगर किनारे को पकड़े हो? नदी तैरने से तो कोई बाहर नहीं निकल जाता; किनारे को भी छोड़ना पड़ता है। जैसे तुमने नाव में बैठ कर नदी पार कर ली, अब नाव को पकड़ कर बैठ गए, ऐसा वह किनारे को पकड़ कर बैठा।
यह महावीर का वचन सुनते ही, कहते हैं, गौतम ज्ञान को उपलब्ध हो गया। जो महावीर के जीवन में घटा, वह महावीर की मृत्यु में घटा!
क्या पकड़े हुए था, वह कौन सा किनारा था? जरा सी रेखा रह गई थी अपने ज्ञान की, अहंकार की। वह शिष्य नहीं हो पाया था; पट्टशिष्य हो पाया था; शिष्य नहीं हो फाया था। शिष्यों में प्रमुख हो गया हो लेकिन गुरु के चरणों में समर्पित नहीं हो पाया। वह समर्पण के घटते ही घटना घट जाती है। इधर तुम मिटे, उधर प्रकाश प्रवाहित हुआ।
तब तुम कैसे कहोगे, अपने से हुआ? तब तो इतना ही रह जाएगा कहने कोः "गुरु प्रसादी... ।" तो कबीर वही कहते हैं कि "गुरु प्रसादी" से हुआ, गुरु प्रसाद से हुआ।
प्रसाद शब्द बड़ा महत्वपूर्ण है, अंग्रेजी में जिसे ग्रेस कहते हैं। प्रसाद का अर्थ है, जो बिना मांगे दिया गया हो। मांग कर मिले--भीख; छीन कर ले लिया जाए--चोरी; खरीद कर ले लिया जाए--प्रसाद नहीं। प्रसाद का मतलब है खरीद कर न मिले, खरीदना चाहो खरीद न सको, बिकता न हो। प्रसाद का कोई बाजार नहीं है, कोई दुकान नहीं है, चोरी न कर सकते हो जिसकी। कैसे करोगे प्रसाद की चोरी? क्योंकि वह केवल निर-अहंकार को मिलता है। निर-अहंकारी चोरी नहीं

कर सकता। कैसे खरीदोगे प्रसाद को? क्योंकि उसके कोई सिक्के नहीं हैं, सिर्फ अहंकार को छोड़ने से ही खरीदा जा सकता है। और अहंकार को छोड़ते ही खरीदने वाला मर जाता है। उसको तुम मांग नहीं सकते, क्योंकि प्रसाद इतना महिमापूर्ण है कि उसे भीख की तरह नहीं दिया जा सकता। तुम्हारा मांगने से नहीं दिया जा सकता, तुम्हारी तैयारी से दिया जाता है। तुम जिस दिन तैयार होते हो, जिस दिन तुम्हारा भीतर अंतर्तम तैयार होता है, जब तुम बिल्कुल खाली होते हो, शून्य होते हो, तब अचानक सब तरफ से वर्षा हो जाती है।

आखिरी प्रश्नः सभी संतों ने, बुद्ध पुरुषों ने सत्य को अपने अंदर ही पाया, फिर कहीं भी बाहर समर्पण पर इतना जारे क्यों दिया गया है? अपने स्वभावानुसार या भटक कर शायद कभी कहीं और सत्य की झलक मिल भी जाए, पर बाहर तो अंधे गुरु भी मौजूद हैं जो रात को दिन और दिन को रात कहेंगे... ?

इसे समझना जरूरी है।
समर्पण बाहर होता ही नहीं, समर्पण भीतर की घटना है। गुरु बाहर हो; समर्पण भीतर की घटना है।
समझो, तुम किसी के प्रेम में पड़ गए तो प्रेमी तो बाहर होता है; लेकिन प्रेम तो तुम्हारे भीतर की घटना है, वह तो तुम्हारे हृदय में जलता है।
प्रेमी मर भी जाए तो भी प्रेम जारी रह सकता है; जारी रहेगा ही, अगर था। प्रेमी की राख भी न बचे तो भी प्रेम अहर्निश गूंजता रहेगा। धड़कन-धड़कन में श्वास-श्वास में बहता रहेगा।
प्रेम-पात्र तो बाहर होता है, प्रेम भीतर होता है। समर्पण का पात्र तो बाहर होता है, गुरु बाहर होता है, लेकिन समर्पण तो भीतर होता है। वह घटना बाहर की नहीं है। और गुरु भी तभी तक बाहर दिखाई पड़ता है, जब तक हमने समर्पण नहीं किया। जिस दिन तुमने समर्पण किया, गुरु भी भीतर है। बाहर-भीतर का भेद ही गिर गया, सीमा ही टूट गई। समर्पण करते ही, जैसे ही तुमने अपनी सुरक्षा की दीवाल तोड़ दी, सब तरह से गुरु तुम्हारे भीतर बह आता है।
इसलिए तो हमने गुरु को परमात्मा कहा है और भीतर छुपी आत्मा को परम गुरु कहा है। इससे बड़ी पहेलियां पैदा हो जाती हैं। पश्चिम के बहुत से लोग जब भारत के शास्त्रों का अध्ययन करते हैं तो उनको लगता है कि ये तो बिल्कुल पहेलियां हैं। इनमें कोई व्यवस्था नहीं है, कोई तर्कबद्धता नहीं है। कहीं कहते हो गुरु बाहर, कहीं कहते हो गुरु भीतर! लेकिन ये सभी बातें सच हैं। भारत की भी मजबूरी है, क्योंकि भारत सत्य को ही कहना चाहता है, वह जैसा है। उलझन भी भला खड़ी हो जाती हो, लेकिन हम सत्य को वैसा ही कहना चाहते हैं, जैसा है।
जब तक शिष्य समर्पित नहीं है तब तक गुरु बाहर है। वस्तुतः तब तक गुरु गुरु ही नहीं है, इसलिए बाहर है। तुम क्या सोचते हो, तुम्हारे समर्पण के पहले कोई गुरु हो सकता है?
एक स्त्री रास्ते से जा रही है। क्या तुम्हें प्रेम न हुआ हो इसके प्रति तो क्या तुम इसे प्रेयसी कह सकते हो, कि यह मेरी प्रेयसी है, अभी हालांकि मेरा प्रेम नहीं हुआ? तो लोग तुम्हें पागल कहेंगे। जिसके प्रति समर्पण नहीं हुआ, क्या तुम उसे गुरु कह सकते हो? वह किसी और का गुरु होगा, वह किसी और की प्रेयसी होगी; लेकिन तुम्हारा इससे क्या लेना-देना? तुम्हारा तो गुरु तभी घटता है, जब तुम्हारा समर्पण होता है।
और यह बड़े मजे की बात है कि अगर तुम सच में ही समर्पण कर दो तो तुम्हें कोई गुरु भटका नहीं सकता। वस्तुतः सचाई तो यह है कि अगर समर्पण करने वाला शिष्य मिल जाए तो भटका हुआ गुरु भी रास्ते पर आ जाएगा। समर्पण इतनी बड़ी घटना है! जब तुम्हें रास्ते पर ला सकता है, समर्पण, तो गुरु को भी ला सकता है।
लेकिन कठिनाई ऐसी है कि सदगुरु को भी शिष्य नहीं मिलते, असदगुरु को शिष्य मिलना तो बहुत मुश्किल है। अनुयायियों की बात नहीं कर रहा हूं, शिष्य की बात कर रहा हूं--जिसको नानक ने सिक्ख कहा है। सिक्ख शिष्य का

अपभ्रंश है। लेकिन सिक्खों की बात नहीं कर रहा हूं--नानक के सिक्ख! वह बात ही और है!
जब तुम्हारे भीतर शिष्यत्व का भाव जन्मता है, तब कोई तुम्हारे लिए गुरु होता है। और अगर तुम्हारा समर्पण पूरा हो तो तुम बिल्कुल फिकर ही छोड़ दो कि गुरु कुगुरु है, कि सदगुरु है, कि क्या है। तुम चिंता ही छोड़ो। समर्पण इतनी बड़ी घटना है कि वह तुम्हें तो बदलेगी ही, उस गुरु को भी बदल डालेगी।
समर्पण का मतलब है अटूट श्रद्धा। समर्पण का अर्थ है बेशर्त आस्था। समर्पण का अर्थ है, गुरु कहे, मरो तो मरने की तैयारी; जीओ तो जीने की तैयारी।
क्या तुमने इतना बुरा आदमी दुनिया में देखा है, जो अटूट श्रद्धा को धोखा दे सके? अखंड श्रद्धा को धोखा देने वाला आदमी कभी पृथ्वी पर हुआ ही नहीं। हां, अगर तुम्हें कोई धोखा दे पाता है तो इसलिए, कि तुम्हारी श्रद्धा अखंड नहीं। तुम भी बेईमान, गुरु भी बेईमान। तुम भी रत्ती-रत्ती देते हो, वह भी समझता है कि तुम कैसे दे रहे हो; वह भी छीनने की कोशिश करता है। और तुम सोचते हो कि यह गुरु बेईमान है, ठीक गुरु नहीं है, भटका देगा; अगर समर्पण किया तो भटक जाएंगे।
तुम समर्पण नहीं करना चाहते; तुम हजार बहाने खोजते हो। तुम डरे हो। और
तब तुम पक्का समझो कि तुम्हें सदगुरु तो मिलने वाला ही नहीं है; तुम्हें कोई चालबाज ही मिलेगा। तुम्हारे भीतर का यह जो संदेह है, यह तुम्हें किसी असदगुरु से ही मिला सकता है। संदेह का और असदगुरु का मिलना हो सकता है। श्रद्धा और असदगुरु का मिलना होता ही नहीं। या तो गुरु भाग खड़ा होगा श्रद्धावान शिष्य को पाकर और--या बदल जाएगा।
तुम कभी किसी पर श्रद्धा करके तो देखो। श्रद्धा बड़ी क्रांतिकारी कीमिया है। जिस पर तुम श्रद्धा करोगे उसे तुम बदलना शुरू कर दोगे। छोटे बच्चे घर में पैदा होते हैं, मां-बाप को बदल देते हैं। छोटे बच्चे पर ध्यान रखना पड़ता है तो बाप को सिगरेट नहीं पीनी, शराब नहीं पीनी, कहीं यह छोटा बच्चा बिगड़ न जाए।
छोटा बच्चा भी इतना छोटा नहीं है जितना श्रद्धा से भरा हुआ शिष्य होता है। उसकी सरलता का तो मुकाबला ही नहीं है। वह इतना सरल होता है कि गुरु भी डरने लगेगा कि इतनी सरलता को धोखा देना? इतनी सरलता को धोखा देनेवाला कोई शैतान पैदा ही कभी नहीं हुआ।
तुम उस भय को छोड़ो। तुम यह चिंता ही मत करो। तुम सिर्फ समर्पण की फिकर करो। अगर तुम समर्पण कर सकते हो तो मैं तुमसे कहता हूं कि तुम पत्थर के प्रति भी समर्पण कर दो, तो भी क्रांति घटेगी। आदमी की तो बात और, पत्थर के प्रति भी--और क्रांति हो जाएगी। क्रांति समर्पण से होती है।
अब इस बात को भी समझ लो। गुरु थोड़ी क्रांति करता है! शिष्य को लगता है, गुरु ने की--यह उसका निर-अहंकार भाव है। अगर तुम गुरु से पूछो तो गुरु ऊपर इशारा करेगा, कहेगा: उसने की! क्योंकि वह भी जानता है, गुरु ने नहीं की, परमात्मा ने की।
जीसस एक गांव से गुजरते हैं। एक बाजार में बड़ी भीड़ है और एक स्त्री आती है। उसे कोढ़ हो गया है। वह बीमार है। उसे गांव के बाहर फेंक दिया गया है। वह डरती है जीसस के सामने आने में भी। लेकिन उसे पक्की श्रद्धा है कि अगर वह जीसस का स्पर्श कर ले तो वह ठीक हो जाएगी। लेकिन उसे डर है कि वह भीड़ गांव में उसे अंदर भी आने देगी? तो वह किसी तरह छिपी भीड़ के अंदर प्रवेश कर जाती है। वह जीसस के सामने जाने में डरती है। वह उनसे प्रार्थना करने में डरती है। यह भी कोई बात है कहने की? इस काम में भी उनको लगाना क्या उचित है? वह सिर्फ किनारे से, भीड़ से आकर जीसस का कपड़े का एक कोना छू लेती है। जीसस चौंक कर खड़े हो जाते हैं। उन्होंने कहा: किसने मुझे इतनी श्रद्धा से छुआ? और उस स्त्री का सर्वांग बदल गया है। उसी स्त्री ने अपने शरीर को देखा होगा भरोसा न कर सकी। उसने कहाः लेकिन मैं बदल गई!

जीसस ने कहा: तू अपनी श्रद्धा के कारण बदली है, मेरा इसमें कुछ हाथ नहीं। धन्यवाद देना हो तो परमात्मा को धन्यवाद देना। करने वाला सभी वही है।
यही तो कबीर कहते हैं कि गुरु-प्रसाद से हुआ। गुरु से पूछें, तो रामानंद यह न कहेंगे। रामानंद राम की तरफ बताएंगे, राम की कृपा से हुआ। राम की कृपा से कहने का मतलब यह है कि कोई भी नहीं कर रहा है; समर्पण के भीतर ही घटना घटती है। कोई करने वाला नहीं है।
तुम इस चिंता में मत पड़ो, कि समर्पण बाहर है। समर्पण भीतर है। और इस चिंता में भी मत पड़ो, कि जब तक हमें पक्का न हो जाए, जब तक अदालत सर्टिफिकेट न दे दे कि यह आदमी ईमानदार है, कि सच्चा गुरु है। कौन अदालत देगी? किस अदालत के बस के भीतर है? कौन सर्टिफिकेट देगा? कौन प्रमाणित करेगा? और तुम अपनी बुद्धि से कैसे खोज कर पाओगे? तुममें इतनी ही बुद्धि होती तो गुरु की जरूरत ही क्या थी? तुम कैसे पहचानोगे, कौन सदगुरु है, कौन नहीं है? तुम इस उलझन में ही मत पड़ो। तुम पत्थर को भी पकड़ लो; पत्थर के स्पर्श से भी तुम्हारा रोग चला जाएगा। असली सवाल हृदय का है। असली सवाल समर्पण का है। असली सवाल आस्था का है।
तो, मैं तुमसे कहता हूं, न तो गुरु करता है, न शिष्य करता है; श्रद्धा करवाती है। श्रद्धा से होता है; समर्पण में होता है। गुरु भी बहाना है। वह बहाना है ताकि तुम श्रद्धा कर सको, अन्यथा तुम्हें मुश्किल होगा। बिना बहाने के श्रद्धा करनी मुश्किल होगी। तुम्हें कोई सहारा चाहिए, कोई निमित्त चाहिए, अन्यथा तुम कैसे श्रद्धा करोगे?
अगर तुम बिना किसी में श्रद्धा किए भी श्रद्धा कर सको, मात्र श्रद्धा
कर सको तो भी घटना घट जाएगी। लेकिन तब मुश्किल होता जाएगा। वह ऐसे ही होगा कि बिना प्रेयसी के और प्रेम, बिना प्रेमी के प्रेम; बस प्रेम! कोई है ही नहीं जिसको प्रेम करना है, मगर प्रेम का भाव। कठिन होगा। होता तो है। हो सकता है। प्रेम तुम्हारी भाव-दशा बन सकती है। इसलिए तो बुद्ध जैसे लोग कहते हैं, कोई जरूरत नहीं है; तुम सिर्फ प्रेम से भर जाओ, घटना घट जाएगी। प्रेम अग्नि है। श्रद्धा महा अग्नि है, क्योंकि श्रद्धा प्रेम का निखरे से निखरा रूप है, नवनीत है।

आज इतना ही।

मेरा मुझमें कुछ नहीं
नौवां प्रवचन

सुरति करौ मेरे सांइयां

सुरति करौ मेरे सांइयां, हम हैं भवजल मांहि।
आपे ही बहि जाएंगे, जे नहिं पकरौ बाहिं।।
अवगुण मेरे बापजी, बकस गरीब निवाज।
जे मैं पूत कपूत हों, तउ पिता को लाज।।
मन परतीत न प्रेम रस, ना कछु तन में ढंग।
ना जानौ उस पीव सो, क्यों कर रहसी रंग।।
मेरा मुझमें कुछ नहीं, जो कछु है सो तोर।
तेरा तुझको सौंपते, क्या लागत है मोर।।

अहंकार है सारी पीड़ाओं का स्रोत, नरक का द्वार। लेकिन तुमने समझ रखा है, कि वही स्वर्ग की कुंजी है। और अहंकार को सिर पर लेकर तुम लाख उपाय करो, सुख की कोई संभावना नहीं है, न शांति का कोई उफाय है, न स्वर्ग का द्वार खुल सकता है। अहंकार के लिए द्वार बंद है, द्वार के कारण नहीं, अहंकार के कारण ही बंद है।
और अहंकार बिल्कुल अंधा है। उसे दिखाई भी नहीं पड़ता। और उस अंधेपन में जिसे मिटाना है, उसे तुम बचाते हो। जिसे छोड़ना है, उसे तुम पकड़ते हो। जिसे फेंकना है, उसे तुम सम्हालते हो।
हीरे-मोती तो फेंक देते हो, कूड़ा-करकट बचा लेते हो। जो असार है, उसे तो सम्हाल कर रखते हो, जो सार है उसकी खबर भूल जाती है।
रोज ही यह मुझे अनुभव होता है। क्योंकि रोज ही लोग आते हैं। उनकी पीड़ा है, उनका कष्ट है। और उनका कष्ट वास्तविक है। लेकिन कष्ट मिटता नहीं, पीड़ा जाती नहीं, अशांति खोती नहीं। और जब मैं उनसे बात करता हूं, तो पाता हूं कि वे उसे बचा रहे हैं।
कल रात ही एक महिला आई। पढ़ी-लिखी है, विश्वविद्यालय में प्रोफेसर है, पीएचड़ी. है, सुसंस्कृत है। उसने मुझे कहा कि मेरे मन में बड़ी उदासी है। उदासी जाती नहीं। तो मैंने पूछाः डाक्टरों को पूछा? डाक्टर क्या कहते हैं?
उस महिला ने कहाः डाक्टर! डाक्टर क्या ठीक करेंगे!
जैसे कि बीमारी इतनी विशिष्ट है कि डाक्टरों का क्या वश कि ठीक कर सकें! जिस ढंग से उसने कहा, जिस भाव-भंगिमा से कहा, कि डाक्टर क्या करेंगे; उसमें ऐसा लगा कि उसकी बीमारी डाक्टरों के लिए एक चुनौती है। और डाक्टर न कर पाएंगे, क्योंकि वह करने न देगी। डाक्टरों और उसके बीच जैसे कोई संघर्ष, कोई प्रतिस्पर्धा चल रही है।
और उसने कहा कि संतों के यहां भी गई; कुछ हुआ नहीं। अब आपके चरणों में
आई हूं।
संतों को भी हरा चुकी है! अब वह मुझको हराने आई है। कहती तो यही है ऊपर
से कि आपके चरणों में आई हूं; लेकिन भीतर भाव यह है कि एक मौका आप को भी देना उचित है--एक अवसर! चरणों में नहीं आई है, सेवा लेने आई है। उससे मैंने कहाः रुक जाओ दस दिन ध्यान कर लो।
वह संभव नहीं है। अभी तो विश्वविद्यालय खुलने के करीब है।
अगर बीमारी सच में बीमारी है और कष्ट दे रही है, तो आदमी हजार उपाय करेगा उसे दूर करने का। लेकिन यह महिला उसे बचाती मालूम पड़ती है।
मैंने कहाः ध्यान करो। उसने कहाः एक दिन कल करके देखा!
बीमारी को तो जन्मों-जन्मों तक आदमी इकट्ठा करता है। ध्यान को एक दिन में करके देख लेता है!
मैंने उससे कहाः तो ऐसा करो, जब तक न आ सको--जब आ सको तो दस दिन का वक्त निकाल कर आ जाओ, ताकि पूरा ध्यान का शिविर कर सको। जब तक न आ सको तो मैंने जो-जो कहा है, उसे पढ़ जाओ।
उसने कहाः पढ़ने से क्या होगा? आपका आशीर्वाद चाहिए।

जैसे कि आशीर्वाद मांगे जा सकते हैं!
आशीर्वाद मिलते हैं, मांगे नहीं जा सकते। आशीर्वाद पाने की पात्रता चाहिए। मांगने से उनका कोई संबंध नहीं है। तुम जब तैयार होते हो, तब आशीष बरस जाती है, छीनी-झपटी नहीं जा सकती।
लेकिन ऐसा लगता है, महिला जिद करके बैठी है। उसकी उदासी कोई मिटा न सकेगा। और जब तुम ही जिद करके बैठे हो, तो कौन मिटा सकेगा? और असली सवाल मिटाने का नहीं है। उदासी क्यों है? उदासी इसीलिए होगी, कि अहंकार ने बड़ी महत्वाकांक्षा की होगी, वह पूरी नहीं हो पाई है। अहंकार ने बड़ी सफलताएं चाही होंगी वह पूरी न हो पाई, अहंकार ने बड़े आभूषण उपलब्ध करने चाहे होंगे, सजाना चाहा होगा स्वयं को; वह पूरा नहीं हो पाया। वह कभी पूरा नहीं होता। सुसंस्कृत महिला है, पढ़ी-लिखी है, इसका अर्थ ही यह हुआ, कि महत्वाकांक्षा साधारण स्त्रियों से ज्यादा है। पुरुषों जैसी महत्वाकांक्षा है, पुरुषों जैसा अहंकार है, एक दौड़ है। उसमें सफल नहीं हो पा रही है। कोई कभी सफल नहीं हो पाता।
कहीं भी पहुंच जाओ, अहंकार की भूख तृप्त होती ही नहीं। क्योंकि अहंकार की भूख झूठी है। सच हो, तो तृप्त हो जाए। झूठी भूख को तृप्त करने का कोई उपाय नहीं। जितना करो तृप्त, उतनी बढ़ती चली जाती है। इसलिए उदासी है। अब उदासी अहंकार के कारण है। और आशीर्वाद तब तक नहीं मिल सकता, जब तक अहंकार न मिटे।
इसे थोड़ा ठीक से समझ लो। यह गणित सभी के जीवन के काम का है। आशीर्वाद तभी मिल सकता है, जब अहंकार न हो। और मजा यह है, कि अहंकार न हो, तो आशीर्वाद के बिना भी उदासी मिट सकती है। आशीर्वाद की कोई जरूरत भी नहीं है। अहंकार हो, तो आशीर्वाद की जरूरत है, क्योंकि उदासी रहेगी। लेकिन अहंकार के रहते आशीर्वाद नहीं बरस सकता।
और अहंकार गलत को बचाए चला जाता है।
एक सज्जन कुछ दिन पहले आए। संन्यास लेना चाहते हैं, ध्यान करना चाहते हैं, शांत होना चाहते हैं। लेकिन "मैं" का स्वर बड़ा प्रगाढ़ है। मैंने उनसे पूछाः कहां से आए हैं? मैंने यह पूछा नहीं कि आप कौन हैं, क्या हैं; सिर्फ इतना ही पूछा कि कहां से आए हैं? बस, उन्होंने शुरू कर दिया कि मैं समाज सुधारक हूं, कि मैं आदिवासियों का काम कर रहा हूं, कि मैंने इतनी संस्थाएं चला दीं; कि मैं फलां कांफ्रेंस में इंग्लैंड में भाग लिया और जर्मनी में भाग लिया।
और इतनी तेजी से वे चलने लगे यह सब बताने में, कि संध भी न दी उन्होंने मुझे, कि मैं किसी तरह उन्हें रोकूं, कि रुको। यह मैंने पूछा नहीं है। यही तो तुम्हारी बीमारी है। वे चले ही जा रहे हैं--मैं... मैं... मैं।
लोगों के पत्र मेरे पास आते हैं। वे "मैं" से ही शुरू करते हैं हर वाक्य। सब "मैं" से भरा है और नीचे दस्तखत होते हैं, "आपका विनम्र।" वह विनम्रता बड़ी झूठी है। वह विनम्रता भी अहंकार का ही एक आभूषण, एक सजावट होगी।
अहंकार पीड़ा का स्रोत है। और उसी के कारण तुम अपने स्वभाव को नहीं पा सकते; न परमात्मा को पा सकते हो। आशीर्वाद तुम पर बरसेगा ही नहीं। अहंकार के कारण तुम उलटे घड़े हो। वर्षा होती रहेगी तो भी तुम पर बूंद न पहुंचेगी। तुम खाली के खाली रह जाओगे। काश, तुम अहंकार से खाली हो जाओ तो तुम आज भर सकते हो, इसी क्षण भर सकते हो। कहीं कोई रुकावट नहीं है, तुम्हारे अतिरिक्त कहीं कोई बाधा नहीं है। इसलिए गहरा सवाल प्रार्थना करने का नहीं है, गहरा सवाल यह जो करने वाला है, इसको मिटाने का है। नहीं तो यही दुकान चलाता है, यही प्रार्थना करेगा। यह मिट जाए, तो तुम्हारा जीवन प्रार्थना है।
कबीर उसी को सहज-योग कहते हैं। यह मिट जाए, तो तुम्हारा प्रतिपल पूजा है, परिक्रमा है, तो घर में ही स्नान, गंगा-स्नान है। तो तुम जहां हो, वहीं धर्म है, वहीं तीर्थ है। तो तुम्हारी श्वास-श्वास स्मरण है।
बस, अहंकार मिट जाए। नहीं तो पूजा भी व्यर्थ, प्रार्थना भी व्यर्थ।
अहंकार का विष सभी को विषाक्त कर देता है।

एक करोड़पति मैंने सुना है, बहुत अड़चन में था। करोड़ों का घाटा लगा था।
और सारी जीवन की मेहनत डूबने के करीब थी। नौका डगमगा रही थी। कभी मंदिर नहीं गया था, कभी प्रार्थना भी न की थी। फुरसत ही न मिली थी। ऐसे उसने पुजारी रख छोड़े थे। और मंदिर भी बनवा दिया था, जहां वे उसके नाम से पूजा किया करते थे।
लेकिन आज इस दुख की घड़ी में कांपते हाथों वह भी मंदिर गया। सुबह जल्दी गया, ताकि परमात्मा से पहली मुलाकात उसी की हो, पहली प्रार्थना वही कर सके। कोई दूसरा पहले ही मांग कर परमात्मा का मन खराब न कर चुका हो। लेकिन देख कर हैरान हुआ कि गांव का भिखारी उससे पहले मौजूद था। अंधेरा था अभी। वह भी पीछे खड़ा हो गया, कि भिखारी क्या मांग रहा है।
धनी आदमी देखता है, कि मेरे पास तो मुसीबतें हैं; भिखारी के पास क्या मुसीबतें हो सकती हैं? और भिखारी सोचता है, देखता है, कि मुसीबतें मेरे पास हैं। धनी आदमी के पास क्या मुसीबतें होंगी?
दोनों मुसीबत में जीते हैं। अपने-अपने ढंग की मुसीबतें हैं; मुसीबतें जरूर हैं।
भिखारी की मुसीबत भिखारी के लिए बहुत बड़ी थी, धनपति के लिए कुछ बड़ी न थी। उसने सुना, कि भिखारी कह रहा है, हे परमात्मा! अगर पांच रुपये आज न मिलें तो जीवन नष्ट हो जाएगा। आत्महत्या कर लूंगा। ये तो चाहिए ही। पत्नी बीमार है और दवा के लिए पांच रुपये होना बिल्कुल आवश्यक हैं। मेरा जीवन संकट में है।
इस अमीर आदमी ने यह सुना। और वह भिखारी बंद ही नहीं कर रहा है और कहे
जा रहा है और प्रार्थना जारी है। तो उसने अपने खीसे से पांच रुपये निकाल कर उस भिखारी को दिए और कहा कि ये पांच रुपये तू ले और जा। फिर उसने परमात्मा से कहाः सर, नाउ यू केन गिव मी योर अनडिवाइडेड अटेंशन, अब आप अनबटा ध्यान मेरी तरफ दे सकते हैं। यह भिखारी से छुटकारा हुआ। मुझे पांच करोड़ रुपये की जरूरत है।
अहंकार का सूत्र हैः ए सर्च फॉर अनडिवाइडेड अटेंशन। एक खोज है अहंकार
की कि ध्यान तुम्हें मिल जाए।
अब इसे तुम समझ लो। अहंकार ध्यान मांगता है और निर-अहंकार ध्यान देता है। अहंकार मांगता है, सारी दुनिया की नजरें मुझ पर हों। अहंकार कहता है, जहां से मैं निकलूं, लोग मुझे देखें--"मुझे।" अहंकार की मांग है कि ध्यान मुझे मिले; और निर-अहंकार की मांग है, मैं कितना ध्यान बांट सकूं।
फूल के पास से भी गुजरूं, तो मेरी पूरी आत्मा को ध्यान के द्वारा फूल
पर उंड़ेल दूं। और अगर तुम पूरी आत्मा से फूल पर अपने ध्यान को उंड़ेल दो, तो फूल परमात्मा हो जाता है। जहां ध्यान समग्र रूप से उंड़ेल दिया जाता है, वहीं मंदिर निर्मित हो जाता है। वह मंदिर बनाने की कला है।
और जब तुम ध्यान मांगते हो, वहीं नरक खड़ा हो जाता है।
ध्यान देना साधना है, ध्यान मांगना संसार है।
अब जो ध्यान देने को राजी है, वह तभी राजी हो सकता है, जब उसने अपने भीतर का सूत्र तोड़ डाला हो, जो सदा मांगता है। अहंकार भिखारी है, विनम्रता सम्राट है।
यह बड़ा विरोधाभास है। क्योंकि हमें तो लगता है अहंकार सम्राट होने की कोशिश कर रहा है। लेकिन अहंकार सदा भिखारी है, मांगता है। ध्यान मांगता है। लोग मेरी तरफ देखें, प्रतिष्ठा दें, इज्जत दें। संसार मुझे जाने, मेरा नाम लिखा जाए स्वर्ण अक्षरों में। मेरा रूप खुदा रह जाए इतिहास के पन्नों पर। मैं भी चला हूं यहां। मेरे पद-चिन्ह कभी मिटें न। अहंकार की सारी चेष्टा यही है।
निर-अहंकार की चेष्टा क्या है?
निर-अहंकार की चेष्टा है कि किसी को पता भी न चले, कि मैं यहां था। मेरे कोई पद-चिह्न न छूटे। मेरी कोई रेखा भी न खिंचे संसार में। जैसे पानी पर खींची हुई रेखा मिट जाती है, ऐसे मैं मिट जाऊं। मैं कहीं भी संसार को गंदा न कर पाऊं। मेरा होना न होना बराबर हो।

एक गांव में क्यू लगा था। राशन कार्ड का होगा, कि मिट्टी के तेल के लिए होगा। मुल्ला नसरुद्दीन देर से पहुंचा था, लेकिन आगे खड़े होने की कोशिश कर रहा था। स्वभावतः जो पुलिसवाला देख-रेख कर रहा था उसने कहा, कि मुल्ला, पीछे जा कर खड़े होओ। उसने इतनी कड़क से कहा, फिर पुलिसवाला।
तो मुल्ला को जाना पड़ा, लेकिन थोड़ी देर बाद वह फिर वापस आ गया और फिर कोशिश करने लगा। उस पुलिसवाले ने कहाः तुम फिर आ गए? मैंने कहाः पीछे जाकर खड़े होओ।
मुल्ला ने कहाः भाई, वहां तो पहले ही से कोई खड़ा है।
पीछे पहले से ही कोई खड़ा है! और जब किसी को हटा कर ही खड़ा होना हो, तो आगे ही हटा कर क्यों न खड़ा होना? जब जद्दोजहद ही करनी है, झंझट ही करनी है, तो आगे ही हटा कर खड़ा होना ठीक है। पीछे तो पहले से कोई खड़ा है।
अहंकार आगे खड़े होने का संघर्ष है। और अहंकार सदा देखता है, कि पीछे
की जगह तो भरी है। मजा यह है, कि पीछे की जगह कभी नहीं भरी है। पीछे तो कोई होना ही नहीं चाहता। वह जगह सदा खाली है। और फीछे खड़े होने के लिए पीछे के आदमी को थोड़े ही हटाना है! तुम उसके पीछे खड़े हो सकते हो। आगे खड़े होने के लिए आगे के आदमी को हटाना पड़ेगा। वह संघर्ष है।
अहंकार एक संघर्ष है, निर-अहंकारिता शांति है। फिर संघर्ष से तनाव फैदा होता है। संघर्ष से उदासी, विफलता, विषाद फैदा होता है। फिर संघर्ष के हजार रोग पैदा होते हैं, पागलपन पैदा होता है। फिर तुम उनके इलाज में निकलते हो। लेकिन मूल जड़ को तुम सींचते चले जाते हो। पत्तों को काटते हो, जड़ को सींचते हो। जड़ को काटो; पत्तों को काटने से कुछ भी न होगा।
और कबीर की सारी शिक्षा यही है, कि तुम अगर अपने "मैं" को मिटा दो--और मिटाना क्या है? वह है ही नहीं। जानना भर है। छाया की तरह है। है नहीं; मालूम पड़ता है। एक सपना है। एक झूठ है, जो तुम्हारे मानने की वजह से सच मालूम पड़ता है। तुम न मानो तो अपने आप गिर जाता है, नष्ट हो जाता है। तुम्हारे सहारे से ही खड़ा है। सहारा छोड़ दो, वह अपने से गिर जाता है। ताश के पत्तों का बनाया घर है। कागज की नाव है, जो हो सकता है थोड़ी देर लहरों पर इतरा ले; लेकिन डूबना निश्चित है। और जो उसमें बैठ कर भवसागर को पार करने चला है, वह तो निश्चित ही डूबेगा।
कबीर कहते हैं,
"आपे ही बहि जाएंगे, जे नहिं पकरौ बांहि"
अपने आप तो हम बह जाएंगे, अगर तुम्हारा हाथ न आया।
यह "आपे" शब्द बहुत अच्छा है। इसके दो अर्थ हो सकते हैं, कि अपने आप तो
हम बह जाएंगे। और "आपे" का एक अर्थ अहंकार भी होता है। "आपे ही बहि जाएंगे"--यह जो आपा है, यह जो "मैं" भाव है, इससे तो हम बह जाएंगे।
समझने की चेष्टा करें;
"सुरति करौ मेरे सांइयां, हम हैं भवजल मांहि।
आपे ही बहि जाएंगे, जे नहिं पकरौ बांहि।।"
कबीर की पहली शिक्षा तो है, कि तुम सुरति से भरो; कि तुम स्मरण से भरो परमात्मा के। जैसे-जैसे तुम परमात्मा के स्मरण से भरोगे जैसे-जैसे उसकी याद सघन होगी, तुम्हें अपने अहंकार का भाव कम होता जाएगा। ये दोनों साथ नहीं रह सकते। ये तो एक म्यान में दो तलवारें हैं, ये साथ नहीं चल सकतीं। यह राह बड़ी संकरी है, बड़ी बारीक है।
"प्रेम गली अति सांकरी ता में दो न समाहि।"
यहां या तो परमात्मा का स्मरण बचेगा, या अहंकार का स्मरण। दोनों स्मरण साथ नहीं चल सकते। अगर परमात्मा को पाना है, तो स्वयं को छोड़ना होगा। अगर स्वयं को पकड़ना है, तो परमात्मा छूटा ही हुआ समझो।
यह तो तुम भूल कर भी मत सोचना, कि तुम परमात्मा को पा लोगे। तुम कभी भी
न पाओगे। पाना हो सकता है; लेकिन तुम न रहोगे, तभी पाना होगा। पाने की घटना घटेगी, लेकिन तुम न रहोगे तभी। जब तक तुम हो, तब तक बाधा बनी रहेगी। तब तक तुम्हारे कारण ही तुम परमात्मा को दूर हटाते रहोगे।
तो कबीर कहते हैं, पहले तो मेरी सुरति सध जाए; कि मुझे परमात्मा का स्मरण सध जाए। लेकिन कबीर जानते हैं, कि जिन्होंने ऐसा सोच लिया कि हमें

सुरति सध गई, वे एक नये अहंकार से भर गए। जो कहने लगे, कि हम तो परमात्मा के भक्त हैं; कि हम तो उसकी ही याद करते हैं; कि हम तो उसकी याद से भरे हैं। उन्होंने एक नया "मैं" जन्मा लिया। पुराना "मैं" नया हो गया, और मजबूत हो गया। पुराना "मैं" सांसारिक था, यह धार्मिक हो गया। यह जहर और खतरनाक है। तो एक तो अहंकार है, कि तुम्हारे पास बड़ी दुकान है; और एक अहंकार है, कि तुम रोज पूजा करते हो। एक अहंकार है कि तुम्हारे पास धन है; और एक अहंकार है कि तुमने बहुत त्याग किया है। एक अहंकार है, कि दुनिया में तुम्हारा बड़ा बल है; और एक अहंकार है, कि परमात्मा के पास तुम्हारी बड़ी पहुंच है। दोनों ही एक जैसे हैं। दूसरा ज्यादा खतरनाक है। क्योंकि पहले की मूढ़ता तो दिखाई पड़ जाए, दूसरे की मूढ़ता दिखाई भी न पड़ेगी। दूसरे की मूढ़ता दिखाई न पड़ेगी, क्योंकि वह शास्त्रों में ढंकी है; प्रार्थना, पूजा, धूप-दीप, अर्चना में ढंकी है। पहली मूढ़ता तो नग्न है, बाजार में खड़ी है। दूसरी मूढ़ता छिपी है मंदिर में, मसजिद में, गुरुद्वारे में। पहली मूढ़ता तो बहुत लोगों में है। इसलिए दिखाई पड़ना बहुत कठिन नहीं है। उसके मरीज तो बहुत हैं। दूसरी मूढ़ता बड़ी न्यून है। उसके मरीज बेजोड़ हैं। वह बीमारी कभी-कभी होती है, मुश्किल से होती है। इसलिए उस बीमारी में भी अकड़ पैदा हो जाती है। तो कबीर पहले सूत्र तो देते हैं, कि तुम सुरति से भर जाओ; लेकिन इस तरह
मत पकड़ लेना सुरति को, कि सुरति ही अहंकार को भरने का कारण हो जाए।
भक्तों को देखो, उनकी अकड़ देखो! ज्ञानियों को देखो, उनकी अकड़ देखो! त्यागियों को देखो, उनकी अकड़ देखो! पुरानी अकड़ चली गई, नई अकड़ पकड़ गई। अकड़ इतनी सूक्ष्म है कि तुम एक तरफ से छोड़ते हो कि दूसरी तरफ से पकड़ लेते हो। तो इस अकड़ की संभावना ही मिट जाए इसलिए कबीर दूसरा सूत्र देते हैं--"सुरति करौ मेरे सांइयां।" इसलिए वे परमात्मा से कहते हैं कि मैं तो तुम्हारे स्मरण से भरने की कोशिश कर रहा हूं। पर वह काफी नहीं है। मैं अकेला भव-सागर पार न कर सकूंगा। मैं तो डूब ही जाऊंगा। मेरा त्याग, मेरी पूजा, मेरी साधना पर्याप्त नहीं है। जरूरी हो सकती है, पर्याप्त नहीं है। मेरी तरफ से मैं जो भी कर रहा हूं, वह अंधेरे में टटोलने जैसा है। उससे द्वार खुलेगा ही यह पक्का नहीं है।
उससे द्वार क्या खुलेगा! मैं ही कैसे द्वार को खोल पाऊंगा? अंधा! अंधेरे में! सब तरफ से बेचैन और परेशान। पुकारता हूं तुम्हें, लेकिन मेरी पुकार ही तुम तक पहुंच पाएगी? न तो तुम्हारा पता मुझे मालूम, न ठिकाना मुझे मालूम। तुम कहां हो, यह भी मुझे मालूम नहीं। पुकारता हूं, और पुकार में भी कहीं न कहीं मेरा संदेह छिपा है। मैं हूं ऐसा। मेरी सुरति भी पूरी नहीं है। वह भी खंड-खंड है। कभी भूल जाता हूं, कभी याद कर लेता हूं।
"सुरति करौ मेरे सांइयां"
इसलिए तुम्हें भी मेरी याद करनी पड़ेगी। मैं तो चल रहा हूं, अपनी चेष्टा कर रहा हूं। मुझे पता भी नहीं, कि यह तुम्हारी ही दिशा है, जिसमें मैं चल रहा हूं? तुम्हें पुकारता चल रहा हूं, लेकिन मुझे पता नहीं यह पुकार तुम्हारे घर की तरफ जा रही है, नहीं जा रही है? इसलिए अकेले न हो सकेगा।
"सुरति करौ मेरे सांइयां"--तुम भी मेरी थोड़ी याद करो।
"हम हैं भवजल मांहि।"
सागर बड़ा है। संसार बड़ा सूक्ष्म है, किनारा दिखाई नहीं पड़ता। डूबना ज्यादा निश्चित मालूम पड़ता है, उबरने के। अपनी ही सुरति की नाव को बना कर तुम्हारे किनारे को पा लेंगे, यह संदिग्ध मालूम पड़ता है। हम ही तो बनाएंगे उस नाव को; हमारी सामर्थ्य क्या! हमारी पात्रता कितनी! हमारी बनाई हुई नाव भी तो हमारी ही नाव होगी। हमसे ही बनी होगी, हमसे बड़ी तो नहीं हो सकती। हमसे महत्वपूर्ण तो नहीं हो सकती। हमारी सब भूलें उस नाव में होंगी। हमारे सब छिद्र उस नाव में होंगे।
बनाने वाले से बनाई गई चीज बड़ी नहीं हो सकती। एक चित्रकार चित्र बनाता है; तो चित्रकार ही तो बनाता है। तो चित्रकार की सारी भूलें उसमें होंगी। चित्रकार की सारी मनो-दशा उसमें झलकेगी। चित्रकार के सारे मनोभाव उसमें चित्रित हो जाएंगे।

एक मूर्तिकार मूर्ति बनाता है। मूर्ति क्या कभी मूर्तिकार से बड़ी हो सकती है? कैसे होगी? बनानेवाले से बनाई गई चीज बड़ी नहीं हो सकती। सृष्टि सदा ही स्रष्टा से छोटी होगी।
तो कबीर कहते हैं, सुरति करौ मेरे सांइयां। हे प्रभु, तुम मेरी याद करो। मैं तुम्हारी याद कर रहा हूं।
"... हम हैं भवजल मांहि।"
हम अब डूबे तब डूबे की हालत में हैं। पुकारते हैं, चिल्लाते हैं, लेकिन तुम तक पहुंचती है आवाज? कैसे हमें भरोसा हो, जब तक कि तुम्हारी आवाज भी हम तक न पहुंचे? हम तो हाथ फैला रहे हैं अंधेरे में--स्वभावतः, क्योंकि प्रकाश अगर होता तो हम तुम्हें पुकारते ही क्यों? हमारा हाथ अंधेरे में फैला है, लेकिन हमें कैसे पक्का पता चले कि तुम्हारे हाथ तक पहुंच गया है, जब तक तुम्हारा हाथ हमारे हाथ का स्पर्श न करे?
यह अहंकार को बिल्कुल जड़ से मिटा देने की चेष्टा है। थोड़ा सा बच सकता
है साधक में, तपस्वी में; भक्त में बिल्कुल नहीं बच सकता। क्योंकि भक्त यह नहीं कहता कि मेरी ही सामर्थ्य से पहुंच जाऊंगा। तेरा सहारा चाहिए। "सुरति करौ मेरे सांइयां, हम हैं भवजल मांहि।
आपे ही बहि जाएंगे... "
अगर हम अपनी ही चेष्टा करते रहे, तो बह जाना निश्चित है।
और यह अहंकार इतना भयंकर है कि हम छोड़-छोड़ कर इसे पकड़ लेते हैं। एक तरफ
से छोड़ते हैं, दूसरी तरफ से पकड़ लेते हैं। इधर से विदा करते हैं कि वह पीछे के दरवाजे से भीतर आ जाता है। उसे हम फिर पाते हैं, वह सिंहासन पर विराजमान है। उससे हम बच नहीं पाते।
यह जो विनम्र निवेदन है, यह जो अहंकार का साफ-साफ स्वीकार है, यही विनम्र आदमी का लक्षण है। अहंकारी तो कहेगा, मैं विनम्र हूं। विनम्रता ही उसका अहंकार बन जाएगी। विनम्र आदमी कहेगा, पक्का नहीं है। अहंकार सूक्ष्म है। जाल कठिन है। बाहर निकलना मुश्किल है। चेष्टा करता हूं, लेकिन जीत मालूम नहीं होती।
यह विनम्र आदमी कहेगा, जिसने निश्चित ही अहंकार को छोड़ने के प्रयास किए हैं और पाया है कि हर बार अहंकार किसी न किसी रूप में बच जाता है।
बड़े जटिल मार्ग हैं अहंकार के। तुम धन छोड़ देते हो, क्योंकि तुम सोचते थे, धन के कारण हैं। अचानक अहंकार कहता है, "देखो! तुम जैसा त्यागी इस संसार में कोई भी नहीं।"
तुम घर-द्वार छोड़ देते हो, जंगल में बैठ जाते हो। अहंकार कहता है, देखो! पाफी तो सब संसार में हैं, तुम कैसे पुण्यात्मा! तुम यहां जंगल में हिमालय की गुफा में बैठे हो।
इससे तुम कैसे भागोगे? कहां जाओगे? यह तुम्हारे साथ ही खड़ा रहेगा। विनम्र आदमी इसको पहचान लेता है। विनम्र आदमी स्वीकार करता है, कि अहंकार बहुत कठिन है। इसलिए विनम्र परमात्मा से कहेगा, "आपे ही बहि जाएंगे। " अपने से तो तर न पाएंगे, बह जाएंगे।
"... जे नहिं पकरौ बांहि।"
तुम्हारा हाथ अगर न बढ़ा तो हमारा डूब जाना निश्चित है।
चिल्लाते हैं, पुकारते हैं, रोते हैं; लेकिन यह काफी कहां है? शुरुआत
हो सकती है, अंत नहीं। अंत तो तुम्हारा हाथ हमारे हाथ में आ जाए, तभी! तुम्हारा सहारा मिल जाए--"सुरति करौ मेरे सांइयां।"
"अवगुण मेरे बापजी, बकस गरीब निवाज।"
तपस्वी तो हिसाब रखता है, कितनी तपश्चर्या की! साधक हिसाब रखता है कितने उपवास किए, कितनी पूजाएं कीं, कितने मंत्र जपे--करोड़, दो करोड़, पांच करोड़! वह सब अहंकार का ही हिसाब है। वह खाते-बही सब संसार की ही है। अहंकार के अतिरिक्त कोई दावेदार ही नहीं है दुनिया में। दावेदारी कुछ भी हो; कि मैंने इतने मंत्र पढ़े, इतनी पूजा की।
भक्त का भाव कुछ और है। भक्त कहता है, "अवगुण मेरे बापजी।" भक्त कहता है, अवगुणों का मुझे पता है। उन्हें मैं मिटा नहीं पाया, यह भी मुझे पता

है। उन्हें मैं मिटा न पाऊंगा यह भी मुझे पता है। तेरे बिना कुछ भी न होगा। तो मैं यह नहीं कहता, कि मैं गुणी हूं इसलिए तू हाथ बढ़ा; यहीं फर्क है।
अहंकारी वहां भी कहता है, कि देख मैंने इतने उपवास किए, अभी तक तेरा हाथ नहीं मिला? अन्याय हो रहा है। बेईमान तरे जा रहे हैं, ईमानदार डूब रहा है। अनैतिक पार हुए जा रहे हैं और जिन्होंने तपश्चर्या की, साधना की, तुझे पुकारा, राम-राम जप कर जीवन गुजारा, वे डूब रहे हैं। यह अन्याय है।
जहां अहंकार है, वहां सदा शिकायत होगी। शिकायत अहंकार के पीछे ऐसी चलती है, जैसे छाया तुम्हारे पीछे।
जहां अहंकार नहीं है, वहां अहोभाव होगा। वहां दीनता की स्वीकृति होगी
और उसके दान के प्रति अहोभाव होगा। जहां अहंकार है, वहां सदा यह लगेगा, कि जो मुझे मिलना चाहिए, वह नहीं मिल रहा है। जिसके मैं योग्य हूं, वह मुझे नहीं मिल रहा है। जो मेरी पात्रता है, उससे कम मुझे मिल रहा है। यही तो विषाद है। यही तो उदासी है अहंकार की। यही तो उसकी असफलता है।
लेकिन कबीर कहते हैं, "अवगुण मेरे बाप जी।" मुझे पता है। कुछ छिपा नहीं है मुझसे। कुछ तेरे द्वार पर मैं दावा लेकर नहीं आया हूं। और अगर यह कहता हूं, कि तू हाथ बढ़ा, तो इसलिए नहीं कहता हूं कि मैं इसके योग्य हूं। इस भेद को ठीक से समझ लेना; क्योंकि उसी भेद पर भक्त की सारी की सारी कीमिया, सारी कला निर्भर है।
मैं इसलिए नहीं कहता हूं, तू हाथ बढ़ा, क्योंकि मैंने पात्रता अर्जित
कर ली है। पात्रता कहां? अपात्र हूं बिल्कुल। "अवगुण मेरे बाप जी"-- अवगुणों का मुझे पता है। शायद तुझे भी पता न हो मेरे अवगुणों का; मुझे पता है। मुझे तो अवगुणों अवगुणों का ही पता है।
"... बकस गरीब निवाज।"
तो तुझसे यह नहीं कहता कि मैंने अर्जित कर लिया है तेरा हाथ। इतना ही कहता हूं, कि मैं जानता हूं तू गरीब निवाज है। तू उन पर दया करता है, जिनके पास कुछ भी नहीं। तेरी करुणा अपार है। मैं तेरी करुणा को पुकार रहा हूं; अपनी पात्रता की घोषणा नहीं कर रहा हूं। मैं यह नहीं कह रहा हूं, कि अब दे, अगर देर हुई तो अन्याय होगा। मैं जानता हूं कि जब भी मुझे मिलेगा, तेरी करुणा के कारण मिलेगा, मेरी पात्रता के कारण नहीं।
इस संबंध में एक बात समझ लेनी जरूरी है। बड़ा प्राचीन विवाद है। सारे संसार के सभी धर्मों के सामने उठा है। और वह विवाद यह है, कि परमात्मा न्यायपूर्ण है या करुणावान?
बड़ा कठिन है विवाद। तय करना बहुत मुश्किल है। क्योंकि अगर न्यायपूर्ण हो, तो करुणावान नहीं हो सकता। न्याय का तो मतलब है, जिसने बुरा किया उसे दंड मिलना चाहिए; जिसने भला किया, उसे पुरस्कार मिलना चाहिए। करुणावान का अर्थ है, जिसने बुरा किया उसको भी प्रसाद मिल जाता है। करुणावान का अर्थ है, कि जिसने कमाया नहीं, उस पर भी वर्षा हो जाती है।
तो परमात्मा क्या है? जस्ट--न्यायपूर्ण; या कम्पैशनेट--करुणावान? दोनों एक साथ तो कैसे होगा? क्योंकि अगर मजिस्ट्रेट अदालत में न्यायपूर्ण हो, तो करुणावान नहीं हो सकता। क्योंकि अगर करुणा करने लगे, तो फिर न्यायपूर्ण कैसे होगा?
एक आदमी ने चोरी की है उसे करुणा आ जाए, कि बेचारा गरीब! तो फिर न्याय न
कर सकेगा। अगर उसे माफ कर दे, तो जिसकी उसने चोरी की थी, उसके साथ अन्याय हो गया।
और अगर न्याययुक्त हो, ठीक वही करे, जो न्याय कहता है तो फिर करुणा कहां होगी?
जिन लोगों ने माना कि परमात्मा न्यायपूर्ण है, उन्होंने धीरे-धीरे परमात्मा को हिसाब के बाहर ही कर दिया। क्योंकि अगर परमात्मा न्यायपूर्ण है, तो उसकी जरूरत ही नहीं रह जाती। फिर तो नियम काफी है, परमात्मा की क्या जरूरत है?
इसलिए जैनों ने परमात्मा को इनकार कर दिया। क्या जरूरत है? अगर वह सदा
ही न्यायपूर्ण है, तो नियम काफी हैं। पाप के कारण दुख मिलता है, यह नियम है। जैसे कोई आदमी आग में हाथ डालता है, हाथ जल जाता है। आग कोई सोचती थोड़े

ही है कि इस आदमी पर दया करें, या दंड दें। आग तो एक नियम के अनुसार चलती है। इसलिए जैनों ने तय कर लिया, कि परमात्मा को बाद दी जा सकता है, उसकी कोई जरूरत नहीं मालूम पड़ती। अगर वह सदा ही न्यायपूर्ण है और कभी नियम के बाहर नहीं जाता, तो नियम काफी है। उसकी क्या जरूरत?
और अगर यह सदा ही नियम के अनुसार चलता है तो वह नियम से नीचे है, नियम
से ऊपर नहीं है। तो नियम ही असली परमात्मा है। इसलिए बुद्ध और महावीर दोनों ने कहा, धर्म परमात्मा है। और कोई परमात्मा नहीं है--नियम। धर्म यानी नियम। वह जो जीवन का शास्त्र है, उसका नियम। जो आग में हाथ डालता है उसका हाथ जल जाता है। बस, ऐसे ही जो फाफ करता है, उसे दुख मिलता है; जो पुण्य करता है, उसे सुख मिलता है। यह कर्म का सिद्धांत है।
अगर ठीक से समझो, तो परमात्मा के साथ कर्म का सिद्धांत मेल नहीं खाता।
यह तुमने कभी सोचा न होगा। हिंदुओं को या तो परमात्मा को पकड़ना चाहिए या कर्म का सिद्धांत छोड़ देना चाहिए। जैन ज्यादा तर्क-युक्त हैं। उन्होंने कर्म का सिद्धांत पकड़ा, परमात्मा को छोड़ दिया।
क्योंकि जब नियम ऐसा है, कि जैन यह पूछते हैं, परमात्मा अगर चाहे तो क्या पापी को भी स्वर्ग भेज सकता है? अगर भेज सकता है, तो यह जगत एक अन्यायपूर्ण व्यवस्था है। और यह परमात्मा, परमात्मा नहीं है, यह तो एक अन्यायी व्यक्ति है। और ऐसे व्यक्ति का न होना बेहतर है।
और तब पुण्य करने में भी क्या सार है? क्योंकि जैन कहते हैं, अगर पापी स्वर्ग जा सकता है, तो इससे उलटा भी हो सकता है कि पुण्यात्मा नरक भेज दिया जाए। क्योंकि यह तो फिर परमात्मा की दिमागी करुणा पर निर्भर है। नाराज हो जाए--नियम तोड़ा जा सकता है अगर पापी के पक्ष में, तो पुण्यात्मा के विपरीत भी तोड़ा जा सकता है। एक दफा नियम अगर तोड़ा जा सकता है, तो नियम का फिर कोई भरोसा नहीं है।
तो परमात्मा तो फिर एक तरह का तानाशाह है। वह ढंग हिटलर और स्टैलिन जैसा है फिर उसका। जैन कहते हैं, ऐसे परमात्मा को हम बरदाश्त नहीं करते। अन्याय को हम बरदाश्त नहीं करते। हम तो नियम और नीति और न्याय को चाहते हैं। इसलिए नियम काफी है। परमात्मा की कोई जरूरत नहीं है।
हिंदू दोनों मानते हैं। हिंदू दुनिया में बड़ा विरोधाभासी धर्म है। और वही उसकी खूबी भी है, वही उसकी मुश्किल भी है। खूबी यह है कि वह दोनों बातें एक साथ मानता है, कि परमात्मा न्यायपूर्ण है और परमात्मा करुणावान है। क्योंकि हिंदू कहते हैं कि अगर सिर्फ नियम है तो जीवन इतना रूखा-सूखा हो जाता है कि वहां कोई करुणा की छाया नहीं। अगर कानून से ही सब चल रहा है तो जीवन में फिर रस, संगीत, और रहस्य की क्या जगह रही? गणित का हिसाब है; धर्म का क्या उपाय रहा?
इसलिए जैन शास्त्र अगर तुम पढ़ो, तो तुम पाओगे वह गणित का फैलाव है। उनमें तुम्हें उपनिषदों का रस न मिलेगा।
मेरे पास लोग आते हैं; वे कहते हैं, आप कुंदकुंद पर क्यों नहीं कभी बोलते, जैसा कबीर पर बोलते हैं?
कुंदकुंद परम ज्ञानी हुए। जरूर मैं चाहूंगा कि उन पर बोलूं। लेकिन अड़चन वहां आ जाती है कि एकदम सब रूखा-सूखा है। एक मरुस्थल मालूम होता है-- नियम! कोई काव्य नहीं है, कोई करुणा नहीं है, कोई रसधार नहीं बहती। चलो मरुस्थल में, लेकिन कहीं कोई पानी की बूंद नहीं मिलती। और सब गणित का ही हिसाब है।
तो ऐसा लगता है, जैसे जीवन एक गणित है। उसमें से काव्य खो जाता है। जीवन एक कविता नहीं रह जाती। शुद्ध गणित हो जाता है--हिसाब। दो और दो चार होते हैं, ऐसा हिसाब हो जाता है। दो और दो न तो पांच होते, न तीन होते। हिंदू बड़े अदभुत हैं इस अर्थ में। वे कहते हैं कि जीवन में नियम है, लेकिन नियम ही सब कुछ नहीं है। नियम के पीछे करुणावान हृदय भी छिपा है। जीसस की एक कहानी है। वह जीसस ने निश्चित ही हिंदुओं से इसी मुल्क में सीखी है। क्योंकि यहूदी उसको बिल्कुल नहीं समझ पाए और यहूदियों के लिए बिल्कुल बेबूझ हो गई। यहूदी भी राजी हैं, कि फरमात्मा न्याययुत्त है। इसलिए यहूदियों का परमात्मा बड़ा कठोर है, जैसा नियम कठोर होता है। आग

जलाती है। छोटा बच्चा हाथ डाले तो भी जलाती है, पहलवान हाथ डाले तो भी जलाती है। आग सोचती नहीं कि छोटा बच्चा है, क्षमा करो, छोड़ दो एक दफा। एक-दो दफा भूल करता है, सीख लेने दो।
नहीं, नियम बड़ा कठोर है। इसलिए यहूदियों का परमात्मा एकदम नियम का प्रतीक है, बड़ा कठोर है। तुमने भूल की, वह तुम्हें सड़ाएगा, नरको में डालेगा, काटेगा। तुमने ठीक किया, वह तुम्हें स्वर्गो में उठाएगा।
तुम्हारे जीवन में सुख ही सुख की धाराएं बह जाएंगी। पुरस्कृत होओगे, दंडित होओगे; और सब नियम से चलेगा। परमात्मा नियम है।
जीसस ने एक कहानी जब कहनी शुरू की, तो यहूदियों के लिए बड़ी अड़चन हुई। जीसस की कहानी बड़ी साधारण, सरल, सीधी-साफ है।
जीसस ने कहा कि एक आदमी का एक अंगूरों का बगीचा था। और उसने सुबह अपने मुनीम को भेजा, कि तू जा और गांव से मजदूरों को ले आ। वह गया, वह कुछ मजदूरों को लाया लेकिन और मजदूरों की जरूरत थी। दोफहर होते-होते उसे फिर भेजा गया, वह फिर और मजदूरों को लाया। लेकिन और भी मजदूरों की जरूरत थी। मालिक जल्दी में था और काम सांझ तक पूरा कर लेना था तो दोपहर के बाद भी कुछ मजदूर आए। फिर भी उसे भेजा गया। कुछ मजदूर तो तब आए जब काम बंद होने के ही करीब था। वे आए ही; काम करने का उन्हें मौका ही नहीं मिला और सूरज ढल गया। फिर उस मालिक ने सभी मजदूरों को इकट्ठा किया और सभी को बराबर पैसे बांट दिए। जो सुबह आए थे उन्हें भी, और जो अभी-अभी आए थे, उन्हें भी। निश्चित ही इसमें थोड़ा अन्याय मालूम पड़ा। जो सुबह से मेहनत कर रहे थे उन्होंने कहा, यह अन्याय है। क्योंकि हम सुबह से जी-जान तोड़ रहे हैं। कुछ लोग दोपहर में आए, उन्हें आधा मिलना चाहिए। कुछ लोग और भी बाद में आए, उन्हें तो पाव ही मिलना चाहिए। और कुछ लोग तो अभी-अभी आए हैं, उन्हें देने का तो कोई सवाल ही नहीं उठता।
उस मालिक ने कहा कि तुम्हें जितना मिलना चाहिए था, उतना मिला या नहीं? उन्होंने कहाः हमें तो उतना मिल गया।
तो मालिक ने कहाः फिर तुम फिकर मत करो। तुम्हें जितना मिलना चाहिए था,
वह तुम्हें मिल गया। इन्हें मैं अपनी खुशी से देता हूं। मेरे पास देने को बहुत है। इनकी मजदूरी के कारण नहीं देता, अपने ज्यादा होने के कारण देता हूं। इसमें तुम्हें कोई एतराज है?
यह कहानी जीसस ने निश्चित ही हिंदुओं से सीखी होगी। इस कहानी का सूत्र कहीं हिंदुओं की धारणा में है। हिंदू कहते हैं, परमात्मा न्यायपूर्ण है; मगर न्याय का उपयोग वह पुण्यात्माओं के साथ करता है।
यह जरा समझ लेना। यह बड़े मजे की बात है। न्याय का उपयोग करता है पुण्यात्माओं के साथ, क्योंकि उनको करुणा की जरूरत ही नहीं है। उन्होंने करुणा कभी मांगी ही नहीं। तो उन्हें जितना मिलना चाहिए, उतना मिल जाता है। उन्होंने मेहनत की सुबह से सांझ तक। तप किया, उपवास किया, भूखे रहे, जंगल गए, उलटी-सीधी श्वासें साधीं, प्राणायाम किया, सिर के बल खड़े रहे, योग किया। हजार उपाय किए, जुगुत की, जोग की। निश्चित ही उन्होंने बड़ी मेहनत की सुबह से सांझ तक।
परमात्मा उन्हें उतना देता है, जितना उन्होंने अर्जित कर लिया। करुणा उन्होंने मांगी नहीं। उन्होंने अपने श्रम की मांग की है। इसलिए यह बड़े मजे की बात है, कि महावीर और बुद्ध के धर्म का नाम श्रमण है। श्रमण का अर्थ होता है, जो श्रम पर आधारित है।
हिंदुस्तान में दो संस्कृतियां हैंः एक ब्राह्मण और एक श्रमण। श्रमण संस्कृति का अर्थ होता हैः हम अपने श्रम से जो अर्जित है उसकी मांग कर रहे हैं। निश्चित उतना मिलेगा। उससे कम कभी भी नहीं मिलेगा, क्योंकि परमात्मा न्यायपूर्ण है।
लेकिन जिन्होंने सिर्फ अर्जित किया है, वे बड़ी मुश्किल में पड़ेंगे परमात्मा के द्वार पर; जब वे देखेंगे, कि पापियों को भी मिल रहा है और खूब मिल रहा है। और उतना ही मिल रहा है, जितना उन्हें मिल रहा है। तब परमात्मा उनसे कहेगा कि यह मैं अपने आधिक्य से देता हूं। यह मेरे पास बहुत ज्यादा

है, इसका मैं क्या करूं? तुमने जितना कमाया, तुम्हें मिल गया। फिर भी बहुत मेरे पास बचा है, उसका मैं क्या करूं?
यह गणित के बाहर है बात। मगर जीवन गणित है ही नहीं। ऐसा नहीं है, कि गणित से चलने वाले लोग नहीं पहुंचेंगे; पहुंचेगे। पर उतना ही पाएंगे जितना उनकी जरूरत है, जितना उन्होंने कमाया है।
अंत में एक बड़ा अदभुत अनुभव होता है, कि उनको भी मिल जाता है, जिन्होंने कमाया न था, लेकिन जिन्होंने अनुभव किया था, हम अवगुणी हैं; जो निर-अहंकारी थे। कमाई तो अहंकार की घोषणा है। अहंकार के साथ पूरा न्याय किया जाता है। लेकिन ऐसे लोग भी हैं, जिन्होंने कमाया नहीं; या कमाया भी तो भी पाया, कि हमारी कमाई का क्या दावा हो सकता है? उन्होंने अपने अवगुणों की बात कही है...
"अवगुण मेरे बाप जी, बकस गरीब निवाज।"
उन्होंने कहा कि अवगुण ही अवगुण हैं हममें। दावा हमारा कुछ नहीं। अगर
न मिलेगा तो हम शिकायत न कर सकेंगे और कहीं अपील न कर सकेंगे तुम्हारे खिलाफ। कोई अदालत है भी नहीं अपील की। कोई शिकायत भी न कर सकेंगे। हम पाएंगे, कि ठीक है। जो हुआ, वह अपने अवगुणों के कारण हुआ। तुमसे हमारी कोई शिकायत न होगी। लेकिन हम तुम्हारी करुणा को तो पुकार सकते हैं।
अब अस्तित्व में दोनों तत्व हैं; न्याय के और करुणा के। न्याय को पुकारता है ज्ञानी, करुणा को पुकारता है भक्त। नियम को पुकारता है ज्ञानी, करुणा को पुकारता है भक्त। भक्त निर्भर होता है इस अस्तित्व की प्रीति पर। ज्ञानी निर्भर होता है इस अस्तित्व के नियमों पर।
इसीलिए मैं तुमसे कहता हूं, अगर ज्ञानी ही सिर्फ ठीक हो, तो किसी न किसी दिन धर्म, विज्ञान का एक छोटा सा हिस्सा हो कर समाप्त हो जाएगा। क्योंकि विज्ञान भी नियम पर निर्भर है। वह भी नियम की खोज है। इसलिए आइंस्टीन में और महावीर के विचार में बहुत फर्क नहीं है। एक न एक दिन तालमेल बैठ जाएगा। आइंस्टीन भी रिलेटिविटी की बात करता है, सापेक्ष की; और महावीर भी बात करते हैं। महावीर के वचनों में और आइंस्टीन के वचनों में विरोध खोजना कठिन है।
कभी न कभी विज्ञान, जैन धर्म और बौद्ध धर्म से राजी हो जाएगा। उस दिन जैन धर्म और बौद्ध धर्म खो जाएंगे। क्योंकि जिस दिन विज्ञान ही इन काम को पूरा कर देगा, उस दिन इन धर्मों की कोई जरूरत न रह जाएगी। जो धर्म नियम पर आधारित हैं, उनके खोने का दिन जल्दी करीब आ जाएगा। उस दिन तो वे ही धर्म बचेंगे जो नियम के बाहर हैं, जरा बेबूझ हैं, पहेली जैसे हैं।
हिंदू धर्म बहुत बेबूझ है। गहरी से गहरी पहेली है उसकी; और वह यह कहता है, कि वे भी पहुंच जाते हैं, जिन्होंने कमाने का दावा ही नहीं किया। जिन्होंने केवल अपने दुर्गुणों की स्वीकृति की, जिन्होंने अपनी कमियों को स्वीकार किया, वे भी पहुंच जाते हैं। वे निर-अहंकारिता के कारण पहुंचते हैं। और मेरी अपनी समझ यह है, कि वे और भी गहरे पहुंच जाते हैं, जिन्होंने परमात्मा के हृदय से पहुंचने की कोशिश की। जो परमात्मा के मस्तिष्क से पहुंच रहे हैं, नियम के अनुसार, गणित के अनुसार; वे भी पहुंचते हैं, लेकिन उतने गहरे नहीं पहुंच पाते।
"अवगुण मेरे बाप जी... "
भक्त परमात्मा से संबंध जोड़ता है। क्योंकि भत्त यह मान ही नहीं सकता,
कि अस्तित्व के साथ हमारा जीवन अनजुड़ा है। जीसस कहते हैं परमात्मा को, "मेरे पिता।" कबीर कहते हैं, "बाप जी।"
"बाप जी" शब्द बड़ा प्यारा है।
मैं राजस्थान में घूमता था, तो राजस्थान में ग्रामीण जब भी आते हैं किसी संत के पास, तो वे कहते हैं बापजी या बापू--गुजरात में भी। तो कभी-कभी ऐसा होता--उदयपुर के महाराजा के पिता मुझे मिलने आए। वे बड़े सादे भक्त हैं, बड़े सीधे आदमी हैं। दस-पच्चीस लोग ही मैंने मुल्क में देखे हैं, जिनमें वैसा गुण है। वे तो बहुत बूढ़े हैं। मेरे पिता से भी उनकी उम्र ज्यादा है। मेरे पिता के पिता की उम्र के होंगे।

वे मुझसे जब "बाप जी" कहने लगे तो मैंने उनको कहाः रुकें। मुझे आप बाप
जी मत कहें। आप तो मेरे पिता के भी पिता की उम्र के हैं।
वे कहने लगे कि नहीं। शरीर की बात ही नहीं है। उम्र का सवाल ही नहीं है। हम तो आपमें बाप जी को ही देखते हैं।
बाप जी का अर्थ है, परमात्मा। बाप जी का अर्थ है, जिससे सारा जगत हुआ
और जिसमें लीन हो जाएगा। वह एक संबंध है प्रेम का।
परमात्मा कोई न्यायाधीश नहीं है। न्यायाधीश से भी कोई संबंध होते हैं? न्यायाधीश से तो बड़ा फासला होता है। न्यायाधीश तो संबंध बनाता ही नहीं किसी से।
इसलिए न्यायाधीश को हम वर्ष दो वर्ष में एक गांव से दूसरे गांव में बदली करते रहते हैं। क्योंकि वह एक जगह ज्यादा देर रह जाए तो लोगों से संबंध हो ही जाएंगे। आदमी आखिर आदमी है! जब संबंध हो जाएंगे तो न्याय में बाधा फड़ने लगेगी। किसी से ज्यादा परिचय हो जाएगा और उसका लड़का चोरी में पकड़ा जाएगा, तो दो साल की सजा न देकर दो महीनों में निपटा देगा। किसी से झगड़ा हो जाएगा, विरोध बन जाएगा तो जहां दो महीने की सजा देनी थी, दो साल की दे देगा।
इसलिए हम न्यायाधीशों को एक गांव में ज्यादा देर टिकने नहीं देते। और गांव में भी टिकें तो उनसे गांव से संबंध नहीं बनने देते। उनको दूर रहना चाहिए, फासले पर रहना चाहिए, मित्रता नहीं बनानी चाहिए।
ऐसे धर्म हैं, जिनका परमात्मा से नाता न्यायाधीश का है। यह भी कोई नाता हुआ! यह तो बात ही खराब हो गई। जीवन की सारी रसधार ही सूख जाएगी। तुम फिर नाच न सकोगे। अदालतों में कहीं नाच हो सकता है?
इसलिए तो चर्च उदास हो गए, मसजिदें खाली हो गईं, मंदिरों में नौकर बैठ
गए पूजा करने। सब काम अदालती हो गया।
संबंध सीधा होना चाहिए। वह संबंध ऐसा होना चाहिए जैसे बेटे और पिता
के बीच होता है; मां और बेटे के बीच होता है; पति-पत्नी के बीच होता है; प्रेमी-प्रेयसी के बीच होता है। वह संबंध कहीं निकटता का होना चाहिए। वह संबंध किसी न किसी रूप में प्रेम का होना चाहिए।
और बहुत तरह के संबंध भक्तों ने खोजे हैं। सूफी फकीर उसको प्रेयसी कहते हैं। उसका भी अपना राज है। हिंदू भक्त--मीरा, चैतन्य उसे पति की तरह पूजते हैं। बंगाल में एक भक्तों का संप्रदाय है, राधा संप्रदाय। पुरुष भी अपने को राधा ही मानता है। कृष्ण एक ही हैं, पति एक ही है।
लेकिन कबीर का जोर पिता और बेटे के संबंध पर है। इसमें कोई बातें समझने जैसी हैं। अगर वह पिता है, तो पिता और बेटे के बीच बड़ा अनूठा नाता है।
एक तो, बेटा पिता का ही फैलाव है। वह उससे अलग है, अलग नहीं भी है। यह बात पहली समझ लेनी जरूरी है। क्योंकि बेटा है तो पिता का ही वीर्याणु। वह उसकी ही यात्रा है, जीवन-धारा है। कितनी ही दूर हो जाए, फिर भी दूर नहीं, अपना ही है। आत्मज कहते हैं हम बेटे को, कि वह अपने से ही जन्मा है।
तो हम परमात्मा से कितनी ही दूर हो जाएं और कितनी ही पीठ कर लें और कितनी ही यात्रा पर निकल जाएं संसार में; कोई फर्क नहीं पड़ता। हम उससे ही पैदा हुए हैं।
पति-पत्नी का संबंध हमारा बनाया हुआ है। पिता-बेटे का संबंध हमारा बनाया हुआ नहीं है। पत्नी को हम बदल ले सकते हैं, डायवोर्स हो सकता है। पिता को बदलने का कोई उपाय नहीं। पत्नी हम दूसरी चुन सकते हैं, लेकिन पिता दूसरा कैसे चुनिएगा? कैसे चुनेंगे दूसरा पिता? वह बात हो गई, हो गई। उसके न होने की कोई सुविधा नहीं है।
पिता को बदला नहीं जा सकता। वह अपरिवर्तनीय संबंध है। और बेटा कितना
ही बड़ा हो जाए, बाप से बड़ा कभी नहीं हो सकता। कोई उपाय नहीं है। बेटा बाप से जान ले ज्यादा, ज्यादा ज्ञानी हो जाए, ज्यादा त्यागी हो जाए, ज्यादा धन कमा ले, तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता। बाप बाप है, बेटा बेटा है। और फासला और अनुपात वही का वही है, जो सदा था। बेटा बूढ़ा हो जाए तो भी बाप के लिए बेटा ही है। कोई अंतर नहीं पड़ता।

बाप और बेटे का संबंध कई और आयामों में भी बड़ा महत्त्वपूर्ण है। बेटे
और बाप के बीच जो संबंध है, वह अत्यंत गहन श्रद्धा का है। श्रद्धा प्रेम का नवनीत है। वह आखिरी चरण है प्रेम का। पति-पत्नी में संबंध प्रेम का है। वह टूट सकता है। प्रेम घृणा में बदल सकता है। लेकिन श्रद्धा का संबंध एक बार निर्मित हो जाए, तो वह कभी अश्रद्धा में नहीं बदल सकता। अगर बदल जाए तो समझना कि वह निर्मित ही न हुआ था। श्रद्धा में वापस लौटने का उपाय ही नहीं है। वह पाइंट ऑफ नो रिटर्न है। वहां से कोई वापस नहीं लौटता।
गुरजिएफ पश्चिम का एक बहुत बड़ा संत, अपने आश्रम के बाहर दीवाल पर लिख
रख छोड़ा था, कि जिसने अपने मां-बाप को आदर देना नहीं सीख लिया है, उसके लिए मंदिर के द्वार बंद हैं।
बड़ी हैरानी की बात थी। इस बात को वहां लिखने की क्या जरूरत थी? लोग पूछते भी गुरजिएफ से, कि यह क्या मामला है? इससे मां-बाप से क्या लेना- देना!
गुरजिएफ कहता कि जिसने इस संसार के मां-बाप से संबंध श्रद्धा का नहीं बना लिया, उसके पास सीढ़ी ही नहीं है उस ऊपर के पिता की तरफ चढ़ने की। उसकी सीढ़ी नहीं है उसके पास। उसके पास मौलिक अनुभव नहीं है, जिसका बीज बन जाए और जिसका वृक्ष हो सके। उसके पास पहली कुंजी ही नहीं है।
इसलिए पूरब में, जहां धर्मों का जन्म हुआ--सारे धर्मों का जन्म पूरब में हुआ। पश्चिम में एक भी धर्म पैदा नहीं हुआ है। जैसे सूरज पूरब में उगता है, वैसे सारा धर्म पूरब में पैदा हुआ है। पूरब में जितने धर्मों का जन्म हुआ--सभी धर्मों का हुआ--और पूरब में सभी लोगों ने एक बात पर जोर दिया है; वह है, बेटे के द्वारा पिता के प्रति एक अनन्य श्रद्धा, जिसको तोड़ा नहीं जा सकता।
कारण है उसका। कारण है, क्योंकि अगर तुम इस पृथ्वी पर अपने पिता के प्रति एक श्रद्धा का भाव पैदा नहीं कर पाए, तो तुम उस अज्ञात पिता के प्रति तो कैसे श्रद्धा का भाव पैदा कर पाओगे? मूल सीढ़ी खो रही है। इसलिए जिन लोगों का भी अपने पिता से बहुत अच्छा संबंध नहीं है, उन्हें उस संबंध को सुधार लेना चाहिए। उसको बिना सुधारे उनके और परमात्मा के बीच थोड़ी सी झंझट बनी रहेगी।
पश्चिम में परमात्मा की धारणा टूटती गई है। और वह उसी हिसाब से टूटी है, जिस हिसाब से बेटे और बाप का संबंध टूटा है। पिछले तीन सौ वर्षों में जिस हिसाब से बेटे और बाप का संबंध टूटा है, उसी हिसाब से मनुष्य का और परमात्मा का संबंध टूटा है। अब तो पश्चिम में बेटे बाप का संबंध जैसा कोई संबंध नहीं रह गया है। परमात्मा से भी कोई संबंध नहीं रह गया है।
जीवन में हर चीज कड़ी की तरह जुड़ी है। पृथ्वी के संबंध भी आकाश के संबंध की कड़ियां बनते हैं।
प्यारा शब्द है बाप जी।
"अवगुण मेरे बाप जी, बकस गरीब निवाज।
जे मैं पूत कपूत हों, तउ पिता को लाज।।
"और मुझे पता है, मैं दावा नहीं कर सकता सपूत होने का। हो सकता है, मैं कपूत हूं, लेकिन यह मेरी भूल-चूक है; इससे तुझे लज्जा में पड़ने की कोई भी जरूरत नहीं। यह मेरी गलती है। जो भी भूल-चूक है, वह मेरी है; इससे तुझे लज्जा में फड़ने की कोई भी जरूरत नहीं।
"जे मैं कपूत हों, तउ पिता को लाज।"
और इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, कि बेटा कपूत हो, कि सपूत हो। पिता के प्रेम में कोई फर्क नहीं पड़ता। और पड़ता हो प्रेम में फर्क, तो वह पिता का प्रेम नहीं है। हालत तो उलटी है। अक्सर ऐसा होता है कि कपूत बेटे के प्रति पिता का ज्यादा प्रेम और ज्यादा लगाव होता है।
जीसस की दूसरी कहानी है; कि एक बाप के दो बेटे थे। छोटा बेटा उपद्रवी था, लंपट था। उसने आधी संपत्ति ले ली और शहर चला गया गांव छोड़ कर। वहां उसने संपत्ति बरबाद कर दी जुए में, शराब में, स्त्रियों में। भिखारी हो गया, दर-दर भीख मांगने लगा।

बड़ा बेटा बाप के पास रहा। उसकी खेती में, उसके बगीचों में काम किया, मेहनत की। बाप बूढ़ा था। जो संपत्ति उसे मिली भी, उसकी उसने चारगुनी, पांचगुनी कर दी।
फिर एक दिन भीख मांगते छोटे बेटे को याद आई, कि मैं भीख मांग रहा हूं। ऐसे न मालूम कितने भिखारियों को मेरे पिता रोज भीख देते हैं। मैं जिनसे भीख मांग रहा हूं, ऐसे लोग मेरे पिता के खेत पर काम करने आते हैं, नौकर-चाकर हैं। क्या मेरे पिता मुझे क्षमा न कर सकेंगे? एक दफा कोशिश कर लेनी उचित है।
उसने खबर भेजी कि वह वापस आना चाहता है। पिता ने बड़ा स्वागत समारंभ किया। सारे गांव को भोज पर निमंत्रित किया। पुरानी से पुरानी शराब तलघरों से निकलवाई। मोटी से मोटी भेड़ काटने की आज्ञा दी। घर में दीये जलाए, सुगंध छिड़की गई, बैंड-बाजे बजाए, फूल-हार लटकाए। बेटा लौट रहा है। बाप बड़ा प्रसन्न था।
किसी ने जाकर बड़े बेटे को खेत में खबर दी, जो अब भी वहां मेहनत कर रहा था, कि तुम्हें पता है, घर पर क्या हो रहा है? अन्याय हो रहा है। तुम्हारा छोटा भाई लौट रहा है लंपट आवारा! सब बरबाद करके, सब प्रतिष्ठा खो कर। और बाप उसके स्वागत का समारंभ कर रहा है। फूलबत्ती जलाई जा रही है, दीप सजाए जा रहे हैं, सारे गांव को निमंत्रण मिला है। पुरानी से पुरानी शराब निकाली गई है। मोटी से मोटी भेड़ को काटने की आज्ञा दी गई है। और तुमने सदा बाप की सेवा की है, और कभी तुम्हारे लिए ऐसा समारंभ न हुआ? कोई उत्सव न हुआ? यह अन्याय है।
बड़े बेटे को भी लगा, यह अन्याय है। वह बड़े क्रोध में बगीचे से वापस लौटा। यह सब देख कर, वह तो हैरान हो गया। उसने बाप से कहा कि आप मेरे साथ क्या कर रहे हैं? मेरे लिए कभी दीये न जले, मेरे लिए कभी भोज न दिया गया। और मैं सदा से तुम्हारे चरणों की सेवा कर रहा हूं। और ये दीये उसके लिए जल रहे हैं, जिसने तुम्हारी आधी संपदा बरबाद कर दी और तुम्हारे नाम को कालिख लगा दी।
बाप ने कहाः तू तो मेरे पास ही है सदा। तेरे लिए अलग से स्वागत की कोई जरूरत नहीं। तू तो मेरे हृदय के पास है। लेकिन जो भटक गया है और वापस आ रहा है--स्वागत के बिना ठीक से वापसी न हो सकेगी। हम उसे स्वागत न देंगे, तो उसे लगेगा कि हमने स्वीकार नहीं किया, अंगीकार नहीं किया। तू तो मेरा ही है। तू कभी दूर ही न गया। लेकिन उसके लिए स्वागत की जरूरत है, ताकि उसका आत्म-गौरव वापस लौट आए।
जैसे जीसस कहते हैं परमात्मा पुण्यात्माओं के लिए शायद स्वागत-समारंभ न भी दे, लेकिन जिन्होंने अपने अवगुण स्वीकार कर लिए हैं और जिन्होंने प्रार्थना भेजी है, कि हम वापस लौट आना चाहते हैं, उनके लिए बड़ा स्वागत-समारंभ रचा जाता है।
जीसस ने कहा है, जैसे गड़ेरिया अगर उसकी एक भेड़ खो जाए तो अपनी सौ भेड़ों
को अंधेरी रात में, अकेले पहाड़ पर छोड़ कर खोई भेड़ को खोजने निकल जाता है। और जब भेड़ मिल जाती है तो उसे कंधे पर लेकर लौटता है और बड़ा खुश होता है। और जो भेड़ें सदा उसके पास थीं, उन्हें कभी कंधे पर लेकर नहीं चला और न कभी प्रसन्न हुआ। कोई जरूरत ही न थी।
भक्त की धारणा यह है कि अगर तुम अपने हृदय को पूरा परमात्मा के सामने खोल दो; अपने पाप को, अपने अफराध को, अपनी दीनता को, दरिद्रता को--वही खोल देना, वही कनफेशन, वही स्वीकारोक्ति उसके हाथ का तुम्हारे तरफ बढ़ने का उपाय हो जाएगा।
तुम उससे भटक गए हो, वह भी तुम्हें खोज रहा है। उसका हाथ भी अंधेरे में तुम्हें टटोल रहा है। तुम अकेले ही नहीं खोज रहे हो, अस्तित्व भी तुम्हें खोज रहा है। अगर तुम अकेले ही खोज रहे हो और अस्तित्व बिल्कुल निरपेक्ष है, तो खोज पाकर भी क्या समाधि घटित होगी? खोज पाकर, घर लौट कर भी अगर वहां कोई दीये जलते न मिले, कोई स्वागत न मिले, कोई स्वागत-समारंभ न हुआ, तो घर आना भी क्या घर आना होगा? फिर धर्मशाला और घर में क्या फर्क होगा?

नहीं, अस्तित्व भी खोज रहा है। ईसाइयत की बड़ी से बड़ी देन दुनिया को एक
ही है, कि मनुष्य ही परमात्मा को नहीं खोज रहा है, परमात्मा भी मनुष्य को खोज रहा है। उसका हाथ भी तुम्हें टटोल रहा है।
"जे मैं पूत कपूत हों, तउ पिता को लाज।
मन परतीत न प्रेम रस"--
न तो कोई प्रतीति है मन में; कोई अनुभव नहीं। न कोई प्रेम का रस है।
"ना कछु तन में ढंग"--न शरीर ही कोई ढंग का है। किस मुंह से तेरे सामने आऊं? किस हिम्मत से तेरे द्वार को खटखटाऊं? किस आधार पर पुकारूं, चिल्लाऊं तुझे? किस पात्रता पर दावा करूं?
"मन परतीत न प्रेम रस, ना कछु तन में ढंग।
ना जानौ उस पीव को, क्यों कर रहसी रंग।।"
और न कभी तुझे देखा, न कभी तुझे जाना। प्यारे से कभी पहचान ही न हुई।
उस प्रियतम से कभी मिलना ही न हुआ।
"ना जानौ उस पीव को, क्यों कर रहसी रंग।"
तो कैसे समझूं कि कौन सा रंग, कौन सा रहस्य, कौन सा रास, कौन सा आनंद घटित होगा तेरे द्वार पर? कैसी तैयारी करूं? किस रंग में अपने को रंगू? " किस रहस्य में डुबाऊं? तेरे द्वार पर कौन स्वीकृत होता है, कैसे मुझे पता चले?
"ना जानौ उस पीव को, क्यों कर रहसी रंग।"
तो किस भांति नाचूं, कौन सा गीत गाऊं? कौन से वाद्य तुझे प्रिय हैं? कौन सा रंग, कौन सा रास? कुछ भी तो पता नहीं है।
"मन परतीत न प्रेम रस, ना कछु तन में ढंग।
ना जानौ उस पीव को, क्यों कर रहसी रंग।।
मेरा मुझमें कुछ नहीं, जो कछु है सो तोर।
तेरा तुझको सौंपते क्या लागत है मोर।।"
भक्त का यही भाव है, कि अगर मेरा मुझमें कुछ है, तो वे सब दुर्गुण हैं।
अगर मेरा मुझमें कुछ है, तो वह सब अंधकार है। अगर मेरा मुझमें कुछ है, तो वे सब बीमारियां हैं, उपाधियां हैं। उनकी तो तुझसे बात भी क्या करें! उनसे तो कोई पात्रता बनती नहीं, न मेरी कोई योग्यता सम्हलती है, न मेरा दावा निर्मित होता है।
और तू कैसा है, तेरी क्या पसंद है, क्या लेकर तेरे द्वार पर आऊं? कैसे चेहरे तुझे प्रिय हैं? कैसी आंखें तुझे प्यारी लगती हैं? कैसे हृदय को तू हृदय लगा लेता है? तेरा ही पता नहीं है; तो मैं तेरे द्वार पर गलत ही पहुंचूंगा। ठीक पहुंचने का उपाय कहां है?
तो गलत तो मुझमें बहुत है, भक्त कहता है। और जो कुछ ठीक हो, उसका मैं क्या दावा करूं?
"मेरा मुझमें कुछ नहीं... "
अगर कुछ ठीक हो, तो वह तेरी सुगंध है, तेरा दान है, वह तेरी जीवन-धार है। तू ही है।
"मेरा मुझमें कुछ नहीं, जो कछु है सो तोर।"
कुछ भी अगर कहने योग्य हो, प्रशंसा योग्य हो, तो वह तेरा है। और समर्पण करने में मुझे अड़चन क्या?
"तेरा तुझको सौंपते"--तेरा ही तुझे सौंप रहा हूं।"
क्या लागत है मोर?
मेरा लगता ही क्या है? मेरा खर्च ही क्या हो रहा है?
लोग परमात्मा पर समर्पण भी करते हैं तो ऐसे, जैसे कोई एहसान करते हैं। कभी-कभी मेरे पास लोग आ जाते हैं। वे कहते हैं कि हमने तय कर लिया कि अब सब आप ही समर्पण करते हैं। लेकिन वे इस ढंग से कहते हैं, कि जैसे कोई बहुत बड़ा एहसान कर रहे हैं किसी पर।
समर्पण तो तुम तभी कर पाओगे जब तुम समझोगे, कि तुम्हारे पास समर्पण करने योग्य कुछ भी तो नहीं है। है क्या, जिसको तुम समर्पण कर रहे हो? था क्या, जिसको तुम समर्पण करने ले आए हो? कुछ भी तो नहीं है।

और फिर परमात्मा के द्वार पर तो एक ही बात हो सकती है। वह कबीर ठीक कह रहे हैं।
"मेरा मुझमें कुछ नहीं, जो कछु है सो तोर।
तेरा तुझको सौंपते, क्या लागत है मोर।।"
यही समर्पण का भाव है।
दो बातें, दो शब्द तुम याद रख लो--एक है अहंकार और दूसरा है समर्पण।
अहंकार यानी संसार, समर्पण यानी मुक्ति। अहंकार यानी तुम, और समर्पण यानी परमात्मा। अहंकार यानी नरक, समर्पण यानी स्वर्ग।
छोड़ दो अपने को उस के हाथ में। नदी बही ही जा रही है सागर की तरफ। तुम नाहक ही तैरने की कोशिश कर रहे हो। छोड़ दो नदी में। तैरने की भी जरूरत नहीं है। निवेदन कर दो, कि जैसा हूं, मुझे स्वीकार कर लो। और अन्यथा होना मैं जानता भी कहां हूं?
और मैं तुमसे कहता हूं, जिस दिन तुम ऐसा कर पाओगे, उसी क्षण अन्यथा हो जाओगे। जिस क्षण तुम कह सकोगे, कि मेरे पास है ही क्या, जो तुझे दूं? जो है, तेरा ही है। समर्पण भी किस मुंह से करूं? किसका करूं? अपना कुछ होता तो समर्पण की अकड़ भी बचती। तेरा ही तुझे लौटाता हूं। तुझसे ही जो आया वह तुझे ही मे वापस लौटता है। तेरी ही जलधार तेरे सागर में वापस गिरती है; इसमें क्या गौरव है? क्या गरिमा है?
तू अंगीकार कर ले, इतना ही काफी है। क्योंकि राह में बहुत धूल, कूड़ा, कचरा, मिट्टी मैंने इकट्ठी कर ली। तेरी जलधार उतनी शुद्ध नहीं है, जितनी तूने भेजी थी।
आकाश में बादल घिरते हैं, मेघों से जल बरसता है शुद्ध, फिर जमीन पर आता है। जमीन पर आते-आते ही अशुद्ध होने लगता है। हवाओं में धूल-कण हैं, जल की बूंदें पकड़ लेती हैं। फिर मिट्टी पर गिरता है, फिर सब तरह की गंदगी पकड़ लेती है। सब तरह का स्थूल पदार्थ का जगत जल को ओतप्रोत कर लेता है। फिर बहता है सागर की तरफ।
जैसे-जैसे बहता है, गांव की, नगरों की, शहरों की गंदगी मिलती चली जाती है। शुद्ध जल तो परमात्मा का है; वह जो मेघ से घिरा था। लेकिन बाकी जो राह में गंदगी इकट्ठी कर ली है, वह तुम्हारी है।
और जब वापस नदी सागर में गिरेगी तो किस मुंह से तुम कहोगे समर्पण करता हूं? तब तुम यही कहोगे, जो कबीर कहते हैं--
"सुरति करौ मेरे सांइयां, हम हैं भवजल मांहि।
आपे ही बहि जाएंगे, जे नहिं पकरौ बांहि।।
अवगुण मेरे बापजी, बकस गरीब निवाज।
जे मैं पूत कपूत हों, तउ पिता को लाज।।
मन परतीत न प्रेम रस, ना कछु तन में ढंग।
ना जानौ उस पीव को, क्यों कर रहसी रंग।।
मेरा मुझमें कुछ नहीं, जो कछु है सो तोर।
तेरा तुझको सौंपते, क्या लागत है मोर।।"
समर्पण की यह भाव-दशा है। दुर्गुण मेरे हैं, सदगुण तेरे हैं। दुर्गुण छोड़ना मुझे आता नहीं; नहीं तो छोड़ ही दिए होते। सदगुण पैदा करना मुझे आता नहीं; नहीं तो पैदा कर लिए होते।
तो अब सब छोड़ देता हूं। दुर्गुण, सदगुण--सब तेरे ही चरणों में रख देता हूं। तू ही सम्हाल ले। जो तुझे करना हो।
और यही रहस्य है जीवन का, कि जिस दिन कोई व्यक्ति परमात्मा में इस भांति समर्पित हो जाता है, सभी दुर्गुण अचानक सदगुण के लिए उपयोगी हो जाते हैं। अंधकार पृष्ठभूमि बन जाता है प्रकाश की। क्रोध रूपांतरित होकर करुणा बन जाता है। कामवासना उर्ध्वगमन करती है, ब्रह्मचर्य हो जाती है। मोह बदलता है ढंग, और प्रेम हो जाता है।
सब बदल जाता है। समर्पित करते ही, अहंकार के हटते ही, सागर में गिरते
ही सब शुद्ध हो जाता है।
फिर मेघ उठने लगते हैं सागर से परम शुद्ध होकर, फिर गंगोत्री पर बरसने
की तैयारी हो जाती है।

जीवन, चेष्टा नहीं है, समर्पण है। लेट-गो है; छोड़ देना है। जितना तुम लड़ोगे उतना ही तुम मुश्किल में पड़ोगे। अहंकार संघर्ष है, समर्पण असंघर्ष की दशा है।
पर तब सभी स्वीकार कर लेना है छोड़ कर। फिर जो उसकी मर्जी! जैसा वह रखे, जैसा वह चलाए, जहां वह ले जाए, जो वह करे।
अचानक तुम पाओगे, सब हलका हो गया। गरीब रखे तो गरीब; अमीर रखे तो अमीर। स्वर्ग ले जाए तो स्वर्ग; नरक ले जाए तो नरक।
जिस दिन तुमने सब उसके हाथ पर छोड़ दिया, उसका हाथ तत्क्षण तुम्हें सम्हाल लेता है। उसके हाथ का सवाल है। उसके हाथ में हाथ हो, तो नरक स्वर्ग हो जाता है। दुख सुख हो जाते हैं। पीड़ाएं बड़े अपूर्व आनंद में रूपांतरित हो जाती हैं। क्षुद्र विराट हो जाता है।
सीमा तो अहंकार की है, समर्पण की कोई सीमा नहीं। तत्क्षण, अहंकार के गिरते ही तुम असीम हो जाते हो।
अभी तक तुमने समझा था। तुम दीवाल में घिरे आंगन हो; अब तुम सब जानते हो तुम सब तरफ फैले आकाश हो।
"मेरा मुझमें कुछ नहीं, जो कछु है सो तोर।
तेरा तुझको सौंपते, क्या लागत है मोर।।"

आज इतना ही।

मेरा मुझमें कुछ नहीं
दसवां प्रवचन

सत्संग का संगीत

पहला प्रश्नः संत कबीर पर बोलते हुए आपने भक्ति को बहुत-बहुत महिमा दी। लेकिन कबीर की भक्ति तो जगह-जगह प्रार्थना करती मालूम होती है। यथा--"आपै ही बहि जाएंगे जो नहिं पकरौ बांहि।" और आपने प्रार्थना को भी ध्यान बना दिया है। आपकी भक्ति-साधना में प्रार्थना का क्या स्थान होगा?

ध्यान और प्रार्थना मार्ग की दृष्टि से तो बड़े भिन्न-भिन्न हैं; विपरीत भी। मंजिल की दृष्टि से एक हैं। प्रस्थान के बिंदु पर तो बड़ा भेद है, लेकिन पहुंचने की जगह बिल्कुल एक है।
ध्यान की यात्रा शुरू होती है विचार को निर्विचार करने से। उसका केंद्र मस्तिष्क है, मन है। साधारण मन की अवस्था है, विचारों के ऊहापोह से भरे रहना। विचारों की भीड़ चलती है। रास्ता भरा है मन का; भीड़ ही भीड़ है विचारों की। न सोते, न जागते रुकती है; चलती ही रहती है।
इस धारा को तोड़ देने का नाम ध्यान है। जब रास्ता खाली हो जाता है, कोई ट्रैफिक नहीं, विचार के यात्री आते-जाते नहीं, सुनसान पड़ जाता है--रात, जैसे आधी रात रास्ते पर कोई भी न हो, ऐसी चित्त की निर्विचार दशा का नाम ध्यान है।
भक्ति का स्रोत और प्रारंभ और प्रस्थान-बिंदु हृदय है। वह मस्तिष्क
से शुरू नहीं होती, हृदय से शुरू होती है। विचार से शुरू नहीं होती, प्रेम से शुरू होती है।
दोनों अलग जगह से चलते हैं। साधारणतः प्रेम किसी के प्रति होता है: पत्नी के प्रति, पति के प्रति, बच्चों के प्रति, धन के प्रति। प्रेम का कोई ऑब्जेक्ट, कोई विषय-वस्तु होती है।
जब तक प्रेम की कोई विषय-वस्तु है, तब तक प्रेम का नाम है राग। और जब प्रेम समष्टि के प्रति होता है, सर्व के प्रति होता है, अस्तित्व के प्रति होता है, तब उस प्रेम का नाम है भक्ति।
परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है, परमात्मा समष्टि है। परमात्मा का अर्थ है, जो है, सब उसका जोड़। तो जब प्रेम एक के प्रति प्रवाहित नहीं होता, वरन सबके प्रति प्रवाहित होता है, अशेष भाव से बहता है, बेशर्त बहता है, तब भक्ति।
जैसे ही प्रेम अशेष भाव से बहने लगता है, विचार अपने आप बंद होने लगते हैं। क्योंकि जहां राग छूटा, वहां विचार की जड़ कटनी शुरू हो जाती है।
तुम विचार करते हो, क्योंकि तुम्हारा कहीं राग है। जहां राग है, उसी
का तुम विचार करते हो। अगर तुम्हारा राग कामवासना में है, तो काम के विचार आते हैं। अगर तुम्हारा राग महत्वाकांक्षा में है, तो महत्वाकांक्षा के विचार आते हैं। अगर तुम बहुत बड़े धन का संग्रह कर लेना चाहते हो, तो धन ही धन के विचार आते हैं। अगर तुम भूखे हो, तो भोजन ही भोजन के विचार आते हैं। जहां भी तुम्हारा राग होता है, वहीं से विचार का झरना फूट पड़ता है। और
जब राग कोई भी नहीं रह जाता--परमात्मा का राग, विराग की दशा है। क्योंकि उसमें तुम किसी दिशा में जाते ही नहीं, सभी दिशाओं में जाते हो। कोई चुनाव नहीं रह जाता। तुम सिर्फ बहते हो, अनंत की तरफ। और सब रूपों में बहते हो। जैसे ही प्रार्थना बढ़नी शुरू होती है, वैसे ही वैसे विचार का स्रोत कट जाता है। निर्विचार अपने से सधता है।
या, अगर तुमने ध्यान से यात्रा शुरू की और विचार को काटना शुरू किया
तो जैसे-जैसे विचार कटेगा, वैसे-वैसे राग कटेगा। क्योंकि वे दोनों संयुक्त हैं। बिना राग के विचार नहीं होता, बिना विचार के राग नहीं हो सकता। और जब राग कटेगा तो तुम अचानक पाओगे, धीरे-धीरे-धीरे तुम्हारे प्रेम की विषयवस्तुएं खोने लगीं। तुम्हारा प्रेम अब सर्व के प्रति प्रवाहित होने लगा।

ध्यान जैसे-जैसे बढ़ता है, वैसे-वैसे प्रार्थना आविर्भूत होती है। जैसे-जैसे प्रार्थना बढ़ती है, ध्यान आविर्भूत होता है। और एक घड़ी आती है अंत में, जहां तय करना मुश्किल हो जाता है, कि यह प्रार्थना है या ध्यान! विचार शून्य हो जाते हैं दोनों में ही। और दोनों में ही प्रेम की अशेष धारा बहने लगती है। इसलिए अंतिम घड़ी में मंजिल पर भक्त और ध्यानी मिल जाते हैं। यात्रा में भेद हो सकता है, अंतिम पड़ाव बिल्कुल एक है।
जैसे कोई पहाड़ के शिखर पर चढ़ता हो--बहुत तरफ से चढ़ सकता है, लेकिन जब शिखर पर पहुंचेगा, तब मंजिल एक ही हो जाती है। कहीं से भी चढ़े, राह कोई भी रही, कोई फर्क नहीं पड़ता। गंतव्य एक है।
और दो तरह के व्यक्ति हैं संसार में। जैसे स्त्रियां हैं और पुरुष हैं, ऐसे ही भीतर के मनस में भी दो तरह के भेद हैं। ध्यानी हैं और प्रार्थी हैं। प्रार्थना स्त्रैण-चित्त का जोड़ है, ध्यान पुरुष-चित्त का। स्त्रैण-चित्त हृदय से ही यात्रा शुरू कर सकता है क्योंकि स्त्रैण-चित्त हृदय में ही वास करता है। जहां वास है, वहीं से तो चलोगे।
पुरुष-चित्त हृदय में वास नहीं करता, पुरुष-चित्त मन में वास करता है, मस्तिष्क में वास करता है। वहीं से तुम निकलोगे। यात्रा तो वहीं से होगी, जहां से तुम हो। तुम्हारे होने की जगह ही तो पहला कदम बनेगी।
मैं जब कहता हूं पुरुष-चित्त, स्त्री-चित्त; तो मेरा मतलब ऐसा नहीं है,
कि सभी स्त्रियों के पास स्त्री-चित्त है। ऐसी स्त्रियां हैं, जिनके पास पुरुष-चित्त है। नहीं तो मैडम क्यूरी कैसे पैदा हो? कैसे नोबल प्राइज ले सके?
ऐसे पुरुष हैं, जिनके पास स्त्रैण-चित्त है। नहीं तो चैतन्य महाप्रभु कैसे पैदा हों? चैतन्य को नाचते देख कर तुम्हें चैतन्य में और मीरा में रत्ती भर भी फर्क नहीं मालूम पड़ेगा। देह भला पुरुष की हो, अंतर्मन स्त्री का है।
नीत्शे ने बुद्ध और जीसस के विरोध में जो कुछ बातें कही हैं, उनमें एक बात--उसने तो विरोध में कही है, लेकिन मेरी दृष्टि से बिल्कुल ठीक है। वह यह है, कि उसने क्रोध में और खंडन में और निंदा में बुद्ध और जीसस को स्त्रैण कहा है--फैमिनिन। उसने तो नाराजगी में कहा है और उसने तो खंडन के लिए कहा है। और उसने तो कहा है, कि इन दो आदमियों ने सारी दुनिया को स्त्रैण बना दिया। लेकिन उसकी बात में थोड़ा सा सच है, थोड़ी सी सचाई है। पुरुष में स्त्रियां हो सकती हैं, स्त्रियों में पुरुष हो सकते हैं। तुम्हें अपना तय करना पड़ेगा, कि तुम्हारे जीवन की धारा अभी कहां है। तुम मस्तिष्क में जीते हो? सोच-विचार में; चिंतन-मनन में; तर्क में, वितर्क में; वाद-विवाद में; शास्त्र में; शब्द में? अगर तुम वहां जीते हो, तो वहीं से तुम्हें चलना पड़ेगा। हर्ज कुछ भी नहीं है। वहां से भी यात्रा हो सकती है।
अगर तुम प्रेम में जीते हो, संगीत में, काव्य में, गीत में, नृत्य में,
तो तुम्हारा हृदय संवेदनशील है। वहां से यात्रा होगी।
रवींद्रनाथ स्त्रैण चित्त के व्यक्ति हैं। तभी तो गीतांजलि जैसे महाकाव्य का आविर्भाव हो सका। इतना बड़ा काव्य मस्तिष्क से पैदा नहीं होता, हो ही नहीं सकता। मस्तिष्क बड़ा गणित पैदा कर सकता है, बड़ा काव्य नहीं। मस्तिष्क के पास उतना रस ही नहीं है। रूखा-सूखा हिसाब है। आइंस्टीन और रवींद्रनाथ की मुलाकात हुई थी। वह पुरुष चित्त और स्त्रैण चित्त का मिलन है। वह मुलाकात बड़ी मजेदार है। आइंस्टीन कुछ कहता है, रवींद्रनाथ कुछ कहते हैं। ये बातें करीब-करीब मालूम पड़ती हैं, फिर भी समानांतर चलती मालूम पड़ती हैं। जैसे समानांतर रेल की पटरियां चलती हैं; पास-पास होती हैं, मिलती कहीं नहीं। रवींद्रनाथ और आइंस्टीन की चर्चा वैसी है। बड़ा मधुर वार्तालाप है। क्योंकि उतने बड़े दो मनीषी मिले हैं, तो उसमें माधुर्य तो होगा। बड़ी मित्रता है, बड़ी आत्मीयता है, पर बड़ा फासला भी है। कोई विरोध भी नहीं है एक-दूसरे का। लेकिन अपनी-अपनी अभिव्यक्ति है; वह अभिव्यक्ति ही भिन्न है।

आइंस्टीन गणित का आदमी है--शिखर गणित का। रवींद्रनाथ हृदय के आदमी हैं--शिखर हैं वे भक्ति के। दोनों बहुत करीब-करीब खड़े हैं। ऐसा लगता है कि मिलने में देरी क्या है इनकी? लेकिन जैसे रेल की पटरियां दूर क्षितिज के पास मिलती मालूम पड़ती हैं, लेकिन फिर भी मिलती नहीं। जब तुम जाओगे चल कर, तब तुम पाओगे वहां भी नहीं मिलतीं; और आगे मिलती मालूम पड़ती हैं।
ऐसी लंबी चर्चा चलती है। घंटों रवींद्रनाथ और आइंस्टीन साथ-साथ रहे,
पर एक बिंदु पर भी कहीं मिलना नहीं होता। वह मिलना हो नहीं सकता। उनका प्रस्थान-बिंदु भिन्न है। एक हृदय की बात कर रहा है, एक विचार की बात कर रहा है। अब हृदय और विचार में इतना ही फासला है, जितना जमीन और आसमान में-- प्रस्थान बिंदु पर। अंतिम मंजिल में कोई फासला नहीं है।
तो कहां से तुम चलते हो यह सवाल नहीं है, असली सवाल यह है, कहां तुम पहुंचते हो। और इसलिए ठीक से निर्णय कर लेना कि तुम किस तरह के व्यक्ति हो। वहां अगर भूल हो गई तो तुम मंजिल पर कभी न पहुंच पाओगे। और बहुत कठिन है तय करना।
कठिन इसलिए है तय करना कि जो व्यक्ति मस्तिष्क में जीता है, वह मस्तिष्क से ही प्रेम भी करता है। वह प्रेम नहीं करता, वह प्रेम का भी विचार करता है। जब वह किसी के प्रेम में पड़ जाता है, तब भी वह सोचता है, कि मैं प्रेम में पड़ गया हूं। यह भी उसका सोच-विचार है।
और जब हृदय से भरा हुआ व्यक्ति गणित भी करता है, तब भी वह सोचता- विचारता नहीं। तब भी, गणित में भी उसका हृदय ही धड़कता है। वह हृदय से ही सोच-विचार भी करता है।
इसलिए बड़ी अड़चन है पहचान लेने में। और अगर संतों ने गुरु की इतनी महत्ता कही है, तो उसके बहुत बिंदु हैं गुरु की महत्ता के; उसमें एक प्राथमिक बिंदु यही है कि तुम शायद न पहचान पाओ कि तुम कहां खड़े हो; तुम शायद ठीक से निदान न कर पाओ अपनी जीवन-व्यवस्था का। और निदान अगर भूल हो जाए तो औषधि गलत हो जाएगी। निदान आधे से ज्यादा इलाज है, बाकी इलाज तो विस्तार की बात है। निदान ठीक से हो जाए कि तुम कहां हो, तो तुम्हें कहां जाना है, वह साफ हो जाए।
शायद गुरु ज्यादा गौर से तुम्हारे भीतर देख सके। वह मंजिल पर खड़ा है। उसे दोनों रास्ते दिखाई पड़ते हैं। वह गौरीशंकर पर खड़ा है। तुम पूरब से चढ़ो कि पश्चिम से; कि दक्षिण से आओ कि उत्तर से; चारों तरफ सब उसे दिखाई पड़ता है। उसकी दृष्टि विहंगम की दृष्टि है, पक्षी की दृष्टि है। वह ऊपर से देख रहा है। उसे सब दिखाई पड़ता है। तुम कहां हो, उसे दिखाई पड़ता है। क्योंकि उसे पूरा का पूरा परिप्रेक्ष्य साफ है। वह तुम्हें ठीक से पहचान लेगा, तुम कहां हो। और वहीं से चलना है, जहां तुम हो। अगर तुमने जरा भी समझ लिया कि तुम कहीं और हो, तो भटक जाओगे। क्योंकि वहां से तुम चलोगे कैसे, जहां तुम नहीं हो?
और गलत स्थान से यात्रा शुरू कर ली, तो वह मानसिक यात्रा होगी, वास्तविक नहीं हो सकती। तुम कभी भी पहुंच न पाओगे।
जैसा तुम चिकित्सक के पास जाते हो; माना कि बीमारी तुम्हें है, इसलिए कोई यह भी कह सकता है कि जिसको बीमारी है, वही ठीक निर्णायक हो सकता है। माना कि बीमारी तुम्हें है, लेकिन निर्णायक तुम ठीक नहीं हो सकते।
बड़े मजे की बात तो यह है कि कभी जब चिकित्सक भी बीमार पड़ जाता है, तो वह
भी दूसरे चिकित्सक के पास जाता है। अपनी बीमारी का निर्णय चिकित्सक भी नहीं कर पाता। क्योंकि तुम इतने करीब होते हो अपनी बीमारी के, फासला नहीं होता। थोड़ा फासला चाहिए। देखने के लिए, दर्शन के लिए थोड़ी दूरी चाहिए। और तुम अपनी बीमारी से इतने पीड़ित होते हो, कि तुम उस पीड़ा में निरीक्षक नहीं हो सकते।
इसलिए बड़े से बड़ा सर्जन भी अपना आपरेशन नहीं कर सकता। चाहे आपरेशन छोटा ही क्यों न हो। ऐसा भी क्यों न हो, जो किया जा सके। समझो, कि पैर का आपरेशन है, दोनों हाथ मुक्त हैं, पैर का आपरेशन खुद किया जा सकता है। लेकिन नहीं; बड़े से बड़ा सर्जन भी अपना आपरेशन नहीं करेगा। अपना तो दूर, अगर उसकी

पत्नी बीमार है तो उसका भी आपरेशन बड़ा सर्जन नहीं कर पाएगा; किसी और से करवाना पड़ेगा।
पत्नी से भी इतना लगाव है, इतना पास है पत्नी के, कि निरपेक्ष नहीं रह सकता। दूर खड़े होकर तटस्थ भाव से नहीं देख सकता। इतना उत्सुक है ठीक करने में, वह उत्सुकता ही बाधा बन जाएगी। इतनी आशा से भरा है कि ठीक हो ही जाएगी, वही आशा हाथों को कंपा देगी। इतनी चाह है भीतर कि पत्नी बच जाए, वही चाह जहर बन जाएगी।
कोई चाहिए, जिसको न फिकर है बचने की, न मरने की। बचे तो ठीक, न बचे तो ठीक। जैसे इससे कुछ लेना-देना ही नहीं है। जैसे भविष्य का कोई सवाल ही नहीं है। जैसे इस स्त्री में तो कोई उत्सुकता ही नहीं है। जिसे सारी उत्सुकता अपनी कुशलता में है कि वह कैसे इसका आपरेशन करता है; जिसके लिए आपरेशन एक कला है। दूसरी तरफ कोई जीवित व्यक्ति है, इसका भी उसे हिसाब नहीं है।
मैंने सुना है कि एक बार एक मरीज एक चिकित्सक के पास आया। मरीज ऐसा था,
कि वैसी बीमारी कभी करोड़ में एक आदमी को होती है। एक खास ढंग का ट्यूमर था उसके पेट में। चिकित्सक ने उसका पेट काटा, ट्यूमर निकाला और कहते हैं, चिकित्सक नाचने लगा। उसने कहाः हाउ ब्यूटिफूल!
वह जो ट्यूमर था, वह जो रोग की गांठ थी, उसको निकाल कर वह नाचा और उसने कहाः कैसा सुंदर है! क्योंकि कभी करोड़ों में एक--जैसा कोहिनूर हीरा होता है, ऐसा वह ट्यूमर है। कभी करोड़ों में एक आदमी होता है वैसी बीमारी। और कभी हजारों में एक चिकित्सक को मौका मिलता है उसका आपरेशन करने का।
तो बड़ी सुंदर चीज है। बीमार से उतना मतलब नहीं है उसे। वह जो टेबल पर पड़ा है, उस आदमी से मतलब नहीं है, उसे मतलब ट्यूमर से है। और सौभाग्यशाली है वह, कि उसे इस ट्यूमर को देखने का सौभाग्य मिल गया। ऐसा कभी-कभी किसी चिकित्सक को मिल पाता है।
अब तुम सोच ही नहीं सकते, कि ट्यूमर कैसे सुंदर हो सकता है! तुम्हारे पास चिकित्सक की आंख नहीं है। ट्यूमर और सुंदर! बात ही बेहूदी लगती है। लेकिन चिकित्सक दूर है। उसे बीमारी, और बीमारी को ठीक करने में ज्यादा रस है; बीमार से कोई प्रयोजन नहीं है।
यह बड़ा भारी फर्क है। जब तुम्हारी उत्सुकता बीमार में है, तब बीमार बीच में आ जाता है; बीमारी पीछे हो जाती है। तुम्हारे सामने बीमार है, उसके पीछे बीमारी है। और यह बीमार से तुम्हारा अगर रस बहुत है, अगर यह तुम्हारी प्रेयसी है और उससे तुम्हारा विवाह होने वाला है, तो तुम्हारे सब हाथ-पैर, रोएं-रोएं कंप जाएंगे। तुम कितने ही कुशल चिकित्सक होओ, सब कुशलता मिट्टी हो जाएगी। अगर यह तुम्हारा ही बेटा है, और मरने के करीब है, तो बीमारी पीछे हो जाएगी, बीमार आगे हो जाएगा।
जब कोई चिकित्सक बिना किसी संबंध के, राग के किसी की चिकित्सा करता है, तो बीमार पीछे होता है, बीमारी सामने होती है। बीमार से कोई लेना-देना नहीं होता। बीमारी और चिकित्सक का सीधा साक्षात्कार होता है। तभी कुछ वैज्ञानिक घटना घट सकती है, निदान हो सकता है।
गुरु की उत्सुकता चिकित्सक की उत्सुकता है। वह बीमारी को सामने रखता है, तुम को सामने नहीं। वह बीमारी को मिटा देने में उत्सुक है। तुम पीछे हो। तुम्हारे व्यक्तिगत लगाव, आसक्तियों का कोई मूल्य नहीं है। गुरु ठीक से देख पाता है कि तुम कहां हो। गुरु ठीक से तुम्हें चला पाता है। बड़ी कठिनाइयां इस संबंध में पैदा हुई हैं अतीत के इतिहास में।
बुद्ध ने--स्वभावतः वे पुरुष थे; जिस पद्धति और जिस साधना से जीवन-दृष्टि पाई, फिर उसी पद्धति को उन्होंने समझाना शुरू किया। हजारों लोग, लाखों लोग दीक्षित हुए, ज्ञान को उपलब्ध होने लगे। स्त्रियां भी उत्सुक हुईं, लेकिन बुद्ध स्त्रियों को दीक्षा नहीं देते। वे इनकार किए चले जाते। उस इनकार का कारण है। उस इनकार का बुनियादी कारण यही है, कि बुद्ध की सारी साधना-पद्धति पुरुष चित्त के लिए विकसित की गई है। और स्त्रियों को उस साधना-पद्धति में डालना, साधना पद्धति को भ्रष्ट करना होगा। स्त्रियां कहीं पहुंचेगी यह तो संदिग्ध है, लेकिन साधना-पद्धति भ्रष्ट हो जाएगी।

वे स्त्रियों को हटाते रहे। महावीर ने--उनके सामने भी वही सवाल था-- दूसरे ढंग से उसे हल किया। लेकिन मामला वही का वही है। महावीर ने स्त्रियों को नहीं हटाया। जब स्त्रियों ने मांगी दीक्षा, तो उन्होंने दी। लेकिन महावीर की जीवन पद्धति में, उन्होंने यह व्यवस्था की कि कोई भी स्त्री स्त्री रहते मुक्त नहीं हो सकेगी, मोक्ष नहीं पा सकेगी। पहले उसे पुरुष की तरह जन्म लेना पड़ेगा। पुरुष की पर्याय लेनी पड़ेगी।
तो इस जीवन की साधना इतना ही कर सकती है, कि अगले जीवन में वह पुरुष हो जाए और फिर वह मुक्त हो सकेगी। इसमें कोई स्त्रियों की निंदा नहीं है। इसमें कुल मामला इतना है कि महावीर की पद्धति तो बुद्ध से भी ज्यादा पुरुष की पद्धति है। बुद्ध की पद्धति में तो थोड़ी बहुत गुंजाइश भी हो सकती है स्त्री के लिए, महावीर की पद्धति में तो कोई गुंजाइश नहीं है। वह तो शुद्ध पुरुष की है, वह तो विशुद्ध ध्यान की है। और उस ध्यान के कारण उस पद्धति से जो चलेगा, उसमें स्त्री को पुरुष होकर ही मोक्ष मिल सकता है।
मुझसे लोग कभी पूछते हैं, कि क्या यह स्त्रियों का विरोध है? कुछ विरोध नहीं है। यह सिर्फ पद्धति है। इसका यह मतलब नहीं, कि कोई स्त्री रह कर मोक्ष को नहीं पा सकता; लेकिन महावीर की पद्धति से न पा सकेगा।
फिर उसको मीरा की राह पकड़नी पड़े, चैतन्य की राह पकड़नी पड़े, कृष्ण का मार्ग पकड़ना पड़े; लेकिन महावीर के मार्ग से न पाया जा सकेगा। महावीर के मार्ग से तो यही होगा, कि स्त्री पुरुष की तरह पैदा होगी और फिर मुक्त होगी।
तो जैन इतिहास में एक घटना है, जो बड़ी मधुर है। ऐसा कहते हैं, कि एक स्त्री तीर्थंकर हो गई। यह होना तो नहीं चाहिए था। अघट घटा। वह स्त्री पुरुष जैसे ही रही होगी। उसमें स्त्रैण तत्त्व नहीं रहा होगा, इसलिए घट गया।
मल्लीबाई नाम की एक स्त्री सीधे ही मोक्ष को उपलब्ध हो गई। जैनियों
ने उसका नाम ही बदल डाला। वे उसको मल्लीनाथ कहते हैं, मल्लीबाई ही नहीं कहते। क्योंकि उन्होंने कहा कि यह बात ही फिजूल है यह कहना कि यह स्त्री है। क्योंकि इसने तो सिद्ध ही कर दिया; इस की मुक्त दशा ने सिद्ध कर दिया कि यह पुरुष है। इसके शरीर की हम फिकर नहीं करते। इसलिए उन्होंने उसको मल्लीबाई कहा ही नहीं। उसका नाम ही मल्लीनाथ कर दिया। वह भी चौबीस तीर्थंकरों में पुरुष की ही तरह स्वीकृत हो गई, स्त्री की तरह स्वीकृत नहीं रही।
वह अपवाद था, लेकिन यह हो सकता है। अब पश्चिम में विज्ञान जानता है कि कभी-कभी किसी स्त्री का शरीर पुरुष के शरीर में रूपांतरित हो जाता है; हार्मोन बदल जाते हैं। कभी-कभी हार्मोन की मात्रा बिल्कुल करीब होती है। जैसे समझो कि इक्यावन प्रतिशत हार्मोन पुरुष के हैं और उनचास प्रतिशत हार्मोन स्त्री के हैं, तो इस व्यक्ति में स्त्री और पुरुष के बीच बस, जरा सा ही फासला है। किसी बीमारी में हार्मोन बदल जाएं, या इंजेक्शन और दवाओं से हार्मोन बदल जाएं और स्त्री-तत्त्व की मात्रा बढ़ जाए तो यह पुरुष स्त्री हो जाए, या स्त्री पुरुष हो जाए। बहुत से रूपांतरण हुए हैं।
मुझे लगता है मल्लीबाई इसी तरह की घटना रही होगी। उसके भीतर करीब-करीब पचास-पचास प्रतिशत पुरुष-स्त्री तत्व समतुल रहे होंगे। और वह पुरुष के मार्ग से मोक्ष को उपलब्ध हो गई। ठीक ही किया जैनों ने, कि उसका नाम बदल दिया। क्योंकि उससे व्यर्थ अपवाद के कारण अड़चन आती।
जैन विचार-पद्धति में स्त्री का सीधा मोक्ष नहीं हो सकता, यह मैं भी कहता हूं। मैं यह नहीं कहता कि स्त्री का सीधा मोक्ष हो ही नहीं सकता; जैन पद्धति में नहीं हो सकता। वह सारी की सारी पद्धति ध्यान की है। प्रार्थना की उसमें कोई जगह नहीं है। प्रार्थना का वहां कोई अर्थ नहीं है।
महावीर कहते हैं, किससे प्रार्थना करते हो? किसकी प्रार्थना करते हो? प्रार्थना से कुछ न होगा, ध्यान में उतरो। चुप होओ, मौन बनो, भीतर जाओ। ये हाथ किसके लिए जोड़े हुए हैं? वहां कोई भी नहीं है, जिसके लिए तुम हाथ जोड़ रहे हो।

अत्यंत एकांत! अत्यंत शांत! इसलिए महावीर ने अपनी परम-ज्ञान की अवस्था को कैवल्य कहा है, जहां केवल तुम रह गए; जहां बस तुम्हारी चेतना बची। वह समाधि की आखिरी अवस्था है।
लेकिन मीरा है, चैतन्य है, वे भी पहुंच जाते हैं। वे नाचते हुए पहुंचते हैं, गीत गाते हुए पहुंचते हैं, परमात्मा के रंग में डूबे हुए पहुंचते हैं। इनका पहुंचने का ढंग दूसरा है। ये प्रेम से पहुंचते हैं, ध्यान से नहीं।
ये इतनी प्रार्थना करते हैं--इसे थोड़ा समझना; बारीक है। ये इतनी प्रार्थना करते हैं, इतनी प्रार्थना करते हैं कि प्रार्थना करने वाला मिट जाता है। बस, प्रार्थना सुनने वाला ही रह जाता है। ध्यानी में परमात्मा मिट जाता है, आत्मा रह जाती है। प्रेमी में आत्मा मिट जाती है, परमात्मा रह जाता है। दोनों में एक बचता है। "एक" उपलब्धि है। अद्वैत बचता है।
लेकिन ध्यानी "तू" को काट देता है। प्रेमी "मैं" को काट देता है।
ध्यानी की सारी चेष्टा है, कि "मैं" अलग, पृथक, भिन्न कैसे हो जाउं। इसलिए महावीर के शास्त्र का एक नाम है भेद-विज्ञान कि कैसे तुम भिन्न हो जाओ।
वही तो सारा धर्म है: अलग हो जाओ सब से। बस, तुम ही बचो; वहां कोई भी न बचे।
तुम्हारे उस परम एकांत में ही खिलेगा फूल चैतन्य का। तुम मुक्त हो जाओगे।
भक्त कहते हैं, ऐसी घड़ी, जहां हम न बचे, तू ही बचे। जहां हम बिल्कुल पुछ जाएं। हमारा कोई होना न हो, ख्ल्लाज खबर न मिले। हमारा कोई पता ही न चले।
हम ऐसे हो जाएं, जैसे कभी थे ही न--शून्यवत! बस, तू ही हो।
जहां मैं कट जाता है पूरा, और परमात्मा ही शेष रह जाता है, वहां भी मोक्ष हो जाता है। मोक्ष होता है एक के बचने से। न तो मैं का सवाल है, न तू का सवाल है। ये तो दो ढंग हैं। मोक्ष मिलता है अद्वैत के बचने से। कौन बचता है, उसको तुम मैं का नाम देते हो या तू का, यह तो सिर्फ भाषा की बात है। तुम उसे आत्मा कहते हो या परमात्मा, यह तो सिर्फ भाषा की बात है। तुम उसे बाहर देखते हो कि भीतर, यह तो सिर्फ देखने की बात है। क्योंकि भीतर भी वही है, बाहर भी वही है।
प्रार्थना है भाव-दशा, ध्यान है चित्त-दशा। समाधि में दोनों एक हो जाते हैं।
लेकिन थोड़ा सा फर्क अभिव्यक्ति में तब भी बाकी रहेगा। जो व्यक्ति ध्यान से गया है, वह जब समाधिस्थ हो जाएगा, जब उसे यह भी अनुभव हो जाएगा, कि प्रेमी भी यहीं पहुंच गए; तब भी उसमें एक थोड़ा सा फर्क रहेगा। वह शांत ही रहेगा। तुम उसे बुद्ध की तरह वृक्ष के नीचे शांत बैठा देखोगे तुम उसे महावीर की तरह जंगलों में शांत खड़ा हुआ पाओगे।
क्योंकि जीवन की उसने जो पद्धति अपनाई थी, जो ढंग अपनाया था, वह उसका व्यक्तित्व बन गया है। भीतर वह जानता है कि प्रेमी भी पहुंच जाते हैं, क्योंकि प्रेमी भी पहुंच रहे हैं। लेकिन अब अपने ढंग को नहीं बदला जा सकता। जिस रास्ते से तुम गुजरते हो, वह रास्ता तुम्हें भी बनाता है।
जैसे समझो, कि तुम एक मार्ग से गुजरे, जिस पर लाल मिट्टी थी और उसने तुम्हें लाल कर दिया। जब तुम मंजिल पर पहुंचे तो तुम लाल ढंग से रंगे हुए पहुंचे। एक दूसरा आदमी ऐसे रास्ते से गुजरा, जहां लाल मिट्टी नहीं थी। वह अपने सफेद कपड़ों को बचा कर पहुंच गया।
तुम दोनों मंजिल पर पहुंच गए, लेकिन बाहर का ढंग रास्ते ने तय कर दिया। जीवन की शैली रास्ता बनाता है। जीवन की आखिरी अनुभूति तो भीतर होती है, लेकिन जीवन का ढंग और शैली रास्ते से बनती है। अब बुद्ध जहां से पहुंचे हैं चल कर, वह खोल बन गई है उनके व्यक्तित्व की। अगर बुद्ध नाचना भी चाहें आज अचानक, तो पैर न उठेंगे। आज गीत गाना चाहें, तो कंठ में स्वर न फूटेगा। आज हाथ में बांसुरी भी आ जाए, तो वे उलट-पुलट कर देखेंगे; समझ न पाएंगे, इसका क्या करना। उत्सव न मना सकेंगे। उनका उत्सव भी मौन होगा, शांत होगा। जो नाचते ही पहुंचा है, गीत गाते ही पहुंचा है, पैर में घूंघर बांध कर पहुंचा है, तो परमात्मा की पूजा और प्रार्थना करते पहुंचा है, वह भी जान लेगा पहुंच कर, कि जो चुपचाप आए हैं, वे भी पहुंच गए हैं। लेकिन अब जीवन की शैली निर्णीत हो गई।

तुम मीरा को वृक्ष के नीचे बुद्ध की तरह शांत न बिठा सकोगे। वह बात जमेगी ही न। वह जीवन की पद्धति बन गई। पहुंचते-पहुंचते-पहुंचते, साधन करते-करते अब नाचना ही सोहता है।
बहुत कठिन है, जो कहीं भी नहीं पहुंचे हैं, उनके लिए जानना कि नाचती हुई मीरा के भीतर वैसी ही शांति है, जैसी बुद्ध के भीतर। शांत बैठे बुद्ध के भीतर वैसा ही नृत्य है, जैसा मीरा के भीतर। लेकिन दोनों का बाहर का रूप अलग-अलग होगा। और इस कारण दुनिया के धर्मों में बड़ा विवाद चलता है। व्यर्थ है विवाद जो चलाते हैं उन्हें कोई अनुभव नहीं है, उन्हें स्वाद नहीं है। जिन्होंने जाना है, उन्होंने दूसरे में भी सत्य को देख लिया। लेकिन दूसरे में सत्य को देख लेना ही काफी नहीं है। फिर भी हो सकता है बुद्ध यही कहे चले जाएं, कि ध्यान से ही पहुंचोगे। क्योंकि बुद्ध को वह रास्ता जाना- माना है, पहचाना हुआ है। और अगर वे कहें कि प्रार्थना से भी पहुंच सकते हो, तो उन्हें लगेगा, कहीं आदमी भटक न जाए।
तुम जिस रास्ते से आते हो उसी से मार्गदर्शन दूसरे को दे सकते हो। इसलिए अगर कोई बुद्ध से पूछेगा भी कि प्रार्थना? वे कहेंगे, छोड़ो। ध्यान से ही कोई पहुंचता है। जानते हुए कि प्रार्थना से भी लोग पहुंच गए हैं। लेकिन बुद्ध को वह रास्ता अपरिचित है।
मार्गदर्शन तो उसी का दिया जा सकता है, जिस पर वे चले हों। ऐसे बहुत थोड़े लोग संसार में हुए हैं, जो दोनों रास्तों से चले हैं। जो दोनों से चले हैं, वे दोनों पर मार्गदर्शन दे सकते हैं। अन्यथा गुरु एक मार्ग से चल कर पहुंच जाता है; फिर जरूरत भी नहीं रहती कि दूसरे मार्ग पर चल कर देखे। रामकृष्ण ने एक अनूठा प्रयोग इस सदी के प्रारंभ में किया--पिछली सदी
के अंत में; कि पहुंचने के बाद उन्होंने दूसरे मार्गों पर भी चल कर देखा, कि वहां से भी कोई पहुंचता है कि नहीं? समाधिस्थ हो जाने के बाद। यह पहली ही घटना है मनुष्य-जाति के इतिहास में। इसलिए रामकृष्ण बड़े अनूठे हैं। उनका अनूठापन इसमें है।
यह बात ही व्यर्थ लगती हैः जब तुम स्टेशन पहुंच गए, तब लौट कर गांव में जाना और यह देखना कि दूसरे रास्ते से भी पहुंच सकते हैं कि नहीं। बात ही फिजूल लगती है। स्टेशन आ गया, बात खत्म हो गई। प्यास लगी थी, नदी आई, पानी पी लो। अब इसमें क्या पड़ी है कि तुम गांव में फिर जाओ और देखो कि दूसरे रास्तों से भी पहुंचना होता है कि नहीं?
रामकृष्ण ने पहली दफा प्रयोग किए। रामकृष्ण सर्वधर्म समभाव के पहले प्रतीक हैं। और सभी धर्म पहुंचा देते हैं, इसका पहला प्रयोग है। अनुभव हो जाने के बाद उन्होंने दूसरी साधनाएं कीं। इस्लाम की साधना की, ईसाइयत की साधना की, तंत्र की साधना की--जानने के लिए, कि क्या पहुंचना हो जाता है? निश्चित ही जो पहुंच चुका है एक दफा, उसे देर नहीं लगती है फिर दूसरे मार्ग से भी पहुंचने में। उसे पता तो है ही मंजिल का। अब यह तो खेल हो जाता है। जो एक सीढ़ी से चढ़ गया मंजिल पर, चढ़ने की कठिनाई तो समाप्त हो गई, चढ़ना तो उसे आ ही गया। अब तुम सीढ़ी दूसरी रख दो, इससे कोई बहुत अड़चन थोड़े ही पड़ती है! चढ़ना तो उसे आता ही है।
रंग अलग होगा सीढ़ी का, पायदान थोड़े बड़े-छोटे होंगे, किसी और कारखाने में ढली होगी, लोहे की होगी, लकड़ी की होगी, प्लास्टिक की होगी--कुछ हजार फर्क होंगे, लेकिन जो चढ़ना जानता है और एक दफा चढ़ गया शिखर तक, वह घड़ी भर में दूसरी से भी चढ़ जाएगा।
रामकृष्ण ने जब इस्लाम की साधना की तो वे तीन दिन में वहीं पहुंच गए, जहां पहुंचने में जनम-जनम लगे थे उनको पहली यात्रा से। जब उन्होंने ध्यान की साधना की बुद्ध के मार्ग पर, तो वे छह महीने में वहीं पहुंच गए।
अब यह थोड़ा सोचने जैसा है, कि बुद्ध के मार्ग पर उनको छह महीने लगे, इस्लाम के मार्ग पर तीन दिन लगे; मामला क्या है?
मामला यह है, कि रामकृष्ण की जो पहुंचने की व्यवस्था थी, वह स्त्रैण थी; वह प्रार्थना का मार्ग था। इस्लाम का भी मार्ग प्रार्थना का है। इसलिए हिंदू धर्म में, इस्लाम धर्म में उतना फासला नहीं है, जितना हिंदू धर्म और बौद्ध धर्म में फासला है। हिंदू धर्म और इस्लाम तो एक से हैं। उनमें

गुणधर्म का कोई फासला ही नहीं है। मंदिर, मसजिद बिल्कुल करीब हैं। क्योंकि दोनों ही प्रार्थना पर आधारित धर्म हैं। अब यह जान कर तुम्हें हैरानी होगी। साधारणतः हम सोचते हैं कि जैन, बौद्ध और हिंदू ज्यादा करीब हैं क्योंकि हिंदुओं से ही तीनों पैदा हुए हैं। वह बात गलत है। ईसाई ज्यादा करीब हैं हिंदुओं के। मुसलमान ज्यादा करीब हैं। जैन और बौद्ध बहुत फासले पर हैं। क्योंकि ये सब मार्ग हृदय के हैं। जैन और बौद्ध मार्ग ध्यान के हैं, प्रेम के नहीं हैं।
तो रामकृष्ण को छह महीने लगे ध्यान से पहुंचने में। प्रार्थना से तो
वह पहुंच चुके थे। यह सीढ़ी जरा बड़ी टेड़ी-मेढ़ी थी उनके लिए। बड़ी रस शून्य थी। यह रास्ता बड़ा सूखा था, निर्जन था। वे नाचते हुए पहुंचे थे, गीत गाते हुए पहुंचे थे। यहां चुपचाप पहुंचना था। वह बिल्कुल उलटा था मामला। पहले जब पहुंचे थे, तब अपने को मिटा कर पहुंचे थे, परमात्मा को बना कर पहुंचे थे। अब अपने को बनाना था और परमात्मा को मिटाना था। यह बड़ा कष्टपूर्ण था। जिस सिद्ध के नीचे वे सीखते थे, बड़ी कठिनाइयां आईं। क्योंकि वह जो काली थी, जो मां थी, जिसको अनुभव किया था उन्होंने अपने को मिटा कर, वह बाधा बनने लगी। यह बिल्कुल विपरीत मार्ग था। यह पूरब-पश्चिम जैसा मामला था। तो जिस तांत्रिक के नीचे वे ध्यान सीख रहे थे, उस तांत्रिक ने एक दिन कहा कि मैंने तुमसे ज्यादा अपात्र शिष्य नहीं पाया। और हालांकि मैं जानता हूं कि तुम सिद्ध पुरुष हो। और जहां तक तुम्हारी प्रार्थना से पहुंचने का संबंध है, मैं तुम्हारे पैर छूता हूं। मगर तुमसे ज्यादा अपात्र मैंने शिष्य नहीं पाया। और अगर आज तुम न कर पाए ध्यान तो मैं छोड़ कर चला जाऊंगा। मेरे छह महीने खराब कर दिए। क्या लगा रखा है यह काली-काली-काली! आंख बंद करो और फेंको इसको, अलग करो। हटाओ इस काली को।
यह बात ही भक्त को बड़ी बेहूदी लगती है। और वह जाने को तैयार हो गया और
वह बड़ा सिद्ध पुरुष था। और अगर इसके पास साधना न हो पाई तो रामकृष्ण जानते हैं, ऐसा आदमी खोजना बहुत मुश्किल होगा। वे जानते हैं, कि यह आदमी ठीक कह रहा है। यह भी समझ में आता है कि बात ठीक है, इस रास्ते पर यह काली बीच-बीच में आती है। पर वे करें क्या? वे आंख बंद करें और काली खड़ी! वे आंख बंद करें और भूल ही जाएं उस सिद्ध को, जो सामने बैठा है। काली बीच में खड़ी है। वे मगन हो गए। धुन बन गई भीतर। नशा छा गया, डोलने लगे।
और वह कह रहा है कि डोलना नहीं है। डोलना ही तो छोड़ना है। रोआं न कंपे।
वह एक कांच का टुकड़ा ले आया एक बोतल तोड़ कर और उसने कहा कि देखो, तुमसे नहीं होता, मुझे ही करना पड़ेगा। आज तुम आंख बंद करो, या तो मैं, या तुम्हारी काली--दो में से तुम चुन लो। आंख बंद करो, और जब काली खड़ी हो जाए तुम्हारे भीतर, उसी वक्त मैं तुम्हारे माथे को इस कांच के टुकड़े से काट दूंगा। जब मैं तुम्हारा माथा काटूं और लहू बहने लगे और दर्द हो, उसी वक्त हिम्मत करके तुम भी एक तलवार उठा कर काली को दो टुकड़ों में काट देना।
रामकृष्ण के रोएं-रोएं कंप गए। उन्होंने कहाः यह तो बहुत ज्यादा हो जाएगा; यह तो मत करवाएं। और यह वे जानते हैं कि वह नहीं करवा रहा, खुद ही करने को उत्सुक हैं। इस प्रयोग को करके देखना है।
तो उसने कहाः मैंने कभी तुम्हें कहा नहीं। तुम उत्सुक हो। जरूरत भी मुझे मालूम नहीं होती, कि कोई जरूरत भी है, लेकिन यह तुम चाहते हो, तो करना पड़ेगा। तो फिर पूरा करना पड़ेगा। यह काली को साथ नहीं लिया जा सकता। एक साधन के जगत में जो सहयोगी है, वही चीज दूसरे साधन के जगत में बाधा हो जाती है। इसे तुम्हें छोड़ना ही होगा। और यह आज आखिरी है उपाय।
हिम्मत करके रामकृष्ण ने आंख बंद की। आंख से आंसू बह रहे हैं। क्योंकि काली को काटना पड़ेगा, तलवार उठानी पड़ेगी। उस काली को, जिसके लिए अपने को मिटाया था--उसको काटना है! बड़ा कठिन है।
तुम सोच सकते हो, अगर तुमने कभी किसी को प्रेम किया हो, उसको काटना है।
फिर भी तुम पूरा न सोच पाओगे, क्योंकि जैसा रामकृष्ण ने काली को प्रेम किया है, ऐसा तुमने किसी को भी न किया होगा। क्योंकि उतना प्रेम तुम किसी को भी कर लो, तो परमात्मा उपलब्ध हो जाता है।

आंख से आंसू बह रहे हैं, हृदय जार-जार रो रहा है। लेकिन वह सिद्ध-पुरुष कठोर है। वह मार्ग अलग है। वहां यह सब बात फिजूल है। वहां यह काली सिर्फ कल्पना है। उस मार्ग पर यह सब मन का ही जाल है, यह सब विचार है, प्रक्षेपण है।
उसने कांच को उठाया और रामकृष्ण के माथे को बहुत गहरा काट दिया। जिंदगी भर वह निशान बना रहा फिर। लहूलुहान हो गए। उन्होंने भी भीतर एक दफा हिम्मत की; क्योंकि करना तो है, नहीं तो यह सिद्ध-पुरुष छोड़ कर चला जाएगा। फिर ध्यान की संभावना न रह जाएगी। उठाई तलवार, काट दी। काली दो टुकड़े होकर भीतर गिर गई, ध्यान उपलब्ध हो गया।
लेकिन छह महीने लगे इस घड़ी को आने में। ध्यान उपलब्ध हुआ, तब जाना कि
यह तो वही की वही बात है। वही बच रहता है। एक ही बच रहता है, उसके नाम भर अलग हैं। कहो आत्मा, अगर महावीर के मार्ग पर चले तो उसका नाम आत्मा; अगर मीरा के मार्ग पर चले तो उसका नाम कृष्ण, परमात्मा; लेकिन वह एक ही बात है।
और जैसे ही "मैं" मिटता है, "तू" भी मिट जाता है। "तू" मिटता है, "मैं"
भी मिट जाता है। बस, एक ही बच रहता है। वह एक विराट है।
रामकृष्ण ने अनूठे प्रयोग किए। इस सदी के लिए जरूरत थी। बड़ी जरूरत थी,
कि कोई सारे धर्मों के सार को निचोड़ कर के रख दे। जो रामकृष्ण ने किया वह अधूरा है। वह पूर्वार्ध है। और मैं जो कर रहा हूं, वह उत्तरार्ध है। रामकृष्ण ने खुद तो अनुभव कर लिए और कह भी दिया कि सभी मार्ग वहीं पहुंचा देते हैं। लेकिन रामकृष्ण बिल्कुल बेपढ़े-लिखे आदमी थे। शब्दों से, सिद्धांतो से, शास्त्रों से उनकी कोई भी संगति न थी। अपढ़ संत थे। दूसरी कक्षा तक मुश्किल से पढ़े थे।
संसार में तीन सौ धर्म हैं। तीन सौ धर्मों के तीन सौ धर्मशास्त्र हैं। बड़े अनूठे धर्मशास्त्र हैं। एक-एक धर्मशास्त्र अपने आपमें अदभुत है। इतना कह देना काफी नहीं है, कि मैंने अनुभव किया, सब पहुंचा देते हैं। इसको बड़े विस्तार से, इसको बड़े वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तावित करना जरूरी है। अनुभव तो भीतर होता है। मैंने अनुभव कर लिया, इससे क्या हल होता है? मेरा अनुभव इतनी प्रगाढ़ता से उपस्थित किया जाना चाहिए, कि वह हजारों लोगों के मन की आकांक्षा बनने लगे।
रामकृष्ण के पास बुद्ध जैसी क्षमता न थी, कि करोड़ों लोग रूपांतरित हो जाएं। न ही महावीर जैसी प्रतिभा थी कि वे जो कहें, वह उनके कहने के कारण सत्य मालूम होने लगे। ग्रामीण संत थे, लेकिन बड़ा अनूठा प्रयोग किया, पायोनियर थे। उस दिशा में उन्होंने पहला कदम उठाया।
उस दिशा में और कदम उठाए जाने जरूरी हैं। इसलिए मैं सभी साधना- पद्धतियों पर बोल रहा हूं। और तुम बड़ी मुश्किल में भी पड़ जाते हो। क्योंकि आज मैं कहता हूं यह ठीक है, कल कहता हूं वह ठीक है। वस्तुतः दोनों ठीक हैं।
तुम्हारी अड़चन यह हो जाती है, कि तब तुम क्या करो, कहां चलो, कैसे चलो।
तुम्हारे अड़चन के कारण ही तो संप्रदाय पैदा हो गए हैं। इसलिए बुद्ध ने कहा कि यही ठीक है--तुम्हारी अड़चन को बचाने के लिए। तुम्हारी अड़चन तो बची।
लेकिन सारी दुनिया संप्रदायों में विभाजित हो गई। अब वह बड़ी अड़चन हो गई।
अब मैं तुम से कहूंगा कि सभी ठीक हैं, तब तुम्हें एक ख्याल रखना होगा, तुम्हें सभी मार्गो पर नहीं चलना है, तुम्हें अपना व्यक्तित्व समझ लेना है। मैं सभी मार्गो पर बोलता रहूंगा।
केमिस्ट की दुकान में तुम जाते हो, वहां हजारों बीमारियों की दवाइयां रखी हुई हैं। इससे तुम्हें प्रयोजन नहीं है। तुम्हारे पास तो डाक्टर का प्रिस्क्रिप्शन है। तुम अपने प्रिस्क्रिप्शन की दवा लेकर लौट जाते हो। तुम यह नहीं पूछते कि इतनी सारी दवाएं! मैं तो मर जाऊंगा ले-ले कर। इतनी सारी दवाएं तुम्हें लेना भी नहीं है।
मैं तो केमिस्ट हूं। तुम्हें इतनी सब दवाएं लेने की जरूरत नहीं है। इतनी सब दवाएं तो तुम्हें मार ही डालेंगी। तुम तो अपनी बीमारी पकड़ लो। तुम अपनी बीमारी पहचान लो। वह भी मैं तुम्हें पहचनवा देने को तैयार हूं। और तुम अपने योग्य दवा चुनलो। सारी दुकान को तुम भूल जाओ। तुम्हारे लिए तो एक ही विधि पहुंचा देगी। न तुम्हें रामकृष्ण होने की जरूरत है कि तुम सारी

सीढ़ियों से चढ़ कर देखो। न तुम्हें मुझ जैसा होने की जरूरत है कि तुम सारी सीढ़ियों की चर्चा करो; कि सारी सीढ़ियां सही हैं, ऐसा सिद्ध करो। इस सब प्रयोजन में तुम्हें कुछ सार नहीं है। वह तुम्हारी नियति नहीं है। तुम्हारे लिए तो इतना जरूरी है कि तुम अपनी प्यास पहचान लो, अपना घाट पहचान लो, अपनी प्यास बुझा लो। अपनी नाव पहचान लो, अपनी नाव पर सवार हो जाओ और पार हो जाओ।

दूसरा प्रश्नः कबीर पर बोलते हुए आपने सत्संग का या साधु-संगत पर बहुत जोर दिया। आज के परिप्रेक्ष्य में सत्संग पर क्या कुछ और प्रकाश डालेंगे?

सत्संग और साधु-संगत दोनों अलग बातें हैं। एक ही बात के दो नाम नहीं हैं। साधु-संगत पहला चरण है, सत्संग दूसरा चरण है।
साधु-संगत का अर्थ हैः साधुओं के साथ होना। अभी तुमने गुरु नहीं चुना। अभी तुम्हें जहां खबर मिल जाती है कि कोई साधु पुरुष है, कोई सत्पुरुष है, तुम वहीं जाते हो। साधु-संगत का अर्थ है, जहां से भी रोशनी मालूम होती है, खबर मिलती है, वहां जाते हो। बैठते हो साधुओं के पास। रमते हो उनके साथ। थोड़ी डुबकी लेते हो उनके रस में।
जब ऐसी डुबकी लेते-लेते, साधु-संगत करते-करते कोई एक साधु तुम्हारे लिए विशिष्ट हो जाता है; तुम किसी साधु के प्रेम में पड़ जाते हो; तब सत्संग शुरू हुआ।
बहुत साधु हैं; गुरु तो एक ही होगा। साधुओं के पास रमते-रमते, साधुओं
के निकट होते-होते किसी दिन तुम पहचान लोगे, कौन तुम्हारा गुरु है। कौन साधु तुम्हारे लिए है। किससे तुम्हारा तालमेल बैठ गया। किसकी चाबी तुम्हारे ताले से मिल जाती है। कौन है, जिससे तुम्हारे हृदय के स्वर छिड़ते हैं। कौन है, जिसके पास जाते ही तुम रोमांचित हो जाते हो। कौन है, जो तुम्हें अहोभाव से भर देता है। किसके पास, सिर्फ पास होने से स्नान हो जाता है।
यह तो तुम साधुओं की संगत करते-करते पहचानोगे। तो साधु-संगत पहला चरण है। उससे रस लगेगा, समझ बढ़ेगी, स्वाद थोड़ा-थोड़ा आएगा, लेकिन वह काफी नहीं है।
दूसरा चरण सत्संग है। सत्संग का अर्थ है कि अब तुमने चुन लिया। अब तुम यूं ही नहीं तलाश रहे हो। अब तुमने एक की बांह पकड़ ली। अब सत्संग शुरू हुआ। साधु-संगत में तो थोड़ा सा संदेह बना रहेगा, विचार बना रहेगा। क्योंकि संदेह न होगा, विचार न होगा तो चुनोगे कैसे? खोजोगे कैसे? तो साधु-संगत तो संदेह का और विचार का ही अंग है।
लेकिन जैसे ही तुमने चुना--हां, चुनने के पहले जितना संदेह कर लेना हो,
कर लेना। चुनने के पहले जितना विचार करना हो, कर लेना। वर्षों रुकना हो, रुक जाना। साधु-संगत पूरी तरह कर लेना।
लेकिन जब चुनो, तो चुनाव का अर्थ होता है कि अब संदेह छोड़ देना; नहीं
तो चुनाव हुआ ही नहीं। साधु-संगत जारी रही, सत्संग शुरू न हुआ। सत्संग क्रांति है। साधु-संगत से छलांग है। अब तुमने किसी को चुन लिया। अब तुम अंधे होते हो। अब तुम अपनी आंख बंद करते हो। अब तुम कहते हो, हम किसी और की आंख से चलेंगे। अपनी आंख से इतना काम ले लिया, कि उसको पहचान लिया जिसकी आंख से चलना है। अपने संदेह का उपयोग कर लिया। उसके हाथ पकड़ लिए, जिसके हाथ में भरोसा छोड़ा जा सकता है।
सत्संग का अर्थ हैः श्रद्धा। साधु-संगत का अर्थ हैः विचार। बहुत साधुओं में घूमोगे, खोजोगे, पहचानोगे, समझोगे; लेकिन जब मिल जाए कोई, तब विचार मत करते खड़े रहना। तब डूब लेना श्रद्धा में। तब हाथ पकड़ लेना और तब कहना, अब जहां ले चलो।
इसके पहले जितना विचार करना है, उचित है। इसके बाद विचार करना अनुचित है। क्योंकि अगर इसके बाद भी विचार जारी रखा तो सत्संग शुरू ही नहीं हुआ। क्योंकि सत्संग तो एक बड़ा भीतरी रसायन है। सत्संग का अर्थ हैः किसी के पास

इतनी परम श्रद्धा से होना कि अगर वह दिन को रात कहे तो भी संदेह न उठे। मन में यही ख्याल हो कि जरूर कोई कारण होगा। वह ठीक ही कहता होगा।
सत्संग तो प्रेम जैसा है, अंधा है। सारी दुनिया कहेगी, तुम्हारी प्रेयसी कुरूप है, सुंदर नहीं है; इससे क्या फर्क पड़ता है? तुम तो अंधे हो। तुम्हारी आंखों में तो वह सुंदर ही दिखाई पड़ती है।
श्रद्धा एक अर्थ में परम दृष्टि है और एक अर्थ में परम अंधापन। तुम अपने विचार को उपयोग कर लिए, अब तुम उसे हटा कर रख देते हो। अब तुम कहते हो, अब और नहीं सोचना है। सोच-सोच कर पा लिया, अब ये चरण मिल गए; अब बस, श्रद्धा से पकड़ लेना है।
सत्संग का अर्थ हैः किसी के पास अनन्य श्रद्धा के साथ होना। धीरे- धीरे, जब इतनी अनन्य श्रद्धा होती है तो अपने आप विचार क्षीण होते जाते हैं, शून्य होते जाते हैं। सत्संग ध्यान बन जाता है। सत्संग करनेवाले को ध्यान करने की अलग से जरूरत ही नहीं पड़ती। वह तो गुरु के पास होते-होते, होते-होते-होते गुरु जैसा हो जाता है। समान तुम्हारे भीतर, अपने समान को ही पैदा कर देता है। अगर प्रकाश श्रद्धा कर ले, तुम्हारे भीतर छिपा हुआ प्रकाश अगर श्रद्धा कर ले बाहर के प्रकट प्रकाश में तो वह भी प्रकट हो जाएगा। तुम जिसमें श्रद्धा करते हो, धीरे-धीरे वैसे ही हो जाते हो। श्रद्धा एक रसायन है, एक अल्केमी है, गुरु के पास होने का ढंग है। अब तुम हो, बस! तुम उसके पास बैठते हो। वह बोलता है, सुनते हो। वह चुप होता है, तो उसकी चुप्पी सुनते हो। वह नहीं बोलता तो उसका न बोलना सुनते हो; उसका मौन सुनते हो। वह उठता है, चलता है, बैठता है, तुम उसके साथ ऐसे डोलते हो जैसे तुम वही हो। तुम उसकी छाया बन गए होते हो।
धीरे-धीरे, जैसे-जैसे तुम मिटते हो, गुरु तुम्हारे भीतर प्रवेश करता है। तुम जगह खाली करते हो, वह जगह को भरता जाता है। एक ऐसी घड़ी आती है, शिष्य विलीन हो जाता है, गुरु ही शेष रह जाता है।
सत्संग अगर आ जाए, तो कुछ और चाहिए नहीं। अगर तुम प्रेमी हो, तो सत्संग प्रार्थना बन जाएगा। अगर तुम ध्यानी हो, सत्संग ध्यान बन जाएगा।
सत्संग कोई मार्ग नहीं है। सत्संग तो सभी मार्गों का सार-निचोड़ है। सत्संग न तो हिंदू है, न मुसलमान है, न ईसाई। सत्संग न तो स्त्रैण-चित्त है, न पुरुष-चित्त। सत्संग तो दोनों के लिए समान है।
मैं फर्क देखता हूं--सत्संगी में फर्क होगा। अगर स्त्रैण-चित्त व्यक्ति मेरे पास आता है, या स्त्रियां मेरे पास आती हैं, तो मैंने अनुभव किया कि उनका लगाव मुझसे पहले होता है। फिर मुझसे लगाव है, इसलिए जो भी मैं कहता हूं, वह उन्हें ठीक मालूम होता है।
अगर पुरुष-चित्त का व्यक्ति या पुरुष मेरे पास आते हैं, तो मैं जो कहता हूं, वह ठीक है, यह उन्हें पहले अनुभव में आता है। फिर इस कारण मुझसे लगाव पैदा होता है।
स्त्रियां पहले मेरे प्रेम में पड़ जाती हैं--स्त्रैण चित्त मेरा मतलब; उन्हें मुझसे लगाव हो जाता है सीधा, फिर मैं जो भी कहता हूं, वह उन्हें ठीक लगता है। पुरुष पहले जो मैं कहता हूं वह उन्हें ठीक लगने लगता है, तब वे मेरे प्रेम में पड़ जाते हैं।
सत्संग तो दोनों के लिए खुला है, हालांकि दोनों के ढंग में इतना फर्क होगा। प्रार्थना वाला चित्त पहले प्रेम में पड़ेगा, फिर जो भी कहा जा रहा है, वह ठीक लगने लगेगा, उसका अनुसरण करेगा। ध्यान वाला चित्त पहले विचार को उपलब्ध होगा, फिर जो भी विचार में ठीक मालूम पड़ा है, उसका प्रेम जन्मेगा।
इतना सा फर्क होगा, लेकिन सत्संग में दोनों मिल जाते हैं। सत्संग संगम है। वहां सब मिल जाते हैं। इसलिए ऐसा कोई धर्म नहीं दुनिया में जिसने सत्संग की महिमा न गाई हो। ईश्वर को मानने वाले धर्म हैं, न मानने वाले धर्म हैं; आत्मा को मानने वाले धर्म हैं, न मानने वाले धर्म हैं; पुनर्जन्म को मानने वाले धर्म हैं, न मानने वाले धर्म हैं; लेकिन ऐसा कोई धर्म नहीं जो सत्संग को न मानता हो। साधु-संगत और सत्संग तो सभी धर्मों का सार है।

पहले साधुओं के पास उन्मुख होना; जो भले लोग हैं, उनके पास रहना, ताकि भले का थोड़ा सा रोग तुम्हें भी लग जाए। भलों के साथ रहोगे तो भलाई का थोड़ा सा रंग लग ही जाएगा। अब काजल की कोठरी से कोई गुजरेगा तो थोड़ी कालिख लग ही जाएगी।
साधु-संगत का इतना ही मतलब है, कि तुम उनके साथ रहना जिनको परमात्मा
का रंग लग गया है, तो तुम्हें भी थोड़ा-बहुत रंग लग जाएगा। उस रंग से यात्रा शुरू होगी। उससे पहले दफा अभीप्सा का जन्म होगा, कि मैं भी खोजूं, मैं भी पाऊं।
फिर साधु-संगत से धीरे-धीरे तुम साधुओं के बीच एक को चुनना। क्योंकि सभी साधु तुम्हें न ले जा सकेंगे। सभी साधु तुम्हारे लिए नहीं हैं। तुम्हारे लिए तो कोई एक है। उससे मिलते ही तुम्हारे भीतर कुछ सांधा बैठ जाता है। एकदम से सांधा बैठ जाता है। उसके पास आते ही तुम्हारे भीतर कोई चीज टूट जाती है, बदल जाती है। फिर तुम कभी वही आदमी नहीं हो सकते, जो तुम पहले थे। तुम उसे छोड़ कर न जा सकोगे। तुम उससे भाग न सकोगे। भागने के तुम उपाय भी करो, तो भी उपाय काम न आएंगे।
जब ऐसी घड़ी आ जाए, तब सत्संग। तब भागने की, संदेह की, विचार की सब यात्राओं को बंद कर देना और बैठे रहना गुरु के पास। तब बैठे-बैठे ही सब मिल जाएगा। तब न तो कुछ पूछने को है, न कुछ जानने को है। पूछना, जानना साधु-संगत में चलेगा।
मेरे पास दोनों तरह के लोग हैं। कुछ, जो साधु-संगत कर रहे हैं; कुछ, जिनका सत्संग शुरू हो गया। जो साधु-संगत कर रहे हैं, वे मेरे मेहमान हैं।
कभी आते हैं, जाते हैं। अभी उनको और साधुओं की संगत भी करनी है। अभी उनका चुनाव नहीं हुआ है।
कुछ हैं, जिनका सत्संग शुरू हो गया; जिन्होंने छलांग ले ली।
जिन्होंने छलांग ले ली है, अब उन्हें कहीं नहीं जाना है। उनकी मंजिल आ गई।
जिसे खोजना था, उसे उन्होंने खोज लिया। अब सिर्फ उसके पास होना है।
जिस दिन सत्संग शुरू होता है, उसी दिन बड़ी तृप्ति मालूम होने लगती है।
साधु-संगत में तो एक बेचैनी रहेगी। खोजना है, पाना है, जांच-पड़ताल करनी है।
बड़ा बाजार है साधुओं का भी। भिन्न-भिन्न तरह के साधु हैं, भिन्न-भिन्न तरह के संत हैं। उनके ढंग अलग, उनकी शैलियां अलग। बहुत बार वे बड़े विरोध में भी मालूम पड़ते हैं--वह भी उनका ढंग है। एक-दूसरे का खंडन भी करते हैं--वह भी उनका ढंग है।
तुम उनके खंडन से परेशान मत होना। तुम इस चिंता में ही मत पड़ना कि वे क्या कहते हैं। क्यों किसी का खंडन करते हैं, क्यों किसी का विरोध करते हैं? तुम तो इसी की फिकर करना कि इस कौन से तुम्हारा राग मिल जाता है। कौन से तुम्हारा संगीत मिल जाता है। किसके हृदय के पास तुम्हारा हृदय एक सी ही धड़कन से धड़कने लगता है। किसके हृदय के साथ तुम्हारी धड़कन की गति और छंद बैठ जाता है।
बस, वह तुम्हारे लिए है। मंजिल आ गई। सत्संग शुरू हुआ। अब सिर्फ साथ होना काफी है, पास होना काफी है। अब सिर्फ गुरु की मौजूदगी काफी है, उपस्थिति काफी है। और उसकी उपस्थिति एक अग्नि है। जैसे ही तुम सत्संग में प्रविष्ट हुए, तुम्हारे भीतर कचरा जलना शुरू हो जाएगा और स्वर्ण निखरने लगेगा।
कबीर ने, नानक ने साधु-संगत और सत्संग के बड़े गीत गाए हैं। लेकिन मैं समझता हूं, किसी ने कभी ठीक से साफ नहीं किया है कि साधु-संगत और सत्संग अलग-अलग बातें हैं। एक ही प्रक्रिया है, लेकिन बड़ी भिन्न है।
कुछ लोग साधु-संगत करते-करते ही मर जाते हैं। सत्संग का मौका ही नहीं
आ पाता। कभी-कभी साधु-संगत करना ही एक रोग हो जाता है, कि आज इसको सुना, कल उसको सुना, परसों वहां गए। जा रहे हैं इस आश्रम उस आश्रम। धीरे-धीरे यह जाना-आना ही रोग हो जाता है। चुनने का ख्याल ही भूल गया। तो तुम एक ऐसे आदमी हो गए, जैसे कुछ लोग बाजार जाते हैं, उन्हें खरीदना कुछ भी नहीं है। वे सिर्फ इस दुकान में झांक कर देखते हैं, उस दुकान में झांक कर देखते हैं।

कभी-कभी अंदर जाकर चीजों के दाम-भाव भी पूछते हैं, कभी मोल-भाव भी करते हैं। लेकिन उन्हें कुछ खरीदना नहीं है। वे सिर्फ समय गुजारने चले आए। साधु-संगत समय गुजारना भी हो सकता है। तब उसमें कभी सत्संग का फल न लगेगा। तब वह व्यर्थ है। उसका कोई अर्थ नहीं है। किसी न किसी दिन निर्णय लेना पड़ेगा। निर्णय का मतलब है, कमिटमेंट। निर्णय का अर्थ है कि अब तुमने एक को चुना और तुम उसके पीछे जाने को राजी हुए।
खतरे हैं। लेकिन किसी न किसी दिन खतरा तो लेना ही पड़ता है। जोखिम उठानी ही पड़ती है। बिना जोखिम के संसार में कोई भी विकास नहीं है। और बिना खतरे के कोई क्रांति घटित नहीं होती। दांव पर तो लगाना ही पड़ेगा। यह तो बड़ा जुआ है। इससे बड़ा कोई जुआ नहीं है।
पश्चिम से लोग आते हैं। पश्चिम में लोग कमिटमेंट के बहुत ज्यादा खिलाफ हैं, प्रतिबद्धता के खिलाफ हैं। वे कहते हैं, किसी से क्यों बंधना? मेरे पास वे आते हैं, वे कहते हैं कि हम आपको सुनना चाहते हैं, ध्यान
भी करना चाहते हैं, लेकिन बंधना नहीं चाहते। किसी से क्यों बंधना? मैं उनको कहता हूं, तुम्हारी मर्जी। तुम खुले रहो।
लेकिन तुम्हें पता नहीं है कि जब तक तुम किसी के साथ इस भांति नहीं बंध जाते, कि तुम्हारी और यात्रा बंद हो गई, तब तक तुम्हारी ऊर्जा न तो संग्रहीत होगी, और न तुम्हारी ऊर्जा में कोई रूपांतरण होगा।
आज तुम मेरे पास हो, कल तुम श्री अरविंद आश्रम में हो, परसों तुम अरुणाचल आश्रम में हो, नरसों तुम कहीं और हो--तुम जाते रहोगे। तुम घर के न घाट के हो जाओगे। तुम भटकते रहोगे। धीरे-धीरे यह भटकन कहीं तुम्हारी जिंदगी हो गई, तो मैं कहता हूं, भटकन से तुम्हारी प्रतिबद्धता हो गई, तुम्हारा कमिटमेंट हो गया। अब तुम भटकने से बंध गए। अब तुम ऐसे हो गए जैसे कि नदी में बहता हुआ पत्थर होता है। उस पर कोई काई नहीं जम जाती, क्योंकि वह बहता ही चला जाता है। साधु-संगत भटकन न हो। कहीं तुम नदी में बहते पत्थर न हो जाओ।
बहुत तीर्थ आएंगे मार्ग में; लेकिन तुम्हें बहने की आदत पड़ गई, तो तुम कोई काई जमा न कर पाओगे। काई तो तभी जमा होती है, जब पत्थर किसी घाट पर रुक जाता है, किसी तीर्थ को घर बना लेता है। वह प्रतिबद्धता है, कमिटमेंट है। लेकिन जब तुम प्रतिबद्धता में उतरते हो, जब तुम कहते हो, ठीक! अब मैं छोड़ता हूं अपने को और राजी होता हूं एक यात्रा के लिए--उसी क्षण तुम्हारा अहंकार समाप्त हो जाता है। वह अहंकार ही बाधा डालता है प्रतिबद्धता में। वह कहता है, बंधो मत। सार ले लो, जितना लेना है; बंधते क्यों हो?
लेकिन जो बहुत भीतर का राज है, वह तो केवल उन्हीं को बांटा जा सकता है, जिनका अहंकार गिर गया है। तो तुम थोड़ा सा उच्छिष्ट प्राप्त कर लोगे, लेकिन तुम कभी भीतर के मंदिर में प्रवेश न कर पाओगे।
साधु-संगत जरूरी है, काफी नहीं। उससे गुजरना, उसमें ही ठहर मत जाना।
वह एक पड़ाव है, रुकाव नहीं। वह घर नहीं है। घर तो सत्संग है।

तीसरा प्रश्नः क्या समर्पण सारे अस्तित्व के प्रति हो तो समर्पण होता
है अथवा केवल गुरु के प्रति हो, तो समर्पण होता है?

सारे अस्तित्व के प्रति समर्पण तो तुम्हें बिल्कुल असंभव है। वह तो ऐसे ही है, जैसे आदमी प्रेम करना ही न जानता हो, किसी एक आदमी को भी प्रेम न किया हो और कहे कि मैं सारी मनुष्यता को प्रेम करना चाहता हूं।
वह तो तरकीब है तुम्हारी एक से बचने की। अक्सर मैंने ऐसे लोग देखे हैं, जो एक को प्रेम करने में असमर्थ हैं। क्योंकि एक को प्रेम करना बड़ा कठिन काम है। बड़ी दूभर यात्रा है, बड़ा संघर्ष है। प्रतिपल एक चुनौती है। मनुष्यता को प्रेम करने में कोई चुनौती नहीं है, कोई संघर्ष नहीं है। मनुष्यता कोई है थोड़ी! एक स्त्री तुम्हें ठिकाने लगा दे, एक पुरुष तुम्हें ठिकाने लगा दे। पूरी मनुष्यता तुम्हें ठिकाने नहीं लगा सकती। मनुष्यता को प्रेम मजे से करो। मनुष्यता कहीं है ही नहीं। वह तो एब्स्ट्रेक्शन है।
मनुष्यता को कहां मिलोगे प्रेम करने को? कहां आलिंगन करोगे?

मनुष्यता तो सिर्फ कोरा शब्द है। मनुष्य है, मनुष्यता तो कहीं भी नहीं है। इसलिए जो लोग प्रेम करने में असमर्थ हैं, वे अक्सर मनुष्यता को प्रेम करते हैं। एक स्त्री को प्रेम नहीं कर सकते, क्योंकि वहां कठिनाई खड़ी हो जाती है। वहां अहंकार को झुकना पड़ता है। वहां कुछ तालमेल बिठाना पड़ता है। कुछ समझौते करने पड़ते हैं। वहां कुछ सीखना पड़ता है, कुछ काटना पड़ना है, कुछ बदलना पड़ता है; वह कठिन है।
पूरी मनुष्यता को प्रेम करते हैं! मेरे पास ऐसे लोग आ जाते हैं; सर्वोदयी हैं, समाज-सुधारक हैं, वे पूरी मनुष्यता को प्रेम करते हैं! उनकी शकल पर प्रेम का कोई चिन्ह नहीं मालूम पड़ता। वे बचाव कर रहे हैं।
न तो कोई पूरी मनुष्यता को प्रेम करने की जरूरत ही है। तुम एक मनुष्य
को प्रेम करो। क्योंकि उससे ही तुम सीखोगे। वही सिखावन अगर इतनी गहरी हो जाए, कि तुम एक मनुष्य के भीतर इतने गहरे उतर जाओ प्रेम में, कि उसका शरीर तुम्हें भूल जाए, तो तुमने मनुष्यता के सार को पकड़ लिया। भीतर जो छिपा है अरूप, निराकर, उसे पकड़ लिया। तो फिर तुम सभी को प्रेम कर सकते हो। अभी तो तुम्हारा सभी को प्रेम झूठ होगा, तरकीब होगी, धोखा होगा।
गुरु के प्रति समर्पण किए बिना तुम समस्त के प्रति समर्पण न कर पाओगे। कहां है "समस्त?" सर्व कहां है? तुम किसी एक में उसकी थोड़ी झलक देखो। आकार में तुम पहले निराकार को खोजो, तभी तुम्हें निराकार से मिलन हो पाएगा।
तो गुरु के प्रति समर्पण कोई अंतिम बात नहीं है। वह तो सिर्फ द्वार है। नानक ने अपने मंदिरों को गुरुद्वारा कहा है; वह बिल्कुल ठीक कहा है-- गुरुद्वार। वह शब्द बड़ा कीमती है। उसका मतलब इतना ही है कि गुरु तो सिर्फ द्वार है। उससे तो जाना है, गुजर जाना है। लेकिन तुम अगर द्वार से ही गुजरने को राजी नहीं हो, तो तुम मंदिर में न पहुंच पाओगे।
गुरु मंदिर नहीं है, गुरु तो सिर्फ द्वार है। तुम कहते हो, ऐसा नहीं हो सकता, हम मंदिर में ही पहुंच जाएं और द्वार से न गुजरना पड़े?
तुम जरा असंभव बात पूछ रहे हो। कोई उपाय नहीं है मंदिर में पहुंचने का; द्वार से गुजरना ही पड़ेगा। क्योंकि द्वार पर तुम झुकोगे, झुकना सीखोगे।
पुराने मंदिरों के द्वार बड़े छोटे होते थे, वह ठीक था। वे प्रतीक थे,
कि वहां झुक कर जाना पड़ेगा। अब तो हम जो मंदिर बनाते हैं, बड़ा द्वार बनाते हैं। और उसमें कोई घोड़े-हाथी पर भी बैठ कर जाए तो जा सकता है। बात ही भूल गए हम। बिल्कुल छोटे ही द्वार होने चाहिए, जिसमें झुक कर ही जाना पड़े; जिसमें सिर को झुकाना ही पड़े। मंदिर का द्वार बड़ा नहीं हो सकता। मंदिर का द्वार छोटा होगा।
वह छोटा सा द्वार गुरु है। वह परमात्मा का द्वार है। उससे अगर तुम झुके और समर्पण किया, तो तुम उससे प्रवेश कर जाओगे। समर्पण करते ही गुरु मिट जाता है। तुम मिटे, कि गुरु मिटा। गुरु तो मिटा ही हुआ है। तुम्हारे अहंकार की वजह से दिखाई पड़ता है। तुम मिटे कि तुम्हें दिखाई पड़ता है गुरु तो था ही नहीं। वह तो सिर्फ द्वार है, खाली जगह है, जिसमें से गुजर जाना है। जिन्होंने गुरु के प्रति समर्पण किया उन्होंने तो पाया, गुरु नहीं, परमात्मा है। इसलिए अगर हिंदुओं ने कहा कि गुरु विष्णु, गुरु महेश। अगर हिंदुओं ने कहा कि गुरु परमात्मा है, तो उसका क्या अर्थ है?
उसका अर्थ है, जिन्होंने समर्पण किया, उन्होंने पाया, गुरु तो था ही नहीं। वह हमारे अहंकार की वजह से दिखाई पड़ता था। जैसे ही हम झुके, पाया कि मंदिर खुल गया, द्वार खुल गया। परमात्मा विराजमान है।
गुरु में परमात्मा को देख लेना है अर्थ समर्पण का। और अगर तुम्हें गुरु में नहीं दिखाई पड़ सकता तो तुम्हें पौधों में, वृक्षों में, फत्थरों में, फहाड़ों में बहुत मुश्किल है दिखाई पड़ना। गुरु का अर्थ हैः जिसके भीतर परमात्मा सर्वाधिक सजगता से जी रहा है; और तो कोई अर्थ नहीं है। चट्टान के भीतर ही परमात्मा है लेकिन बिल्कुल सोया हुआ। तुम्हारे भीतर भी परमात्मा है लेकिन शराब पीया हुआ। चोर के भीतर भी परमात्मा है, लेकिन चोर। हत्यारे के भीतर भी परमात्मा है, लेकिन हत्यारा।

गुरु का क्या मतलब है? गुरु का इतना ही मतलब है, जिसके भीतर परमात्मा अपने शुद्धतम रूप में प्रकट है। जिसमें अग्नि शुद्धतम रूप में जल रही है, जिसमें धुआं बिल्कुल नहीं है। निर्धूम अग्नि--गुरु का अर्थ है।
अगर तुम्हें वहां नहीं दिखाई पड़ती अग्नि, तो तुम्हें कहां दिखाई पड़ेगी? जहां धुआं ही धुआं है, वहां दिखाई पड़ेगी? जब निर्धूम अग्नि नहीं दिखाई पड़ती, तो जहां धुआं ही धुआं है, वहां तुम्हें कैसे दिखाई पड़ेगी? वहां तो धुएं के कारण तुम्हारी आंखें बिल्कुल बंद हो जाएंगी।
गुरु के पास तुम्हारी आंख नहीं खुलती तो तुम्हारी आंख पत्थरों के पास कैसे खुलेगी? गुरु तो केवल प्रतीक है। अर्थ है, जिसने जान लिया। अगर तुम उसके पास झुको, तो तुम भी उसकी आंखों से देख सकते हो। और तुम भी उसके हृदय से धड़क सकते हो। और तुम भी उसके हाथों से परमात्मा को छू सकते हो।
एक बार तुम्हारी पहचान करवा देगा वह, फिर तो बीच से हट जाता है। फिर बीच में कोई जरूरत नहीं है। पर एक बार तुम्हारी पहचान करवा देना जरूरी है।
गुरु का इतना ही मतलब है कि परमात्मा तुम्हें अपरिचित है, उसे परिचित है।
तुम भी उसे परिचित हो, परमात्मा भी उसे परिचित है। वह बीच की कड़ी बन सकता है। वह तुम्हारी मुलाकात करवा दे सकता है। वह थोड़ा परिचय बनवा दे सकता है।
वह तुम दोनों को पास ला दे सकता है। एक दफा पहचान हो गई, फिर वह हट जाता है।
उसकी कोई जरूरत नहीं है फिर।
लेकिन यह मत सोचो कि तुम समर्पण अस्तित्व के प्रति कर सकते हो। कर सको, तो बहुत अच्छा। वही तो है सारी शिक्षा सभी गुरुओं की, कि तुम समर्पित हो जाओ अस्तित्व के प्रति। लेकिन धोखा मत देना अपने को। कहीं यह न हो, कि गुरु से बचने के लिए तुम कहो, हम तो अस्तित्व के प्रति समर्पित हैं। अस्तित्व क्या है? वृक्ष के सामने झुकोगे? पत्थर के सामने झुकोगे? कहां झुकोगे? झुकने की कला अगर तुम्हें आ जाए, तो गुरु तो केवल एक प्रशिक्षण है। वह तुम्हें झुकना सिखा देगा।
तिब्बत में जब शिष्य दीक्षित होता है, तो दिन में जितनी बार गुरु मिल जाए उतनी बार उससे साष्टांग दंडवत करना पड़ता है। कभी-कभी हजार बार। क्योंकि जितनी बार गुरु... आश्रम में शिष्य रहता है; गुरु गुजरा, फिर शिष्य मिल गया। पानी लेने जा रहे थे, बीच में गुरु मिल गया; भोजन करने गए, गुरु मिल गया। जब मिल जाए तभी साष्टांग दंडवत। पूरे जमीन पर लेट कर पहला काम साष्टांग दंडवत।
एक युवक एक तिब्बती मानेस्ट्री में रह कर मेरे पास आया। मैंने उससे पूछाः तूने वहां क्या सीखा? क्योंकि वह जर्मन था और दो साल वहां रह कर आया था। उसने कहा कि पहले तो मैं बहुत हैरान था, कि यह क्या पागलपन है! लेकिन मैंने सोचा, कुछ देर करके देख लें।
फिर तो इतना मजा आने लगा। गुरु की आज्ञा थी, कि जहां भी वह मिले उसको झुकूं, फिर धीरे-धीरे जो भी आश्रम में थे, जो भी मिल जाते! साष्टांग दंडवत में इतना मजा आने लगा कि फिर मैंने फिकर ही छोड़ दी कि क्या गुरु के लिए झुकना! जो भी मौजूद है।
फिर तो मजा इतना बढ़ गया, कि लेट जाना पृथ्वी पर सब छोड़ कर। ऐसी शांति उतरने लगी कि कोई भी न होता तो भी मैं लेट जाता। साष्टांग दंडवत करने लगा वृक्षों को, पहाड़ों को। झुकने का रस लग गया।
तब गुरु ने एक दिन बुला कर मुझे कहाः वह युवक मुझसे बोलाः अब तुझे मेरी चिंता करने की जरूरत नहीं। अब तो तुझे झुकने में ही रस आने लगा। हम तो बहाना थे, कि तुझे झुकने में रस आ जाए। अब तो तू किसी के भी सामने झुकने लगा है। और अब तो ऐसी भी खबर मिली है, कि तू कभी-कभी कोई भी नहीं होता और तू साष्टांग दंडवत करता है। कोई है ही नहीं और तू दंडवत कर रहा है।
उस युवक ने मुझे कहा कि बस, झुकने में ऐसा मजा आने लगा।
जर्मन अहंकार संसार में प्रगाढ़ से प्रगाढ़ अहंकार है। समस्त जातियों में जर्मन जाति के पास जैसा प्रगाढ़ अहंकार है, वैसा किसी के पास नहीं है।
इसलिए दो महायुद्ध वे लड़े हैं। और कोई नहीं जानता कि कभी भी वे युद्ध के लिए तैयार हो जाएं।

यह जर्मन युवक झुकने को भी तैयार नहीं था। यह बात ही फिजूल लगती थी, लेकिन फंस गया। लेकिन जब झुका, तो रस आ गया।
एक दफा झुकने का रस आ जाए, एक दफा तुम्हें यह मजा आने लगे, कि नाकुछ होने में मजा है, मिटने में मजा है, खोने में मजा है, तो गुरु हट जाता है। गुरु बुला कर तुम्हें कह देता है, बात खत्म हो गई। अब तुम मुझे परेशान न करो। क्योंकि तुम्हारे दंडवत करने से तुमको ही परेशानी होती है, तुम समझ रहे हो। तुमसे ज्यादा गुरु को परेशानी होती है। क्योंकि तुम्हारे लिए तो एक गुरु है, गुरु के लिए हजार शिष्य हैं। हजार का झुकना, और हजार के नमन को हजार बार स्वीकार करना--गुरु की भी तकलीफ है।
जैसे ही तुम तैयार हो जाते हो, कि झुकना सीख गए; गुरु कहता है, अब भीतर चले जाओ, अब दरवाजे पर मत अटको। अब मुझे छोड़ो। एक दिन गुरु कहता है, मुझे पकड़ लो अनन्यभाव से। अगर तुमने पकड़ लिया तो एक दिन गुरु कहता है, अब मुझे तुम बिल्कुल छोड़ दो, क्योंकि अब परमात्मा पास है, अब तुम मुझे मत पकड़े रहो। कबीर ने कहा है--
गुरु, गोविंद दोऊ खड़े काके लागूं पांव।
बलिहारी गुरु आपकी दियो गोविंद बताय।।
दोनों खड़े हैं सामने। ऐसी घड़ी आती है भक्त को एक दिन, जब गुरु के पास झुका बैठा है भक्त और परमात्मा भी सामने आ जाता है। तब सवाल उठता है, किसके चरण छूऊं?
"बलिहारी गुरु आपकी"--तो कबीर कहते हैं गुरु ने इशारा कर दिया कि परमात्मा के चरण छू और मुझे छोड़। बहुत मेरे चरण पकड़े, अब बस बात खत्म हो गई। यह तो सिर्फ एक अयास था।
जैसे तैरने का अयास किसी को कराते हैं, तो उथले पानी में कराते हैं। कहीं तुम डूब न जाओ। गुरु यानी उथला पानी। फिर जब तैरना आ गया तो गुरु कहता है, जब जरा गहराइयों में जाओ। गुरु यानी अयास का स्थल।
नहीं, समस्त के प्रति तुम अभी न झुक पाओगे। और मन बहुत बेईमान है। और
मन ऐसी तरकीबें समझा देता है, कि एक के प्रति क्या झुकना! सभी के प्रति झुक जाएंगे। यह न झुकने की तरकीब है। झुक सको, बड़ी कृपा! झुक पाओ, धन्यभाग! मगर कहीं यह तरकीब बचने की न हो। सौ में निन्यानबे मौके बचने की तरकीब के हैं। मन धोखेबाज है। मन प्रवंचक है। इससे सावधान रहना।
गुरु सदा के लिए तुमसे नहीं कहेगा, कि तुम उसे पकड़े रहो। लेकिन जिन्होंने पकड़ा है, वे ही छोड़ने में समर्थ हो पाएंगे। जिन्होंने पकड़ा ही नहीं, उनसे गुरु कैसे कहेगा छोड़ो?
नीत्शे ने बड़ी अदभुत किताब लिखी है--दस स्पेक जरथुस्त्र। दुननिया की पांच-सात श्रेष्ठतम किताबों में एक है। उसमें अंतिम वचन जरथुस्त्र अपने शिष्यों को कहता है, और वह यह है--सारी शिक्षाओं के बाद जब जरथुस्त्र पहाड़ की तरफ जाने लगा, अपने शिष्यों से विदा लेने लगा, उस की घड़ी आ गई विदा की... और घड़ी एक दिन गुरु की आएगी ही। और यह उसकी आखिरी घड़ी है। इसके बाद वह वापिस नहीं लौट सकेगा। इस शरीर में उसका होना आखिरी है। जिन्होंने ले लिया लाभ, ले लिया। यह द्वार सदा नहीं रहता। वह तो मिट ही जाएगा।
तो जरथुस्त्र ने कहाः मैं जा रहा हूं, तुम्हें मैं अपना आखिरी संदेश
दे दूं। और वह आखिरी संदेश उसने कहाः बीवेअर ऑफ जरथुस्त्र, अब तुम मुझसे सावधान रहना।
शिष्य तो हैरान हुए। उन्होंने कहाः तुमसे और सावधान? तुमने ही तो सिखाया समर्पण और श्रद्धा; अब तुमसे सावधान? तुमने ही तो सिखाया सब तुम पर छोड़ देना, अब तुमसे सावधान?
यह वचन बड़ा कीमती है--जरथुस्त्र से सावधान। लेकिन जरथुस्त्र यह बात उनसे ही कहेगा, जिन्होंने समग्र भाव से समर्पण कर दिया हो। तब वह कहेगा, बस! बहुत हुआ। तैर लिए मुझमें, अब आगे बढ़ो। अब मुझे मत पकड़ कर रुक जाना। क्योंकि बहुत बार यह भी हो सकता है। पहले तो तुम सीढ़ी चढ़ने में डरते हो। फिर तुम चढ़ जाते हो सीढ़ी, तो सीढ़ी को पकड़ लेते हो। पहले सीढ़ी पर चढ़ना जरूरी है, फिर सीढ़ी को छोड़ देना जरूरी है।

सब साधन पकड़ने जरूरी हैं और सब साधन छोड़ देने जरूरी हैं। राह पर उतरना जरूरी है, राह पर चलना जरूरी है, फिर राह को छोड़ देना जरूरी है। नहीं तो मंजिल कैसे आएगी? जिसने साधन को पकड़ लिया, वह फिर साध्य से वंचित रह जाता है।
दो तरह के वंचित लोग हैं; एक तो वे, जिन्होंने साधन कभी पकड़ा ही नहीं।
एक वे, जिन्होंने साधन जोर से पकड़ लिया। एक वे हैं, जो गुरु के पास कभी आए ही नहीं। और एक वे हैं, जो गुरु के पास आए और गुरु को छोड़ने में असमर्थ हो गए।
गुरु तुम्हें तैयार करता है पहले झुकने को, फिर खड़ा होने को। पहले मिटने को फिर होने को।
एक ही बात ख्याल रखना, मन धोखा न देता हो; फिर ठीक है। अगर तुम समस्त के प्रति समर्पण करने में सफल हो, इससे सुंदर और कुछ भी नहीं हो सकता। लेकिन अगर धोखा हो, तो साधु-संगत करो, फिर सत्संग करो, किसी गुरु के चरण पकड़ो। वह गुरु ही तुम्हें फिर किसी दिन तैयार कर देगा चरण छोड़ देने को। वह तो तभी तक अयास है, जब तक कि प्रभु के चरण पास नहीं आ जाते।

आज इतना ही।